॥ श्रीः ॥

स्वरूपानुसन्धान.

रियासत भावनगरके सुप्रसिद्ध दीवान श्रीमान्
गौरीशङ्करओझा सी. एस्. आइ. (श्रीसच्चि-
दानन्दसरस्वती) विरचित गुर्जरभाषाके
अपूर्व वेदान्तग्रन्थका

हिन्दी अनुवाद ।

जिसको

क्त गौरीशङ्करजीके सुपुत्र भावनगरके भूतपूर्व
दीवान श्रीयुत विजयशंकरजीने
मुमुक्षुजनोंके उपकारार्थ,

श्रेष्ठि खेमराज श्रीकृष्णदासके
बंबई
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयमें
मुद्रित कराय प्रसिद्ध किया

संवत् १९६४, शके १

SWÁMI SHREE SACHCHIDÁNAND SARASWATI 1886

(GOURISHANKAR UDAYASHANKAR C. S. I. EX-DEWAN—BHOWNAGAR)

ॐ

॥ तत्सत्परमात्मने नमः ॥

उद्घाटन ।

[श्रीस्वरूपानुसन्धानके मूलकर्ता श्रीमान् राज-मान्य राज्यश्री गौरीशंकर उदयशंकर ओझा. सी. एस्. आइ. (स्वामि श्रीसच्चिदानन्द सरस्वतीजी) का सपत्रचित्र बृहत् जीवनचरित्र गुजराती भाषामें प्रकट हुवा है उसका प्रस्तावनारूप "उद्घाटन" कि जिस्में श्रीमान् गौरीशंकरजीका परोपकारी जीवनका संक्षेप गुजरातीभाषाके प्रसिद्ध लेखक और तत्त्वज्ञानी सुप्र-सिद्ध साक्षरवर्य श्रीमान् मनःसुखराम सूर्यरामत्रिपाठीने किया है उसका यह अनुवाद कियागया है]

श्रीशिवम्.

उद्घाटनम् ।
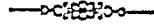
(श्रीगौरीशंकरजीका जीवनचरित्र)

"तेजो भाति प्रतापाभिधमवनितले ज्योति-रात्मीयमन्तः" प्रसन्नराघव ३ । १०

प्रतापशाली राजर्षि विश्वामित्र जा स्पृहणीय ब्रह्मर्षित्वकूं स्वाश्रयसे पाये, वे व्यवहार परमार्थ उभयपदके पालक तत्रभवान् (परमपूज्य) जनक राजाके प्रति बोलते हैं किः—'प्रतापनामतें आपका तेज पृथ्वीके तलपर बहिर् प्रकाशे है, तथा आत्मीयज्योति (आत्माका स्वरूप प्रकाश) अन्तरमें प्रकाशे हैं, ऐसे आपहो.

आत्मा किं सहायतावाले, तथा आत्मज्ञा किं-सहायतावाले, कृतकृत्य ऐसे पुरुषरत्ननका जीवनचरित सर्वमनुष्योंने वन्दनीय तथा अन्तरमें (हृदयमें) शिरोमणिरूपतें धारणीय और सुखप्रद है यह निःसंशय काहेते वे गुणसंततिके उत्पादक है.

अभ्युदय या प्रेय किंसाधक अपरा विद्याके तथा निःश्रेयस वा प्रेय किंसाधक परविद्याके अनेक उपयोगी अंश महात्मनके चरित्रोंमें व्यक्ताव्यक्त होवे हैं, वे एक देशालेख्य (नकसा) के सम सन्मार्ग दर्शक होते हैं.

या जीवनचरितके विषय शुभस्मरणीय नामशेष आपने 'गगाभाईजी'का–सम्पूर्णनामसे गौरीशंकर उदयशंकरजीका–मुखवचनामृतो–(आरंभे दिया वाक्य–रूपीअमृतो) क पूर्वाश्रमका'प्रताप'देश देशांतरोंमें बाहिर प्रकाशता रहेगा; तथा पूर्वोत्तराश्रमकी 'अन्तरात्म-ज्योति' सो तिनोंने परमपुरुषार्थ किये थे और अनेक अन्यजनोंकूं सो प्रताप तथा ज्योति तत्सम बनाती रहेगी. ऐसे महात्मनका पावन जीवन, प्रेयःश्रेयोभिलाषी जनोंने उपासनीय तथा स्मरणीय है.

ऐसे संकीर्तनीय गुणोंके संग्रह स्थानके पट्टके उद्घाटनका मानद कार्य स्वस्थ-अस्वस्थकर उभय गुणवत् है. इन गुणोंका व्याख्यान देश परदेशीय जनोंने, संग्राहकोंने, तथा साक्षर चरित्रलेखकोंने किये

ये तत्र तत्र जटित हैं. याते इस लेखकको तो केवल पट्ट उद्घाटनकाही सुलभ सरल कार्य कर्तव्य है यह स्वस्थकर है; परन्तु ऐसे मानद कार्यकर होनेकी संमति देनी यह अस्वस्थकर था.

मनोरथ प्रियतम मूर्तियां जो पुराण-इतिहासादिकनमें जटित ग्रथित हैं. तिनके ऊपरसे आपने चारितका--विचार-उच्चार-आचारका-आकार करनेकेलिये पहिले या देशमें प्रयत्न होतारहा- उत्तम बुद्धि स्वभावसेही तत्त्वपक्षपातिनी होवे है. बुद्धिके ऊपर रागद्वेषका पट्टा नहीं चढा होवे या दूर हुवा होवे, और सो सत्समागमके संस्कारते शुद्धभई होवे तब सो बुद्धि शुद्ध सत्यतत्त्वकूं प्रत्यक्ष करसकतीहै. सत्यदर्शनमें राग द्वेष बुद्धिका प्रतिबंध करेहै. अनेक संसर्गसे वे रागद्वेष बुद्धिकूं विकृत करेहैं ता बुद्धिको स्वच्छा तथा स्वस्था करनेकेलिये महाजनोंके जीवनचारित बहुउपयोगी है.

सज्जनोंका अखिलजीवन उपयोगीहै. वे विद्यमान होतेहैं तब दृष्टिगोचर होयके और वे नामशेष होनेतें श्रुतिगोचर होयके तिनोंकी पूर्वा मध्या तथा उत्तरा

अवस्था बोधप्रदा होवेहै. साधनसंपादिका संस्कार्या पूर्वावस्थामें अनेकविध प्रतिकूलताकूं सहन करिके वे स्वाश्रयसें आपने वास्ते कैसा मार्ग बांधतेहैं; सत्समागमसें तथा विचारसें आपनेमें कैसी संवृद्धिप्रदा योग्यताकूं पूरतेहैं; ता योग्यताके साधनतें मध्यावस्थामें— सर्वोपकारक्षम गृहस्थाश्रममें समृद्धिकेलिये प्रयत्न करते हुये यथाशक्ति बहुजनोंका आश्रयस्थान होयके लोकोपयोगी कैसे होतेहैं; और ता स्थिरा संस्कृता ऐसी अवस्थामें प्रातिकेय अनुभवका उपयोग उत्तरा संस्कर्त्री अवस्थामें, रागद्वेषविनिर्मुक्त होयके लोककल्याणके अर्थ किसप्रकारसे करतेहैं; इन सर्वप्रकारसें अंकित महाजनोंके जीवनचरित्र होवेहै, वे देशोन्नतिमें बहुत उपकारक हैं.

श्रीयुत गौरीशंकरजी वृद्धनगर नागरब्राह्मणज्ञातिके विश्वामित्र माधुच्छंदस, अघमर्षण या त्रिप्रवरतें अन्वित पाणिनीयसगोत्र अथर्ववेदांतर्गत शौनकीयशाखाध्यायी 'शर्म' नामतें शर्मके स्वअष्टम पूर्वज श्रीरंगसुत मूलस्थानके कुलमें, विक्रमसंवत् १८६१ के श्रावण

कृष्णमें प्रतिपत् १, क्रिश्चन् सन् १८०५ ता. २१ आगस्टके दिनमें गोधाग्राममें जन्मेथे. तिनके पिताका नाम उदयशंकर और माताका नाम अजबबा था श्रीगौरीशंकरके देढवर्षके वयमें तिनोकी माता और तेरह वर्षके वयमें तिनके पिताजी सद्गतभये, श्रीवेणीलालनामक एक तिनका भ्राता था, सो संस्कृत पठित और नैष्ठिक अग्निहोत्री था. और अचीबा तथा राजुबा नामतें दो भगिनीयां थी तिनके उदयशंकर पिताजी निवृत्त हुये ते पछि श्रीगौरीशंकरजी; तिनके मातुल देशाई भवानीदास और तिनकी स्त्री आदित्यबा इनोंके छायामें रहतेथे. तिस देशकालमें प्रचलित सामान्य वाचन–लेखन गणितका केवल शिक्षण श्रीगौरीशंकरजीको प्राप्त हुवाथा.

गोधाग्रामके पास वीरपाल नामक महादेवका देवालय है, तामें श्रीगौरीशंकरजीने उपनयनके अनन्तर गायत्रीपुरश्चरण किया. तिसते तिनोंकी बुद्धि निर्मला तथा निश्चला अधिक भई.

श्रीगौरीशंकरजीको जलाशयमें तरनेपर अतिशय प्रीतिथी. तिनके युवावस्थाके मित्रनमें प्रमुख मित्र मनोहरदास नामक वसावडके नागर थे. वे मनोहरदास उत्तम पक्षवादी (वकील) थे, और तिनोंनें उत्तर अवस्थामें वेदांतका प्रगल्भज्ञान संपादन करिके सरल कविता रचीहैं सो कविता 'मनोहरपद' नामके पुस्तकमें श्रीगौरीशंकरजीनें प्रसिद्ध करवाईहै, तिन मनोहरदासजीने संन्यासाश्रम ग्रहण किया था. ता मनोहर स्वामिजिके प्रति श्रीगौरीशंकरजीका आदरभाव और स्नेह ममता वहुत थी.

श्रीगौरीशंकरजीने आपने चौदवर्षके वयमें गोघामें सूत्रकार्पटके व्यापारधंदाका आरंभ किया,तामें द्रव्यकी अपेक्षा थी.ताकी पूर्ण अनुकूलता न होनेते ता व्यापारकूं छोडी आपने सोलहवर्षके अवस्थामें विक्रम संवत् १८७७ में भावनगर संस्थानकी राज्यसेवामें तिनोंने प्रवेश किया. तिनका मासिक वेतन केवल रु. ६ । अक्षरसें सव्वाछ था.

श्रीगौरीशंकरजीकी उत्तम बुद्धि और उद्यम देखि भावनगर राज्यके तत्कालीन कार्यभारी रा. रा. सेवकरामजी किसी राज्यकार्यके लिये वटपत्तन (वडोदरा) में पोलिटिकल रेसिडेंट के पास जाते रहे वहां तिनोंने श्रीगौरीशंकरजीकूं साथ लिये, रा.रा. सेवकरामजीका ता सहवासमें श्रीगौरीशंकरजीके संबंधमें अतिउच्चमत हुवा भावनगरमें पीछेआनेतें अनंतर कुंडलाग्रामके वहिवाटकाररूपतें श्रीगौरीशंकरजीको भेजे. तहांके काठीखुमाणलोक निरंकुश वर्ततेथे तिनोंकूं श्रीगौरीशंकरजीनें कला और वलसें किंचित् मर्यादामें लाये और कुंडलाकी संपत्तिकी वृद्धि करने शुरू किया. ऐसेमें रा. रा. सेवकरामजीका कार्यभार छूटनेते श्रीगौरीशंकरजीकोभी गृहमें बैठना पडा श्रीगौरीशंकरजीका जब भावनगर राज्यके साथ संबंध भया तब ता राज्यकी स्थिति अस्पृहणीय थी. राज्यकुटुंबमें क्लेश राज्यमें अव्यवस्था, कितनेक ग्रामोंपर अधिकारका हरण, धनका संकोच; आरब कोळीआदि शस्त्रधारी लोकनकी उद्धतता, ब्रिटिशसाम्राज्यके

अधिकारियनका विरुद्धभाव, संबंधी देशीय संस्थानोंके सह कलह, राज्यके विश्वासाधिकारी मनुष्य विद्याहीन और स्वार्थी, वे आप आपनी संभालमें व्यग्र रहनेतें राज्यकी लाभ हानिकूं जाननेके लिये या संरक्षण करनेकेलिये अशक्त और निरवकाश ऐसें दीखतेथे; किसी किसी स्थलमें अच्छे मनुष्य होंगे परंतु तिनोंको पूरा अधिकार नहीं होनेते वे निरुद्योगीके सदृश रहतेथे. परंतु 'राज्यके भाग्य बडे होतेहैं' यह प्रथा सत्य जनाई. ऐसी बहुप्रकारते प्रतिकूलसंधिमें राज्यके रक्षणकेलिये समर्थ ऐसे किसीभी पुरुपकी पूर्ण अपेक्षा थी. अप्राप्त राज्यका प्रापणरूप योग तथा ता प्राप्त राज्यका रक्षणरूप क्षेम होना सो योग्यपुरुपसेही होवेहै यह निःसंशय है. राज्यके शक्तिका आधार केवल बडे गृह, द्रव्य, दुर्ग, (किला) पर्वत, धातुके आभूपण या शस्त्रास्त्र, सुंदर वस्त्र इत्यादिकनके ऊपर रहता नहीं, किंतु चेतनावाले योग्य पुरुपनके ऊपर स्थित हैं. प्रतापी पुरुपही स्वपराक्रमसें राज्यके रचक और रक्षक होतेहैं. और इसीकारणतेही बुद्धि-

शाली महाराजानें स्वधर्मज्ञ पुरुष रत्ननके संग्रहकूंही सर्वोत्कृष्ट संग्रह और अमूल्य कोष समझना. भावनगर राज्यके ऊपर अनेकविध अभियोग (फिर्यादिया) राजकोटमें तथा खेडामें, अमदाबादमें और सूरतमें ब्रिटिशराज्यके न्यायकोर्टनमें चलतेथे. गोघाधंधुका प्रगणाके ११६ ग्रामनके ऊपरसें ई. सन् १८१६ में भावनगरराज्यनें अधिकार गुमायाथा,तिस संबंधमें ब्रिटिश राज्यके अधिकारियनके सह विवाद, सुराष्ट्रके देशीय राज्य तथा ग्रासियां, आदिकनके साथ देश, ग्राम,क्षेत्र संबंधी विवाद लक्षावधि द्रव्यके लेनदेनेके अभियोग आदि प्रमुख थे. स्वराज्यसंबंधी अनेक उपाधि उपस्थित होवे तिनकी पीडा तो राज्यभारसह स्वाभाविकही होवे तिसका कहनाही क्या ?

भावनगरके महाराज विजयसिंहजीनें राज्यविपत्तियांके निवारणकार्यमें श्रीगौरीशंकरजीका नियोग किया. अमदाबाद और सूरतमें जो अभियोग प्रचलित थे तिनमें रा. रा. गौरीशंकरजीने पुष्कलप्रवीणता दर्शाई तिसते राज्यका लाभ हुवा. महाराज

श्रीविजयसिंहजीके ऊपर एक आरोप रखके तिनको अमदावादके ब्रिटिशकोर्टमें लेआनेका नक्की हुवाथा. तिसमें रा. गौरीशंकरजीनें महाराज श्रीके प्रतिनिधिरूपसें विवाद करिके तथा तासंबंधमें लिखान करिके अन्यायका प्रतिबंध करिके जय मिलाया. ई. सन १८३८ में एक अभियोगमें साक्षीरूपसें महाराजश्रीको जानेका आज्ञापत्र अमदाबादके ब्रिटिश अधिकारी तरफसें आयाथा. तिसप्रकारसें जाना होवे तो राज्यकर्तारूपते अधमता गिनी जावें, और फिर फिरसें तादृश पीडा आती रहें ऐसा थां. इस विषयमें रा. गौरीशंकरजीनें काठियावाड पोलिटिकल एजंटके सहाय्यतासें निर्णयकराया कि, राज्यकर्ताके ऊपर ऐसा अधिकार चलाया जावे नहीं. या सिद्धते महाराज श्रीविजयसिंहजी बहुत प्रसन्न हुवे. और आपने श्रीयुत हस्त करिके प्रसादपत्र एक राजमान्य राजश्रीयुत गौरीशंकरजीके प्रति लिखके भेजा. तिसमें राज्यभक्त नागर कार्यभारीयनकी प्रशंसा करिके सन्तोष दर्शाया.

महाराज विजयसिंहजीने स्वामीभक्त रा. रा. गौरीशंकरजीकी बुद्धि, उद्योग, राजकार्यकुशलता और राज्यभक्ति अनुभवकिे ई० सन् १८४७ में राजकोटमें 'ब्रिटिशएजन्सी' में कर्नल लेंगके बारेमें आपने प्रतिनिधिरूपते तिनकूं नियुक्त किये; पीछे कारभारी तुल्य तिनको अधिकार दिया.

क्रिश्चन १९ के शतकारंभमें रा. गौरीशंकरजीका जन्म हुआ था. तिसी शतकमें ब्रिटिश राज्यका संबंध सुराष्ट्र प्रांत (काठियावाड) के साथ हुवाथा. सन् १८०७-८ में कर्नल वाकरकृत समाधान हुवाथा.

सन् १८२२ में राजकोटमें (एजन्सी प्रतिनिधि स्थान) स्थपायके काप्टन बार्नवेल प्रथम प्रतिनिधि एजंट भये. ऐसा होनेते रा. गौरीशंकरजीका चारित और सुराष्ट्रके ब्रिटिश राज्यका वृत्तांत समकालीन है. तिसके मुख्य प्रसंग या चारित्रमें प्रसिद्ध हुये हैं और तिनका मुख्य भाग रा. गौरीशंकरजीने स्वयं अपने असाधारण स्मरण सामर्थ्यसे लिखाया है तिसते वाचकवर्गको गौरीशंकरचरित्र द्वयाश्रयतुल्य होगा..

तिनका अनुसरणीय चरित्र और तिसके साथही सौराष्ट्रका तत्समकालीन वृत्तांतभी जाननेमें आवेगा. रा. रा. गौरीशंकर राज्यके सर्वाधिकारी समान तो सन् १८४७ सेही हुये थे. सन् १८५० में रा. रा. परमानन्ददास जो राज्यके मुख्यप्रधान थे वे सद्गत होनेते रा. रा. गौरीशंकरजीको प्रधानपदभी प्राप्त हुआ पीछे ई० सन् १८५२ में महाराज विजयसिंहजी सद्गत हुये, और राज्यासनके ऊपर महाराज अक्षयराज आये. वेभी सन् १८५४ में सद्गत हुये, तिसतें ताही सन् १८५४ म महाराज यशस्वतिंसहजी भावनगर संस्थानके राजा हुये.

रा. रा. गौरीशंकरजीको प्रधानपद होनेते अनंतर तिन्होंने राज्यकी अन्तर्बाह्य दोनों कार्यकी व्यवस्था करनेपर लक्ष दिया; तामें प्रथम तो अन्तर्व्यवस्थामें एकताकी अपेक्षा थी, ताके अर्थ समर्थ पुरुषनको सहाय्य लिये रा. रा. देसाई संतोषरामजी तथा रा.रा. सामलदासआदि रा.रा.गौरीशंकरजीके प्रमुख सहाय्य थे, पंचतन्त्रमें कहा है कि "समर्थ तेजस्वीभी

असहाय्य क्या करसकेगा? वायुके सहाय्यरहि प्रज्वलितभी अग्नि स्वयं शांत होवेहै. तैसें शमी पुरुष शांत होंगे" यह सिद्धान्त समीक्ष्यकारी (विचारपूर्वक कार्यकर्ता) गौरीशंकरजीको अज्ञात नहींथा. सत्समागमस स्वयंप्रकाशिता विद्या तथा स्वानुभव तिनोसे स्नेह समताके तथा उदारवृत्तियांके लाभ अनेकविध विचक्षण (कुशल) गौरीशंकरजीनें जानेथे, तिन साधनोंसे देश परदेशीक योग्य मनुष्यनकूं खींचलिये और तिनोंकूं राज्यके सहाय्यभत कियेथे, जातसें बुद्धिशाली और उत्कृष्ट सहायकनके पुष्टिसें वे महाबलवान् हुये. तिनोंके विनयबुद्धिमत्ता, समयसूचकता, आर्जव आदि गुणोंनें ब्रिटिश सार्वभौम अधिकारीयनके मनमें ठीक प्रवेश कियाथा. वे प्रतिज्ञाके अनुसार पालन करेंगे ऐसा तिनोंको विश्वास हुवाथा.

जिस राज्यके राज्यकर्ता यथार्थ राजा होतेहैं वे तो प्रजाके हितमेंही अपना हित समझतेहैं राज्यकेस्वामीने राज्यका सेवक होना यही राजाका धर्म है ऐसा मानके तदनुसार वर्तते हैं, भीष्मपितामह उपदेश करतेहैंः—

"तथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसानुगम् ।
गर्भस्य हितमाधत्ते,तथा राजाप्यसंशयम्॥१॥"

जैसें गर्भिणी स्त्री आपने मनको अनुकूल ऐसें प्रिय-पतिकूं तजके गर्भका हित करेहै तैसें राजानेभी (अपने प्रिय–हितकात्याग करिके) प्रजाका हित करना यह असंशय है;तादृश राजाके प्रतापसे 'यथा राजा तथा प्रजा' या न्यायतें राज्यके लोक भी तैसेही उत्तम होतेहैं.

"तेन धर्मोत्तरश्चायं कृतो लोको महात्मना ।
रञ्जिताश्च प्रजाः सर्वास्तेन राजेति शब्द्यते ॥"
(महाभारत–शांतिपर्व ५९-१२५)

तिन महात्मनतें यह लोक धर्मोत्तर (धर्मप्रधान–धर्माधिक) और सर्वप्रजा रञ्जिता (राजीहुई) होतीहै तातेही सो राजाशब्दकरिके कहावे है.

यद्यपि यथार्थ तो ऐसा है, तथापि पतितकालमें राज्यका अंग द्विधा होवेहै.

अहुण (हिंदु) राज्यके दो अंग हैं. एक राजाका आपने मान लिये स्वार्थका 'राजअंग' और एक

प्रजा—प्रकृति—राजा इन सर्वके स्वार्थका संमिश्र अंग (राज्यअंग) रा. रा. गौरीशंकरजीने देश काल जानिके इन दोनों भागमें परस्पर आघात होयके बडा गडबडाट होवे नहीं ऐसी सावधानता रखी, इसते राज्यकार्यमें एकरंग रहा.

"सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः" ।

(किरातार्जुनीय १—५)

राजा तथा तिनके कार्यभारी सदा अनुकूल रहनेते तिनोंके विषें सर्वसंपत्ति रति प्रीति करे हैं, अर्थात् जिस राज्यमें राजा प्रजा तथा प्रकृति इनोंका परस्परमें अनुकूल भाव होवें सो राज्य समृद्धिवाला और संवर्धमान होवेहै, और तासें राजा प्रजा सर्व सुखी होतेहैं, ऐसी एकरूपता जितने अंशमें थी तावत्प्रमाणतें भावनगर राज्यका बहुत लाभ होता भया.

अरबनके जमादारोंका समाधान हुवा, राज्यके बहुत देनेका निकाल हुवा; सं. १८१६ में राजधानी भावनगर सहित ११६ ग्रामके ऊपर जपती करिके अधिकार ब्रिटिश राज्यनें लेलियाथा और तिसतेही असंख्य पीडा उपस्थित होरहीथी. सो संताप सन् १८६६ में दूर हुवा; जिह्वामें कुठार परंतु हस्तमें सुवर्णधारी ऐसें राज्यपोषक कर्षिवल तथा व्यापारीयनकी अनेक प्रकारसें अनुकूलता करनेतें देशकी समृद्धि होने लगी—अखात नौकास्थान (बंदर) आदिकनके शुद्धिवृद्धिसें देशसंपतिकी वृद्धि होने लगी; राज्यगृह आ सडका होनेलगी, शाला और पुस्तकशाला स्थापित भई. इत्यादि राज्यवसतिको सुखकारी अनेक साधन प्रवृत्त हुये, तिसका फल यह हुवा किः—महाराज विजयसिंहजीके वारेमें राज्यका आय रु. ७,००,०००सात लाखका था, सो बढके पंचगुणित रु. ३५,००,००० का हुवा भावनगरका नाम बहुत दूरदेशमें गाने

लगे; भावनगरकी प्रजा तथा पदार्थ देशविदेशमें प्रख्यात हुये; और प्रथम विद्यावृद्धिका आरंभ भावनगरमें होनेतें तिसका महाफल यह हुवा कि एक दशकमें प्रायशः भावनगरकी नागर प्रजा, जिसने या विद्याका लाभ त्वरित लियाथा ता नागर प्रजाका सुराष्ट्रमें प्रमुख अधिकार स्थानोंमें दर्शन होने लगा. और यह विद्याप्रिय गौरीशंकरजीकी दीर्घदृष्टिका प्रत्यक्ष प्रमाण गिनाया भावनगर राज्यके ऐसें उत्तम उदयका प्रधान निमित्त रा.रा.गौरीशंकरजी थे, सदाग्रह,अविरत श्रम, आपत्तिसंपत्तिमें चित्तकी अविकृतरूपा धृति, संधिविग्रहमें दक्षता, राज्यसेवा, प्रजाममता, उदारवृत्ति इत्यादि स्पृहणीय तथा प्रशंसनीय गुणनकरिके रा.रा. गौरीशंकरजीनें भावनगरके उत्तरोत्तर राज्यकर्ता, प्रजा- और ब्रिटिश महाराज्य अधिकारीयनका ऐसा उच्च- भाव संपादन किया कि पूर्ण.

कर्नल लेंग, पीछे कर्नल बार, पीछे गुर्जरवत्सल प्रख्यात मि. एके. फार्बस, पीछे कर्नल किटिंज, पीछे

कर्नल एन्डरसन, पीछे मि. पील इत्यादि पोलिटिकल एजंट ओर मि. जे. बी. पील. मि. सर टी. सी. होप, मिवाई ली इत्यादि गृहस्थ, जो राज्यकार्य प्रसंगसे भावनगरसंस्थानके प्रसंगमें आये तिनोंने अद्वितीय प्रेमसें रा. रा. गौरीशंकरजीकी योग्यताकी प्रशंसा प्रसंगोपात्त करीहे. भावनगरराज्यमें और सुराष्ट्रदेशमें तो 'गगाभाई' यह नाम कचित्‌ही अज्ञात होगा.

ऐसें समर्थमहाशय तथा 'विमृश्यकारीकोही गुण-लुब्धा संपत्तियां स्वयमेव संलग्न होतीहैं' ऐसा भारवि कहेहैं तामें क्यां संदेह.

विक्रम संवत् १९२२ फाल्गुन शुद्ध ५ भौम ईस्वी सन् १८६६ के मार्चमें भावनगरके महाराज श्रीयशस्वत्सिंहजीनें एक राजसभा भरायके, आपने विजयी तथा यशस्वी प्रधान रा. रा. गौरीशंकरजीके राज्यसेवाकी प्रशंसा करिके तुर्खा नामक एक ग्राम ग्रासम दईके आपनी गुणज्ञता प्रदर्शित कियी. यह राजप्रसाद दाता प्रतिग्रहिता दोनोंको अतिशय शोभाप्रद हुवा.

भावनगरराज्यमें जो जो उत्तम प्रजोपयोगी कार्य हुये तिन संबंधमें प्रसन्नता प्रदर्शनके लिये तत्रभवती महाराज्ञी विक्टोरियाने भावनगरके ठक्कुर साहेब रावळ श्रीयशस्वत्सिंहजीको के. सी. एस. आई. के संमानद पदवीदानतें भूषित किये. ता प्रसंगमें ई. स. १८६७में भावनगरका राज्यमंडल मुंबईमें आयाथा. इतने वर्षतक सुराष्ट्रके देशके राज्यकर्ता राजनकूं तोफका मान मिलता नहींथा, इसी समयमें तोफके मानका आरंभ हुवा, और भावनगरके महाराज श्रीको यह मान प्रथम मिला.

रा० रा० गौरीशंकरजी शास्त्रसंस्कारसें जानतेथे कि—

'क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा'

भ. गी. ४-१२

या मनुष्यलोकमें कर्मसें सिद्धि शीघ्र होवेहै ता प्रकारसें स्वकर्मसें उत्पन्न होनेवाली स्वाश्रयसें, सदाचारसें, तथा तज्जनित सदाश्रयसें उत्पन्न होनेवाली फलसिद्धि रा.रा.गौरीशंकरजीने मिलाई और तिनोंको अभीष्ट अभ्युदय हुवा. या सर्वसमयमें स्वधर्मके शुभ संस्कारनकी वृद्धिकरनेमें बिलकुल प्रमाद किया नहीं, भावनगरराज्यके वे धुरंधर होनेते यद्यपि महाभारवहन तिनके शिर था तथापि तिनोंका मनःप्रीतिकर उच्चाभिलाष स्वधर्मज्ञानसंपादन करनेमें था. तिनोंका सिद्धांतो हुवाथा किः—

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" ।

भ. गी. ४-३८

ज्ञानतुल्य शुद्धिकर या व्यवहार कोईभी नहीं.

"सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥"
(मनुस्मृति. १२ । ८५)

इन सर्वनमें (वेदाभ्यास आदिकनमें) आत्मज्ञान (उपनिषदुक्त) प्रधानता करिके स्मृतिका विषय है सर्वविद्यामें सोही अग्र्य–प्रधान (प्रतिपाद्य) है; कारण तातेही अमृत प्राप्त होवे है. बुद्धिशाली पुरुषने सर्वोपरि परिगणित परमपुरुषार्थप्रद ज्ञानके परिशीलनमें रा. रा. गौरीशंकरजी अभिरुचि रखते थे.

स्वामी श्रीपूर्णानन्द जो 'टोकरास्वामी' अपर नामते प्रसिद्ध थे तिनके शिष्य ब्रह्मचारी नित्यानन्द जो 'गणेशशास्त्री' या नामसे प्रसिद्ध थे तिनकूं प्रार्थिके संवत् १९१८ में भावनगरमें तिनके चरण पधराये तिन्होंके मुखसें पञ्चदशी, नैष्कर्म्यसिद्धि, आत्मपुराण, शांकरभाष्यसहित प्रस्थानत्रय उपदेशसाहस्री आदि अष्टादश (१८) ग्रंथका विधिपूर्वक श्रवण रा. रा. गौरीशंकरजीने तथा सन्तोषराम देसाईने विक्रम संवत् १९१८ से २३ तक पंचवर्षपर्यंत किया. या

प्रकारसें श्रवण मनन करनेतें असंभावना तथा विपरीत भावनारूप ज्ञानके प्रतिबन्धक दोषनका नाश होवे है तथा ज्ञाननिष्ठायोग्यता लक्षणा सिद्धि प्राप्त होवे है और तिसतेंही मोक्षरूप फलमें पर्यवसित होनेवाली ज्ञाननिष्ठाकी सिद्धि प्राप्त होवे.

उपाधिके भेदतें एकही चेतन भेदकूं प्राप्त होता है, सो नामरूप उपाधिनका अधिष्ठान जो 'सत्' सोही ब्रह्म है, जो 'सत्' सोही आत्मा है, और सो सद्रूप आत्मा तूंही है; श्रवण, मनन, निदिध्यासन करिके कार्यकरण संघातरूप जीवपदार्थके बीचमेंसे चिदाभासकूं (उपाधितें कल्पित आभासत्वका बाध होनेतें अवशिष्टचित्‌कूं) "सोही तूं हो" आदि महावाक्यजन्य "ब्रह्मैवाहं" (सच्चिदानन्दस्वरूपब्रह्मही मैं हूं काहेतें कूटस्थरूप हूं यातें) या ज्ञानतें उपाधिका विलय होनेतें स्वस्वरूप जो सच्चिदानन्द ता रूपतें अभेद करिके जो अवस्थान सोही मोक्ष है. यह उपनिषदनका सिद्धांत है तिसकूं शास्त्रगुरुकृपातें यथार्थ (अप्रतिबद्ध) जानीके वे लब्धविवेक हुये थे.

इसप्रकारसे विशिष्ट (सर्वोत्कृष्ट) वेदांतवियामें संपन्न हुये. अनन्तर अभ्यासते अम्लाना तथा अभिनवा ऐसी वियाके रक्षण अर्थ वे सत्समागममें तिस विषयमें संवाद चलावते थे. तिन्होंके समानवर्गी गोकलजी झाला सह वे पराविया विषयक पत्रव्यवहार चलाते थे ऐसा जनाता है, 'सूज्ञ' गोकलजी झाला तथा 'वेदांत' या नामते इसी लेखने लिखित पुस्तकमें वे शास्त्रीय चर्चा पत्र प्रसिद्ध हुये है.

रा.रा.सागलदासभी पूर्वोक्त श्रवणके एक श्रोता थे तिनके द्वारा सुज्ञगोकलजी भाईके प्रति पत्र लिखे जातेथे और संवाद प्रवृत्त होताथा.एक देशोत्पन्नके सत्समागममें बुद्धिका संमेलन तथा संशोधन होइके आनन्द होवे यह स्वाभाविक है. स्वामी रामकृष्णभारती, अधोक्षजानन्द, सच्चिदानन्द, सदानन्दगिरि, कैलासपर्वत, राजराजेश्वर, सच्चिद्घनानन्दगिरि, ब्रह्मानन्द, गंभीरानन्द सरस्वती आदि अनेक महात्मनका समागम रा. रा. गौरीशंकरजीको प्रचलित था.

या रीतिसे व्यवहार परमार्थ उभयव्यवसाय व्यवस्थापूर्वक चलावते थे, परंतु संसारव्यवहारकी चंचलता पर्यायते अस्थिरता सुप्रसिद्ध है. महाराजा जस्वत्सिंहजी संवत् १९२६, ई० सन् १८७० में सद्गत हुये. ता समयमें तिनके कुमार श्रीतख्तसिंहजीकी उमर १२–१३ वर्षकी थी ठकुरसाहबजीने मरणसमयमें इच्छापत्र किया था कि कुमार श्रीकी बाल्यावस्थामें आपने प्रधान कार्यभारी प्रामाणिक, विश्वसनीय और सुप्रतिष्ठित रा. रा. गौरीशंकरजी राज्यकार्य चलावेंगे, और ब्रिटिश महाराज्यके प्रतिनिधि पोलिटिकलएजंटने उपरिस्थ रूपते दृष्टि रखनी, तत्कालीन राजनीतिमें सो रीति अनुकूल नहीं गिनाती, किसी युरोपीय अधिकारीकी योजना ऐसे समयमें होनेका पूरा संभव होवे है; तैसाही भावनगरमें होता परन्तु रा. रा. गौरीशंकरजीकी योग्यता सर्वमान्या थी, राजपुरुषकी योग्यता और महत्ता और प्रतिष्ठा कैसी राज्योपयोगिनी होवे है तिसका यह वृत्तांत उदाहरणभूत था. पोलिटिकल क. एण्डरसनने भावनगर

राज्यविरुद्ध लिखान किया अनेक प्रकारकी लोक- वार्ता चलने लगी. रा. रा. गौरीशंकरजीने उपमंत्री (बुद्धिसहाय) और उपसचिव (कार्यसहाय) राज- कार्यकुशल रा. रा. सामलदासजीको मुम्बई प्रांताधीश गवर्नर सर सेमोराफिट्झजेराल्डके पास भेजे, वे मुम्बईसे भावनगरराज्यके प्रतिनिधि सेठ मेरवानजी भावनगरीको साथ लेके गवर्नरसाहेब महाबलेश्वरमें थे तहां गये तिस कालमें पोलिटिकल सेक्रेटरी मि० वेडुर्बर्न जैसे न्यायी और समभावी पुरुषथे, यथाविधि वृत्तांत निवेदन कियेते गवर्नरसाहेबने किसी मध्यमार्ग निकालनेका संकल्प किया, और रा. रा. गौरीशंकरजी को समक्षमिलनेकी इच्छा जनाई, पुनामें तिन्होंका मेलन हुवा, रा. रा. गौरीशंकरजीकी कुशलता और दक्षता देखके गवर्नरसाहेब बहुत प्रसन्न हुये और मि. ई. एच. पर्सिवलकूं सहकारी योजके भावनगर संस्थानका राज्य संयुक्त प्रवर्तनके द्वारा चलावनेका निर्णय हुवा तिसते भावनगरराज्यके लाभ और शोभामें वृद्धि बनी रही.

यह संयुक्त राज्यव्यवहार सन् १८७८ के एप्रिल मासतक चला, तामें लोकोपयोगी बहुतकार्य किये, भावनगरमें सन् १८७१ गौरीशंकर जलाशय, सडका, कूप, तलाव, पूल, सूत्रकपडाके यंत्र, वृक्षारोपण, सार्वजनिक धर्मशाला, तथा सारा धारा तथा नियम इत्यादि उपस्थित हुये. सुराष्ट्रप्रांतमेंभी ता संधिमें बहुत प्रसंग—राजकुमारपाठशाला, राजस्थानिक सभा, अफीम (अफीमसंबंधी नये करार हुये तिसतें ब्रिटिश महाराज्यको रु.४,००,००० चारलक्षका नये करका उत्पन्न हुवा.) तथा लूणके संबंधमें व्यवस्था, दिल्लीदरबारमें जाना इत्यादि उपस्थित हुये. तामेंभी रा. रा. गौरीशंकरजी एक अग्रेसर राजपुरुषथे यामें तो क्या कहना सहकारी मित्र पर्सिवल या संबंधमें लिखतेहैं किः— "राजकार्यनिमित्त आपना और मेरे संयोगादिसे वियोगावधि किसीरोज किसीकार्यमेंभी आपना मतभेद हुवा नहीं, तिसतें आपनें विषयमें सरकारीरीतिसे तथा खानगी रीतिसे मेरेकूं पूर्ण संतोष हुवाहै" यह

गुणाभान पत्र रा. रा. गौरीशंकरजीकी राज्यनीतिज्ञताके सूचनापत्र समान है.

रा. रा. गौरीशंकरजीके सदृश राजकार्यकुशल और बहुत प्रकारसें सन्माननीय पुरुषकूं मान देइके गुणज्ञता तथा प्रसन्नता दर्शावनी सो ब्रिटिशसाम्राज्यके मुख्य-अधिकारी स्वकर्तव्य मानतेहैं. यह तिनके संप्रदाय को उचित था. तदनुसार ई. सन् १८७७ के दिल्ली-दरबारमें रा. रा. गौरीशंकरजीको सी. एस. आई का मान पद मिला.

तत्रभवान् महारज श्रीतख्तसिंहजीको ता. ५ एप्रिल सन् १८७८ के रोज मि. जे. बी पीलने राज्यसभा भरवायके संभाषणपूर्वक राज्य स्वाधीन किया तिसतें अनन्तरभी रा. रा. गौरीशंकरजी प्रधानपदमें आरूढ रहे. या संधिमें 'भावनगर गोंडल रेलवे' का आरंभ हुवा. यहभी रा. रा. गौरीशंकरजीके संकल्पका शुभ-फल था.

रा. रा. गौरीशंकरजीका अभ्युदय यथेष्ट हुवा यह तिनोंके वृत्तांतमें स्पष्ट होताहै, जन्मसाफल्य कर अभीष्ट

जो निश्चयतके अर्थ तीव्रवृत्ति होना यह तादृश बुद्धि-मानोंको स्वाभाविक था.

यथाकाल लेना और यथाकाल देना वा यथा-काल ग्रहण और यथाकाल त्याग जो पुरुष जानतेहैं वही प्रवीणपुरुष गिने जातेहैं. अर्जन और विसर्जन या उभयकार्यकी अनुकूलता किसी विरल पुण्यात्मा भाग्य शाली पुरुषकोही प्राप्त होवेहै रा. रा. गौरीशंकरजीको राज्यभारतें मुक्त होनेकी अनुकूलाभी यथेष्ट आई. शुभ-संतति उदयशंकर और अखंड सौभाग्यवती अजवबाकी प्रजा भावनगरसंस्थानमें सर्वोपरि प्रधानपदमें आरूढ होनेके लियेही उत्पन्न ईहै ऐसा हुवा था.

तिनोंकी एक पुत्री अचीबाके पति रा. श्रीसेवक-राम देशाई भावनगर संस्थानके मुख्य कारभारी भयेथे; द्वितीयपुत्री राजुबाके पति रा. रा. परमानंद-दासभी इस राज्यके प्रधान हुयेथे, गौरीशंकरजी ता परमानंददासके अनुयायी थे.

जिनका अनुयायी होना तिनकें सुपात्र पुत्रको आपने अनुयायी करनेका भाग्य और मान किसी

एकही पुण्यशालीको प्राप्त होताहै, रा. रा. गौरीशंकर तैसे विरल पुण्यशाली प्रतित हुये, वे संवत् १९३५के पौष कृष्ण ५ सोमवार ता. १३ जान्युआरी सन १८७९ मकरसंक्रांतिके शुभरोज राज्यकारभारसे मुक्त हुये और ता राज्यधुरमें आपने भगिनीके और पूर्वयायी परमानंददासके पुत्र और राज्यके उपप्रधान रा. रा. सामलदास नियुक्त किये, जा स्वाश्रयीपुरुपनें रु ७५ के वार्षिक वेतनसें राज्यसेवामें प्रवेश किया था, तिनके सद्बुद्धि और सद्वर्तनसें राज्यसेवातें विमोक्षण कालमें, वार्षिक राद्रुपार्जन—रु. २०,०००) वंशपरंपरा आरास्त्र ग्राम और रु. २०,०००) विश्रामवृत्ति (पेन्शन) कुल रु ४०,०००) का वर्षाशन. कैसा अल्प आरंभ और कैसा विस्मयजनक महान् अंत ! देशीय राज्यकी यथार्थ सेवाका ऐसा असाधारण प्रतिफल है.

आपने ब्रिटिश साम्राज्यके एक मुख्य प्रधान लार्ड रोझबरी, प्रथमके मुख्य प्रधान प्रख्यात पिट्टके जीवनचारित्रमें एकवृत्तांत लिखतेहैं किः—एक प्रसंगमें राज-

पुरुषनमें संवाद चला कि; मुख्यनधानमें कौनसा गुण आवश्यक है. किसीनें वक्तृता कही, किसीनें विद्या कही, किसीनें परिश्रम कहा; पिछे सहनशीलता क्षमा कही प्रतापीपीट्ट प्रधानका यह अनुभवसिद्ध शब्द एक ग्रंथसम बोधक है. राज्य प्रसंगमें सहनशीलता-क्षमा समान सिद्धिदायक अन्य कोईभी नहीं. रा. रा. गौरी-शंकरजीमें यह गुण अधिक अंशतें था.

महाकवि मिल्टन कहेहे कि:—

जो सुतम सहनेकूं शक्त्हे सो सुतम करनेकोभी शक्तहे यह यथार्थ हे सर्व प्राणि पदार्थका आधार-स्थान या महती पृथ्वी तिसकी सहनशीलता सर्व-मान्या तथा लोकप्रसिद्धा है. महाजनोंके महत्ताका प्रमाण तिनमें आधार-आश्रय देनेकी शक्ति अनुसार होवेहे और ता आधारका बल सहनशीलतामें है. सह-नशीलता और फलप्रदता ये महत्ताके प्रमुखलक्षण हैं. सहनशीलता वा क्षमा यह शक्तिमान्का भूषणहे महाभारतके उद्योगपर्वमें तथा वनपर्वमें वारंवार कहा है कि:—

"क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न सिध्यति"

या लोकमें क्षमा होना ये बडा वशीकरण है, क्षमा करिके क्या सिद्ध होवे नहीं ?अर्थात् क्षमावानकूं सर्व सिद्ध होवेहै.

विक्रमके विंशतिमें और क्राइस्टके उगनीसमें शतकमें या देशमें समर्थ राज्यकारभारी प्रधानपद पायके प्रख्यात हुये, इस लेखकने देखे जाने सो मुख्य अष्टप्रधान हैं दक्षिणमें सर टी माधवराव;मध्यदेशमें सर सालरजंग तथा सर दिनकरराव और पश्चिमभागमें सुराष्ट्रादिमें सद्वृत्तानुक्रमतें पंचजन-सुज्ञ गोकुलजी झाला, सामलदास, परमानन्ददास, गौरीशंकर उदय-शंकर, हरिदास, विहारिदास तथा मणिभाई यशभाई ये हैं, वे राज्यकार्यमें कुशल थे. इतनाही नहीं किन्तु महत्तासे तथा सुजनतासे सम्पन्न होनेमें और पुरुषार्थ सिद्धिमें स्वाश्रय उद्योग, उत्साह, सारग्रहणशक्ति, विद्या, विनय, सभ्यता, गुणराग, सत्यता, राजभक्ति, न्याया-र्जनता, दीर्घदृष्टि, एकनिष्ठा, सत्समागम,दक्षता,सद्वृत्ति

सच्छक्ति, उन्नतीच्छा, स्वधर्मज्ञता, समभावआदि आवश्यक साधन गुण वे न्यूनाधिकता करिके सर्वनमें थे परन्तु प्रत्येकमें विशिष्टगुण ऐसे प्रतीत होते थे. सुज्ञ गोकलजी झालामें ब्रह्मनिष्ठा, विद्वत्ता, राज्यनिष्ठादि; सामलदासमें बुद्धिमत्ता, धैर्य,राजनीतिज्ञतादि; गौरीशंकरमें स्मरणशक्ति, राज्यनिष्ठा, ब्रह्मनिष्ठादि; हरिदासमें सत्यनिष्ठा, स्पष्टकथनता, निरभिमानतादि; मणिभाईमें उत्साह, उद्योग, (आदरपूर्वक यत्न) उन्नतीच्छादि, सज्जन अन्यजनोंके सुखानुमोदक तथा दुःखके अनुशोचक होते हैं; सुखके गुणकांक होयके जनसुखकूं वर्धमान करते हैं, और दुखके भाजकांक होयके दुःखको क्षीण करते हैं, सज्जन सर्वप्रकारते कल्याणकारी होते हैं.

मंदबुद्धि नुगरे विषयासक्त प्राकृतजन राज्यकारभार छोडनेते अनन्तर कुटुम्बभारमें या रझळके (घूमते) या विषयवासनामें लपटायके आयुष्य गुमाते हैं, परन्तु महाशय बुद्धिमान पुरुष ऊर्ध्वगामी मार्ग कोई अन्यही होवे है वे तो आपनी पूर्वावस्थामें

आपनी उत्तरावस्थाके साधन सम्पादित करके तैयार रहते हैं, और अधिकाधिक उन्नतिकूं उत्तरोत्तर पाते हैं, ऐसे प्राप्त विवेकपुरुषही स्वपरकल्याणकारी होयके कृतकृत्य होते हैं, ताका रा. रा. गौरीशंकरजीके उत्तर वृत्तांतसे दर्शन होवेगा.

रा. रा. गौरीशंकरजीके अत्रावधि (इतने) सज्जीवनचरित्रसे जाननेमें आया है कि वे दीर्घदृष्टि, शुभसंस्कारी तथा लब्धविवेक थे. तिन्होंका विद्यासंपादन विवादार्थ वा वंचनार्थ नहीं था, किंतु सारासार विवेकके अर्थ था; और तिनके अधिकारका उपयोग गर्व अथवा परपीडनके लिये नहीं था, किंतु लोकोपयोग करनेमें था; वे नम्रतासेही उन्नति पाते थे. तन मनके आहारशुद्धितेंही सत्वशुद्धि और तातेंही तिनको ध्रुवा स्मृति प्राप्त हुईथी, सुगम्यतासे तथा परकार्यमें अप्रवेशसेंही वे लोकप्रिय और सर्वमान्य हुयेथें; तिनोमें कार्यदक्षतामिश्र पटुता, शांतिमिश्र–निर्भयता, और विनय मिश्र स्पष्टवक्तृता थी. वें शिष्टनकेप्रति प्रमोदवान्,

समाननकेप्रतिस्नेहवान्, कनिष्ठनकेप्रतिकरुणावान्, और विरुद्धोंके प्रति उपेक्षावान् प्रतीत होतेथे.

वे सत्यधर्मसम्बन्धमें सत्यमतधारी—सत्पथगामीथे और व्यवहारसंबंधमें वे उच्छेदक—मारक नहींथे किंतु पूर्वपश्चिमके सारग्राही अन्वर्थ सुउद्धारक वा समुद्धारक थे, संस्थापक, रक्षक, तारक थे.

रा. रा. गौरीशंकर संपूर्ण धर्मनिष्ठ थे वे सनातन-वर्णाश्रमधर्मके ज्ञाते थे, वे विमल वंशीयकूं स्वधर्म बोधते बहुत तुष्टि, पुष्टि दियीथी, ताते सद्विचारी और सदाचारी थे, वे सद्धर्मताके सच्चारित्र्यसे देशीयनके तथा युरोपीयनके बहुमानकूं पात्र हुयेथे. देशीयनका तो तिनकें प्रति पूज्यभाव था उच्च युरोपीयनकाभी तिनोंके प्रति उच्च आदरसत्कार था, सो तिन युरोपि-यनके लेख और भाषणनमें प्रसिद्ध है.

स्थानिक पोलिटिकल एजंटनसे तो प्रांताधिपति गव र्नरनके पर्यंतके वे सन्मानपात्र थें. लार्ड एल्फिन्स्टन, (सन् १८५५—६ में प्रथम मिलनेतें पीछे) सर रसल

कलार्क (सन् १८५७–६२) सर वार्टल फ्रियर (सन् १८६२–६७)सर सेमोर फिटझ जेराल्ड (सन् १८६७–७२)सर फिलिफ वोडहाउस (सन् १८७२–१८७७) सर रिचर्डटेम्पल (सन् १८७७–८०) सर जेम्स फर्ग्युसन (सन् १८८०–८५) लार्ड रे (सन् १८८५–९०) और तिसतें अनन्तर सर्व गवर्नरनके संभावनाके रा. रा. गौरीशंकर पात्र थें. तत्र भवती महारानी विक्टोरियाके पौत्र आल्वर्टने ई. सन् १८९० में प्रवासार्थ भरतखण्डमें प्रवेश कियाथा, वे भावनगरमें आये थे एक आदमीको मिलने शक्य ऐसें मानो के ऊपर शिखर चढता होवे ऐसा ता समयमें हुवां. रा. रा. गौरीशंकरने पुत्र पौत्र प्रपौत्रनकूं संपत्ति सपूरत करके जातसें चतुर्थाश्रम स्वीकार कियाथा. तिनके मठरूप निवासस्थानमें आल्वर्टने जातसें आयके अपूर्वमान दियाथा डाक्टर माक्समूलर सर एडविन आर्नल्ड, सर मानियर उल्लियम्स तथा सर जाहन जार्डीन भिवाईली आदि युरोपीयन विद्वानोकेभी रा. रा. गौरीशंकरजी प्रशंसा पात्र थें, तिसते अधिक प्रसिद्ध हुयेहैं.

देशीयनमें भी महाराजा होल्कर आदिके, राज्यप्रधाननमें सर टी. माधवराव आदिके, देशहितरत दादाभाई नवरोजी आदिकनके रा. रा. गौरीशंकरजी संभावना तथा स्नेह ममताके पात्र थें.

रा. रा. गौरीशंकरजीकी स्मरणशक्ति असाधारण थी यह तो सुप्रसिद्ध है वे प्रतिभावान् और समयोचित उत्तरदाताभी थें.

सर टी माधवराव वडोदरा राज्यके मुख्य प्रधान सन् १८७८ भावनगर देखनेके लिये आयेथे, सर्वमण्डलसहित वे गौरीशंकर जलाशय देखनेको गयेथे. वाकूं देखिके वहोत राजी हुये और विनोदमें रा. रा. गौरीशंकरके प्रति कहा कि, इस तलावका जो खर्चा हुवा है तिसतें द्विगुणित खर्चा लेके यह तलाव हमको वडोदरामें भेजदो याके उत्तरमें समय संवादी रा. रा. गौरीशंकरजी बोले किः—नामदार गायकवाड सरकार हमारे मुरब्बी होनेतें यह तलाव तिन नामदारको हम नजर करतेहैं, परंतु याको लेजाना आपने हाथमें है.

पूर्वोक्त संवाद हुवा तब उभयराज्यका संभावित मंडल तहां था तिन सर्वकूं विनोदाश्चर्य होना यह स्वाभाविक था.

रा. रा. गौरीशंकरमें दानवृत्ति प्रियवाक्सहिता थी, और स्वतंत्रता मार्दवसहिता थी. केवल प्रताप तथा प्रभावतेंही नहीं, किंतु तिनके चारित्र्यबलसें तिनोंकी महत्ता थी.

वें स्वगुणनके फलसंपत्तिसें नम्र थे,सज्जनोंको कुटुंबी सम थ गुणनकोंही पूजास्थान गिनतें तिसतें गुणरागी और निरभिमानी थें. सुज्ञ गोकलजी झालाके मुखतें एक वेदांतज्ञानका ग्रंथ श्रवण किया तातें तिनके प्रति आपना स्वाभाविक सस्नेह पूज्यभाव प्रदर्शित करतेथें. तिसते तथा पत्रव्यवहारमें आपने नामकी सही 'गगा उदयशंकर' या प्रकारतें अंततक करतेथें, तिसतें तिनोंकी गुणानुरागिता और निरभिमानिता प्रत्यक्ष प्रमाणतें प्रसिद्ध होवेहै.

वे बाह्याभ्यंतर दंभरहित रहतेथे, वे शुद्ध, स्वच्छ, और महार्घवस्त्र धारण करतेथे, और अकृत्रिम सरल

और विनीतभावसे वर्ततेथे, वें नियमित कालमें नियमित कार्यकारि तथा समयपालक थे, वे बहुत मिताहारी थे, तिनोंकी पित्तप्रकृति होनेतें दाडिमका तडका रस निकलवायके मध्याह्नोतर पीतेथें.

संस्कर्त्री उत्तरावस्था.

देशके अस्तकालमें जो श्री तथा सरस्वती निसर्ग भिन्ना प्रतीत होवेहै इतनाही नहीं किंतु राज्यश्री शौर्यश्री कलाश्री व्यापारश्री आदि श्रीयां स्वयंभी एकस्था होनी यह दुर्लभ होजावेहै, सो श्री तथा सरस्वतीका दुर्लभ एकसंश्रय जा देशमें सिद्ध होवेहै सो देश अवश्य उदयदिशामें होवेहै.

आजकल युरोपमें ऐसा है, ग्लाड्स्टन सदृशनमें राज्यश्री और सरस्वतीका एकसंश्रय प्रसिद्ध है, या देशमें कालिदास, माघ, सायण, माधव, आदिकनमें भी श्रीका तथा सरस्वतीका योग प्रसिद्धहै.

आपने गौरीशंकरजीमेंभी ये दुर्लभ संश्रयके अंश थे, याकूं समझिके किस देशीय विवेकीको आनंद नहीं होवे ?

अधिकारसंपन्न हुये बिना बोधक बन्नेके लोभी लेखक धर्मसंबंधी लेख लिखनेका अविवेक करतेहैं और वे स्वछंदते कहतेहैं किः—

जहां पांव रखनेंमें भी देवदूत डरतेहैं, तहां मूर्ख घसतेहैं. या रीतिअनिष्ट है, तातें ता रीतिको छोडिके उत्तम ग्रंथोंका श्रवण मननसें ज्ञाननिष्ठ होयके ग्रंथ लिखना उचित है, तादृश योग्यतासंपत्तिपूर्वक रा. रा. गौरीशंकरजीनें ग्रंथ रचनेका आरंभ किया. विक्रम संवत् १९४० में श्रीस्वरूपानुसंधान (गौ०जीवनचरित पृष्ठ ४४३ देखो) नामतें जो वेदांतग्रंथ जामें ब्रह्म आत्माके एकत्वका सत्प्रक्रियासें विचार कियाहै.और जो सुज्ञ गौरीशंकरजी स्वयं सविनय लिखतेहैं तथा 'वेदांतका श्रवण यथामति हुवा तिसके तात्पर्यार्थका अनुसंधान' के अर्थ रच्याहै और जो लघुग्रंथ निर्गुण तथा सगुणब्रह्ममें उपासना प्रवृत्तिके लिये तथा ब्रह्मआत्माकी एकताविषयमें यथार्थज्ञानोत्पत्तिकेलिये सर्व मुमुक्षु अधिकारियनकूं परमप्रीतिसें ग्रंथकर्तानें अर्पण कियाहै.

सो ग्रंथ प्रसिद्ध हुवाहै. याग्रंथमें उत्तमसंग्रह है तातें सर्वमुमुक्षुजनको यह सूचनीय है कि ता ग्रंथकूं वारंवार विचारिके संपूर्ण लाभ लेना मनःक्रांतविषयके सर्वजन भागी भोगी होवे ऐसा सर्वपूज्य आर्यजनोंका स्वभाव होवेहै, तदनुसार रा. रा. गौरीशंकरजी आपनें संबंध-कारी अधिकारीजनोंकूं संस्कर्त्री अवस्थामें प्रसंगते ज्ञानबोध करतेथें. ज्ञानीके दृष्टिमें विरुद्धभाव रहनानहीं यासंबधमें वे कहतेथें. किः—

"ज्ञानीकी गम जैसी डालो तैसी सम,
अज्ञानीकी बुद्धि जैसी नाखो तैसी उंधी"

प्रख्यात सद्वृत्तमणिभाई एकबार भावनगर आयेथें, तिनोंका अनुकरणीय गौरीशंकरजीके ऊपर उच्चभाव था गुणानुरागी गौरीशंकरजीकीभी ममता गुणी उदय-वान् मणिभाईकेपर बहुत थी, राज्यकार्यकुशलाभ मणिभाईभी जन्मसाफल्य कर धर्मज्ञानमार्गमें प्रवीण होने अवश्यहैं या शुभेच्छाते. एक उपनिषद्का पुस्तक मणिभाईको दइके ज्ञानमार्गमें वृद्धिका आशीर्वाद

दियाथा ता आशीर्वादकी सफलता करनेमें उन्नतेच्छा-वान् मणिभाई प्रयत्नवानभी थें.

कोई प्रसंगमें किसीनें स्वरूपानुसंधान ग्रंथकी प्रशंसाकरके कहा कि इसमें संस्कृतशब्द बहुत हैं जो सरलभाषासें लिखते तो ठीक होता रा. रा. गौरीशंकरजी तो सुनिके हँसे और बोले कि "आचमनकरनां या स्थानमें पानी फेंकना" ऐसा लिखना हमारेसें बनसकता नहीं.

. रा. गौरीशंकर उपार्जित द्रव्यका सत्पात्र त्यागकरनारूप रक्षणामें कुशल थे, उन्होंनें संवत् १९११के संवत्सरमें श्रीकाशीमें हाटकेश्वर महादेवका स्थापन करिके एक धर्मशाला बनाई थी, और तामें स्वामी श्रीरामकृष्णभारतीको अधिष्ठाता करेथे. तत्र काशीमें तथा कर्नालीक्षेत्रमें संन्यासीके अन्नछत्र किये रहे, भावनगरमें वेदशाला स्थापन करीहै. इनों श्रीने आपने हस्तसें रु. ७१०००) शिवालय, धर्मशाला तथा जलाशयनमें अर्पण कियेथे; रु२८०००).

विद्यावृद्धि, अनाथदुःखनिवारण आदिमें दियेथे और रु. १६०००) संस्कृत प्राकृत ग्रन्थनकी प्रसिद्धिमें तथा ग्रन्थकारोंके आश्रयरूपतें दियेथें. ऐसे कुल रु. १,१५,००० के अदमासतें तिनके धर्मादायका मेल था. तिनके महा गृहस्थाश्रमको अनुरूप अन्य प्रकीर्ण दान होतेथे यामें क्या कहनां ? तिनके विदेहमुक्तितें अनन्तर तिनके पुत्र विजयशंकर तथा प्रभाशंकर इनोनें आराधनाके दिन उत्तरक्रियांग यथोचित ज्ञातिभोजनादि कारिके तामें रु. ६०,०००) धर्मादायमें बोनेतें तिसप्रकार-तेभी रा.रा.गौरीशंकरजीके नामस्मरण रहनेका प्रयत्न कियाहै.

श्रीसच्चिदानन्दसरस्वती. ।

यद्यपि "तस्यानन्दमयं जगत्" (ज्ञानीको जगत् आनन्दमय है) तथापि कृतार्थ सुज्ञवंद्य गौरी-शंकरजीनें मनुष्यदेहकी पूरीं सार्थकता करनेकेलिये विक्रम संवत् १९४२ के आषाढ शुद्ध ८–११ पर्यंत

श्रौतस्मार्त क्रियातें सर्वका त्याग करके सर्वकूं अभय तथा शुभाशीर्वाद देइके परमहंसपरिव्राजकाचार्य गुरुगोविंदानन्दसरस्वतीसें संन्यासाश्रम संपादित किया. धन्य है धन्यहै; धन्यहै; वारंवार ऐसें कृतकृत्य महात्मा धन्यहै. गुरुनें शिष्यकूं उच्चासनमें स्थापिके पूजन अभेददृष्टितें किया और सच्चिदानन्दसरस्वती समर्पणपूर्वक वंदन किया

याप्रकारसें मोक्षैकफल चतुर्थाश्रमी, श्रवण मनन निदिध्यासन् साधनोंतें परतत्त्व वेदनावान् (गौरीशंकर) नें संपादनीय विद्वत्सन्यासका संपादन किया. तिनका यात्रादिकनके अशक्ति होनेतें कुटीचक सन्यास था विद्वत्सन्यास जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखार्थ होवेहै जगत्की पर्यायतें प्रपंचकी आभासरूप (दग्धपटन्यायतें) प्रतीतिसह ब्रह्मस्वरूपतें अवस्थितिसो जीवन्मुक्ति है. जगत्–प्रपंचकी प्रतीति रहित ब्रह्मरूपावस्थिति सो

१ इस तृतीय चतुर्थाश्रम संधिका मूलग्रंथका १३ वां प्रकरण वाचनेकेलिये सर्वमुमुक्षुजनके प्रति सूचनाहै तिसतें अनेक प्रकारका बोध होना संभावित है.

'विदेहमुक्ति' है. निरावरण, परिपूर्ण, परंतु सत्वृत्तिक आनन्द सो जीवन्मुक्तिका विलक्षणानन्द है.

श्री सच्चिदानन्दसरस्वतीका मठ सो विद्वानोंका महात्मनका, तथा संन्यासीयनका समागम स्थान हुवा और तहां नित्य नियमित शास्त्रश्रवण सुखवि-स्तार होनेलगा.

प्राप्तजीवन्मुक्ति प्रारब्धप्रतिभासनाशपर्यंत सर्वत्र स्वस्व-रूपदृष्टितें स्वरूपानुसन्धानवान् सच्चिदानन्दसरस्वती विक्रमाब्द १९४८ के मार्गशीर्ष शुद्ध १ तिथिमें निर्वाणमुक्तिके प्रति प्राप्त होते भये.

श्रीपूज्यपादशंकर इसप्रकारतें निर्वाणमुक्तिकूं कहते हैं प्रायः जीवन्मुक्त अकाम-अस्तकाम रहते हैं, परंतु निरतिशय सख अर्थात् परमानन्दके अर्थ आत्मकाम होवे हैं, और ताकूं प्राप्तपुरुषनका देहावसान हुयेते तिनके प्राण उत्क्रमण करते नहीं, किन्तु लवण स्वका-रण जलमें विलीन होवे है; तैसे ज्ञानीके कल्पित प्राणादि स्वाध्याधिष्ठान स्वकारणमें लीन होते हैं, तिसतें

अनन्तर सो पुरुष अखंड आत्मस्वरूपसेंही लि.
है (यह शतश्लोकी श्लोक ४६का अर्थ तो अनुवाद
"ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति" बृहदारण्यक. ४-४
(जीवउपाधिते पूर्व अवस्थामें ब्रह्मरूपही था
अविद्या उपाधियोगतें जीवदशा (कल्पना)
अधिष्ठान हुवा. पुनः विद्यातें स्वस्वरूपब्रह्मत्वमें लि.
होवे है)

मनःसुखराम सूर्यराम त्रिपाठी.

उपलेखः—

महात्मनके जीवनचरित दीपशलाकासदृश हैं, तिन्होंका एक प्रसंग एक अंश, एक खंडक, एकवाक्य और किसी समय तो एकशब्दभी वाचकके अंतःकरण-रूप दीपपात्रस्थ वर्ति (वृत्ति) कूं प्रकटीकरणते अनंतर प्रकाशित करे है और सो दीप तिसके धारकको तथा अन्यजनसमुदायको प्रकाशदानते सुखी करे हैं.

निरपेक्षसुजनता तथा महत्ता अलौकिक है, मद्रास प्रांतके प्राचीन एक कवि श्लेषालंकारग्रथनाते कथन करते हैं किः—

"स्नेहप्रयोगमनपेक्ष्य दशां च पात्रं
धुन्वंस्तमांसि सुजनापररत्नदीपः ॥
मार्गप्रकाशनकृते यदि नाभविष्य-
त्सन्मार्गगामि जनता खलु नाभविष्यत् ॥"
(वादीभसिंहसूरिगद्यचिन्तामणिः १—७)

अर्थः—सुजनापररत्नदीप जो स्नेह (१) तैल (२) प्रीति रूप , दशा (१) वाट (२) स्थिति) और पात्र (१) दीपपात्र (२) अधिकारिता) इन्होंकी अपेक्षा विना अन्धकारका नाश करे हैं, सो दीप मार्गप्रकाशनके अर्थ न होता तो जनसमूह सन्मार्गगामी नहीं होता यह यथार्थ है. ऐसे प्रेरक प्रकाशभाविनी प्रजाके अर्थ सन्मार्गदर्शक होइ देशोन्नतिमें निमित्त होते हैं. याते ईदृशमहात्माके जीवनचरित्र स्वगुणार्पक होनेते प्रसिद्ध करने यह सर्वशुभेच्छकनका धर्म है तामेंभी विशिष्टबुद्धिदायाद तथा धनदायाद ऐसे महात्मनका चरित्र अवश्य प्रसिद्ध करना.

अभेद सो विद्याका विषय, और जितना भेद प्रपंच सो अविद्याका विषय; तिन दोनोंके बीचमें अविद्याका कर्म उपासनारूपविषय सो सर्वभी इसउपनिषद्के संपूर्ण तृतिय अध्यायकरिके व्याख्यान किया;और व्याख्यात सो अविद्याका विषय सूक्ष्म स्थल भेदकरिके दोप्रका-रका है; और तामें जो प्राणाख्य सूक्ष्मलिंगात्मा सो स्थूलका उपष्टंभक (धारणकरनेवाला है;) और याही प्राणकूं श्रुतिमें विराट्शरीरवाला प्रजापतिरूप हिरण्य-गर्भ कहाहै यही प्राणाख्य हिरण्यगर्भरूप ब्रह्म वस्तुतः एकहुयांभी शरीराख्य उपाधिसे अनेकवत् प्रतीयमान होइरहाहै; इस्से परवेद्य ब्रह्म कोई है नहीं. यारीतिसे अविद्याका विषयभूत और चेतनवान् कर्ता भोक्तारूप प्राणाख्य अपरब्रह्मकूंही परमात्मरूप करिके निश्चय करताहुयां गार्ग्यब्राह्मण पूर्ववक्ता पक्षवादी और तासें परशुद्ध आत्मस्वरूपकूं जाननेवाला अजातशत्रु सिद्धां-तवादी श्रोता या ब्रह्मविद्याके उपक्रममें कहाहै. गार्ग्य और अजातशत्रुकी आख्यायिका जो प्रश्नोत्तररूपसे कथन करी सो तो वस्तुस्वरूपके सुखबोध होनेकेही

शंकरजीकी पितृभक्तिकारणतें तीव्रा वृत्ति हुई. सो कार्य सद्गत साक्षर ग. रा.मणिलाल द्विवेदिके स्वाधीन किया. तिनोनें ५–६ प्रकरण लिखे, अनंतर तिनका शरीर शीर्ण हुवा पश्चात् शेषकार्य साक्षर रा. रा. कौशिक रामजीको सपूरत किया. तिनोनें बृहत्संग्रहतें तारण निकालके प्रस्तुत जीवनचरित्र रच्याहै और इच्छतेहैं कि यह जीवनचरित्र भूरिलोकोपकारी होवे

इंग्लिश भाषामें एक संपूर्ण परंतु संक्षिप्त जीवनचरित्र साक्षर रा. रा. दोलतराम कृपारामने रचने शुरू कियाहै.

भट्ट मोक्षमूलर कहतेहैं किः—

अन्यजनोंके जीवनचरित्रनके अभ्यासमें आपने स्वल्पार्थे करिके (सीधेमें सीधी रीतितें) अनुभव लेना सुशक होवेहै, यह सत्यहै.

प्रसंगते सद्गत पूर्वोक्त पंचमहाजनोंमेंकें सामळदासकें तथा हरिदास तथा मणिभाईके दायादनका अत्र एकनखत पुनः स्मरणकरनेमें आताहै कि तिन्होंने आपने पूर्वजनके उद्देशते एक आवश्यक

रा. रा. गौरीशंकरजीके सत्पुत्र विजयशंकरजीने भूरिभोजन गयाश्राद्ध पूर्वक यह पितृगुणका कीर्तन कियाहै. तिसतें वे धन्यवादके पात्रहैं प्रथम तो जीवनचारित्र साधननका संग्रह दुर्लभ होवेहै, क्याहेते निरूपणीय महात्माके समवयस्क भूरिजनोंका अभाव प्रायः होवेहै. रा. रा. गौरीशंकरजीके जीवनचारित्रसाधनसंग्रहका आरंभ रा. रा. गौरीशंकरजीके विद्यमानतासमयसेही हुवाथा, रा. रा. विजयशंकरजीने पत्रव्यहारका संग्रह रख्याथा, प्रसंगनकी स्मरणी रा. रा. साकरलाल सवैलालने तथा रा. रा. दुलेराय महीपतरायने लिखीथी और पीछे रा. रा. संतोषराम माधवजी निरूपणीय महात्मनके उपसहकारीसदृश थे तिसतें तिनके जाणमें प्रायःसर्वराज्यप्रसंग होनेतें विनोंनें साधनसंग्रह पूर्ण कराया. ता संग्रहपरसें प्रथम इंग्लिशमें एक लेख सद्गतसाक्षर रा. रा. जवेरीलाल उमयाशंकरजीने रच्याथा. गौरीशंकर शरीरोपाधितें निर्मुक्त होनेतें पश्चात् किसी योग्य विद्वानसें जीवनचारित्र लिखावनेकी प्रशंसनीय रा. रा. विजय

बोलना नहीं) होवे तो ता (ईश्वरदत्ता) वाणीके जन्मकी अफलता तुल्य है, जा वाणीनें गुणीयनके गुण नहीं गाये सो वाणी असह्य शल्य (बाणाग्रभाग) के तुल्य असह्यवेदनाप्रदा होवेहै. ऐसा मानिके वाग्मी लेखवाणीरूप ईश्वरके प्रसादकूं ईश्वरदत्त गुणान्वितकरिके लोक कल्याणार्थ वेचतेहैं यह परम उचित है.

युरोपीय विचारकभी इसीके अनुसार बोलतेहैं.

गुणसत्ता यह सत्तम उदारता है.

सत्यताके प्रति प्रीति यामें दर्साईहै कि, प्रत्येक प्राणिपदार्थमें सार कैसा शोधना, और तिसकूं कैसा भूलना, याकूं मनुष्य जानेहै.

ऐसा सार शोधके जनमण्डलका लाभ लेना. यही सज्जनका कर्तव्य माननीय है.

म. सू. त्रि.

उद्घाटनमिदं भाषान्तरेणाभाषितं मया ॥
इतोऽवबुद्धं विबुधाचरितं चरतां चिरम् ॥१॥

समाप्तमिदमुद्घाटनम्।

॥ श्रीः ॥

अथ स्वरूपानुसन्धानकी विषयानुक्रमणिका।
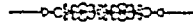
प्रथम प्रक्रिया। पृष्ठ १

प. प. श्रीभगवान् शङ्कराचार्यकृत प्रातः-स्मरण, पञ्चकोशोंसे आत्माके विवेकका विचार, स्थूलशरीरभूत अन्नमय-कोशका स्वरूप।

द्वितीय प्रक्रिया। पृष्ठ २९

बृहदारण्यकादि उपनिषदोंके अनुसार आत्मनिष्ठ पुरुषको कायक्लेश नहीं होता, चिदाभासकी ७ अवस्था, त्वम्प-दार्थ शोधन प्रकार, ईशावास्य उप-निषद्के अनुसार शोकापगमरूप षष्ठी अवस्थाका वर्णन।

तृतीय प्रक्रिया। पृष्ठ ५७

श्रीमद्भगवद्गीता, मुण्डक, कैवल्योपनिष-दादिमतसे कर्म अकर्मका विवेचन

अनात्मको कर्मरूपता और आत्माको अकर्मरूपता ।

चतुर्थ प्रक्रिया । पृष्ठ ८७

माण्डूक्यश्रुति, गौडपादाचार्य्यकारिका तथा अन्य प्रमणोंसे ब्रह्मवस्तु प्रतिपादनकी प्रक्रिया, जाग्रत् तथा स्वप्नावस्थामें आत्माका वैलक्षण्य ।

पञ्चम प्रक्रिया । पृष्ठ १२९

वेदान्त शास्त्रके ३ प्रस्थानों (श्रुति-सूत्र-स्मृति)के प. प. भगवान् शंकराचार्यकृत १६ भाष्योंके नाम, श्रुति प्रस्थानमें ईश, केन, कठ इत्यादि क्रमसे उपनिषदोंका सार लेकर शङ्कासमाधानपूर्वक ब्रह्मनिरूपण ।

षष्ठ प्रक्रिया । पृष्ठ २८२

व्याससूत्रों तथा शङ्करभाष्यके अर्थको स्पष्ट करनेवाले उपक्रम उपसंहारादि षड्विध लिङ्गोंका स्पष्टीकरण तथा वेदान्त सूत्र चतुष्टयीकी व्याख्या ।

सप्तम प्रक्रिया—स्मृतिप्रस्थान । पृष्ठ ३८४
श्रीमद्भगवद्गीता, विष्णुसहस्रनाम, सनत्सुजातीय इनतीनों भाष्योंके अनुसार विचार । गीताके साथ इतिहास पुराणोंकी एकवाक्यता ।
ब्रह्मात्मैक्यकी दृढता सम्पादन करनेके निमित्त शङ्कराचार्यकृत उपदेश साहस्रीके चुने हुए कुछ वाक्य ।

इति स्वरूपानुसन्धानकी विषयानुक्रमणिका समाप्त ।
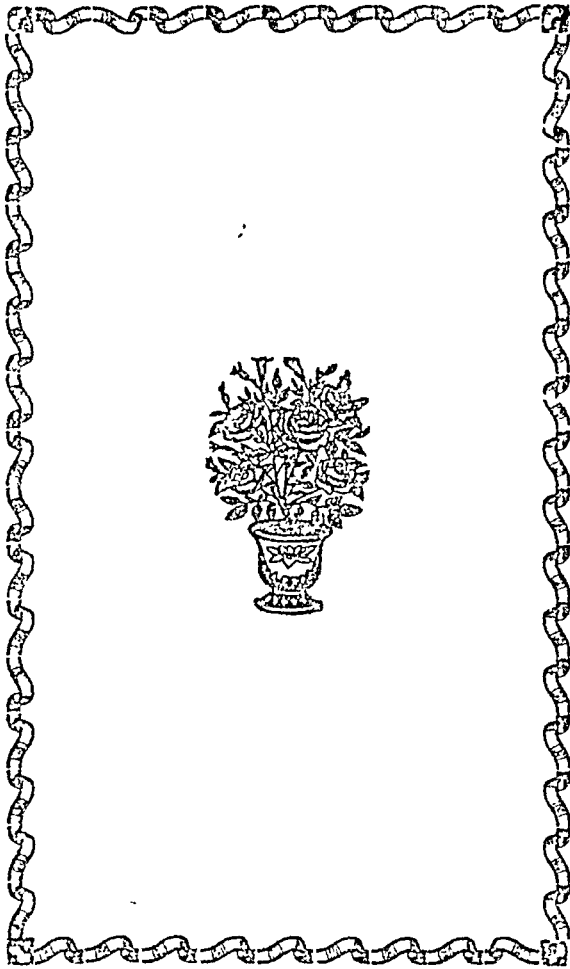
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ श्रीस्वरूपानुसंधानम् ।
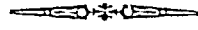
प्रथम प्रक्रिया ।

वेदांतका श्रवण यथामति जो किया उसके तात्पर्यार्थका नियमपूर्वक अनुसंधान ।

श्रीशंकरभगवत्पूज्यपादनके वाक्यरूप मंगलाचरण.

प्रातःस्मरणस्तोत्र ।

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ॥
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥ १ ॥

याका यह अर्थ है:—सद्रूप (तीनों कालमें जाका बाध कहिये नाश होवे नहीं सो) चिद्रूप (जडरूप जगत्का प्रकाशक) औ आनंदरूप (दुःखरूप जगत्का जासे जीवन होवे सो) तथा परमहंस (परम कहिये उत्कृष्टज्ञानवाले औ हंसकी न्याई अनात्मासें आत्माकूं पृथक् करिके साक्षात् करनेवाले) परिव्राजकनका

(ज्ञानार्थ जिनोंने सर्वन्यास कियाहै उनका) परम-प्राप्य स्थान. औ तुरीय कहिये जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्था कूं अतिक्रमणकरिके स्थित, तथा तिन अवस्थाकूं नित्य जाननेवाला (प्रकाशक) औ हृदयके विषे स्फुरणायमान (प्रकाशमान) जो प्रत्यगात्मतत्त्व ताका प्रातःकालके विषें स्मरण करूंहूं कहिये जो प्रत्यगात्मतत्त्व सो निष्कल (प्राणादि षोडशकलारहित) ब्रह्मरूपही है. भूतसंघात कहिये देहादिरूप नहीं; इस रीतिसें आत्मब्रह्मका अभेद करिके अनुसंधान करूंहूं ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि मनसो वचसामवाच्यं
वाचो विभांति निखिला यदनुग्रहेण ।
यं नेतिनेति वचनैर्निगमा अवोचु-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥ २ ॥

---

१ प्रतिअंचतीति प्रत्यक (अन्नमयादि आनदमयपर्यंत पंचकोशोंमें व्यापिके भिन्न साक्षीरूप आत्मा.) । २ षोडशकला प्रश्नोपनिपदके छठे प्रश्नमें लिखीह. सो प्राण (१) श्रद्धा (२) आकाशादि पंचभूत (७) इंद्रिय (८) मन (९) अन्न (१०) वीर्य (११) तप (१२) वेद (१३) कर्म (१४) लोक (१५) नाम (१६) ।

याका यह अर्थ है:—जो प्रत्यगभिन्न ब्रह्मस्वरूप—मन औ वाणीका अविषय है, तथा समग्रवाणी जाके अनुग्रहसें प्रकाशित होवैहै कहिये जिस्से प्रकाशित हुई वक्तव्य विषयनके ऊपर प्रवृत्त होवैहै तथा सर्ववेद जाकूं "नेति नेति" इत्यादि वचनोंसें सर्वनिषेधके अवधिरूप करिके अर्थात् पृथ्वी, आप, तेज इन तीनों मूर्त औ वायु, आकाश ये दोनूं अमूर्त मिलके मूर्तामूर्तरूप जो पंच महाभूत सो, तथा उनके कार्य जो भौतिक स्थूल, सूक्ष्म देह सोभी आत्मतत्त्व नहीं । काहेते, उत्पत्ति-विनाशवाले हैं. किंतु तिन सर्वके निषेधका अधिष्ठान-भूत जो सत्, चित्, आनंदस्वरूप सोही आत्मतत्त्व (मैं) हूं इसप्रकारसे बोधन करेहैं तथा विद्वज्जन जिसकूं ब्रह्मादि देवनकाभी देव औ जन्मादि[1] षट् विकारसें रहित औ च्युति (नाश) रहित तथा परमोत्तम कहेहैं ता प्रत्यगभिन्न ब्रह्मका प्रातःकालके विषै मैं भजन करूंहूं ॥ २ ॥

---

१ जायते, अस्ति वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति ये षट्विकार ।

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ॥
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै ॥ ३ ॥

याका यह अर्थ है:-- जो प्रत्यगभिन्न ब्रह्मस्वरूप तमसे (मायासे) परहै. तथा सूर्यकी न्याई प्रकाशस्वरूपहै. औ (यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः ॥ अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ भ० गी० अ. १५ श्लो. १८) इत्यादि प्रमाणसें पुरुषोत्तम है कहिये व्याकृत (कार्य) अव्याकृत (कारण) इन सर्वसें उत्तमहै तथा जो पूर्ण अविनाशी पद कहियेहै, तथा पूर्णस्वरूप जा अधिष्ठानके विषैं नामरूपक्रियात्मक सर्वजगत् रज्जुकेविषै सर्पकीन्याई प्रतिभास होवैहै ता प्रत्यगभिन्नब्रह्मस्वरूपकूं मैं नमस्कार करूंहूं ॥ ३॥ (इस रीतिसें तीन श्लोकोंकरिके क्रमसें मानसिक, वाचिक औ कायिक तीनों प्रकारसें त्वंपदार्थ तथा तत्पदार्थका शोधनपूर्वक ऐक्यानुसंधान किया.)

---

१ क्षर (कार्य) अक्षर (कारण) इन दोनोंसें मैं उत्तम हूं । यातें वेद औ लोकमें पुरुषोत्तम ऐसा प्रख्यात हूं ।

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम् ॥
सूत्रभाष्यकृतौ वंदे भगवंतौ पुनःपुनः ॥ १ ॥

(यो. वा. टी.)

ब्रह्मानंदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं द्वंद्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥ एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥ २ ॥

सद्गुरुकी सेवा, नमस्कारआदिकनकूं श्रद्धापूर्वक करनेसें निर्मलांतःकरण हुवा औ विवेकादि साधनचतुष्टयसंपन्न[1] जो पुरुष, सो अधिकारी १. वेदांतश्रवणसे हुये परोक्ष (सो ब्रह्म ऐसा) ज्ञानके अनंतर मनन निदिध्यासनसे अपरोक्ष कियी जो जीवब्रह्मकी एकता सो विषय २. अनर्थ जो दुःखरूप संसार ताकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप प्रयोजन ३. बोध्यबोधकभाव कहिये स्वरूप बोध्य (ज्ञानका विषय) है, औ

---

१ नित्यानित्यवस्तुविवेक (१) इहामुत्रफलभोगविराग (२) शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान (३) औ मुमुक्षुता (४) यह साधनचतुष्टय है ।

शास्त्र बोधक (ज्ञानका जनक) है यह संबंध ४ इस प्रकारका वेदांतका अनुबंधचतुष्टय. तथा

(योगवा० सा० प्र० श्लो०)

यावन्नानुग्रहः साक्षाज्जायते परमेश्वरात् ॥
तावन्न सद्गुरुं कश्चित्सच्छास्त्रं चापि नो लभेत् ॥

याका अर्थः—जो व्यापक परमेश्वर इस जगत्के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयआदिकनका कारणीभूत सर्व नामरूप क्रियात्मक भूतभौतिकनके विषैं अंतर्यामिरूपसे स्थित जो परमेश्वर तिसके स्मरण, भजन, नमस्कारादिक शुद्धभावनापूर्वक करनेसे ताकी कृपारूप अनुग्रह होवैहै सो यावत् हुवा नहीं तावत् कोई भी पुरुष सद्गुरु तथा सच्छास्त्र (वेदांतशास्त्र) कूं प्राप्त होवे नहीं ॥ १ ॥

याते (१) ईश्वरप्रसाद (२) गुरुप्रसाद (३) औ श्रुतिप्रसाद (४) आत्मप्रसाद संपादन करें. आत्मप्रसाद कहिये सद्गुरुके सत्संगसे सदसत्का विचार

तथा संतोष औ शम इन साधनोंसें पुरुषार्थसहित निरंतराभ्यास करिके ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति होवै है.

इसरीतिसें मनमें रखके अध्यारोप (कल्पना) अपवाद (निरास) न्यायकरिके ईश्वरजीवादिकनके विचारविषयक प्रथमप्रक्रिया ।

(तै० उ० वं० २ अ० १) "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" (बृ० उ० ३ । ९ । २८) " विज्ञानमानंदं ब्रह्म " ॥

इन श्रुतियोंमें उक्त शुद्धब्रह्मके स्वरूपका प्रतिबिंब शुद्धसत्त्वप्रधानमायामें हुवा, सो सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वर कहिये हैं.

सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट कहिये (१) सर्वज्ञत्व, (२) सर्वनियंतृत्व, (३) सर्वान्तर्यामित्व,(४) सर्वयोनित्व, (५) सर्वसंकल्पकत्व, (६) सर्वशक्तिमत्त्व, इत्यादि [illegible] रूपका यथार्थ ज्ञान है. यातें मायाकूं वशकरिके त्रिगुणात्मक भूत भौतिक जगत्के उत्पत्ति स्थिति लय आदिकनका चक्र असंग निर्लेप रहिके नियमपूर्वक चलावैहै ।

ऊपरलिखित सर्वज्ञत्वादिकनके अर्थ.

(१) सर्वज्ञत्व कहिये सामान्यरूपसें नामरूपक्रियात्मक सर्वप्रपंचकूं औ भूत भविष्यत् वर्तमानकूं जाणना सो. तहां–

श्रुतिः (मुं०उ०१ । १ । ९)"यः सर्वज्ञः सर्ववित्"
(२) सर्वनियंतृत्व. तहां श्रुतिः–(बृ०उ०३ । ८।९) "एतस्याक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः" ॥ इत्यादि.

याका अर्थः–हे गार्गि ! सूर्य, चंद्र,पृथ्वी,अंतरिक्ष, संवत्सरादि काल इत्यादि सर्व जा ईश्वरके आज्ञामें रहे हैं,तैसेंही ईश्वर सेतुके सदृश हैं, काहेतें भूरादि भिन्न भिन्न लोक,तथा देव,मनुष्यादि,तथा वर्णाश्रमादि, तथा भुवन तथा सर्वप्राणियनका संकर न होने पावे वास्ते धारण करनेवाला, जैसा लौकिक सेतु क्षेत्रके क्यारा आदिकूं तथा उनके जलकूं संकर होवे नहीं वैसे नियममें राखेहै।

(३) सर्वान्तर्यामित्व. तहां श्रुतिः–
(बृ०उ० ३।७।३)"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या आंतरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमंतरो यमयति" इत्यादि ।

याका यह अर्थः--जो पृथिव्यादिकनकेविषे रहेहै और पृथिव्यादिकनसें आंतरहै तथा पृथिव्यादिकनकी देवता जिसकूं नहीं जानसकतीहै तथा पृथिव्यादि जिसका शरीर है. इसप्रकारसे जो सर्वमें अंतर रहीके पृथिव्यादि सर्वनकूं नियममें राखेहै कहिये आप आपके व्यापारविषें प्रेरणा करेहै, तथा सर्वप्राणियनके अंतर रहिके प्राणिकृत पुण्य पापनकूं प्रकाशन करताहुवा तदनुसार फलकूं देवे है. सोही सर्वांतर्यामित्व ।

(४) सर्वयोनित्व कहिये सर्वनामरूपक्रियात्मक सर्वजगत्का उपादानकारण तथा निमित्तकारण अर्थात् अभिन्ननिमित्तोपादानकारण कहियेहैं. जैसें व्यष्टिसुषुप्तिका अभिमानी प्राज्ञात्मा सो स्वप्न तथा जाग्रद्रूपकार्यका कारणभूत है .तैसें समष्टिजगत्के उत्पत्ति, स्थिति, लयका कारणभूत अव्याकृतोपाधिक ईश्वर है जामें हिर[illegible] अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव कार्यरूप सृष्टि होवे है. सो सर्वयोनित्व. तहां—

तैत्तिरीयश्रुतिः (तै० उ० व० ३। अ० १) "यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति"

याका यह अर्थः—जिस ब्रह्मरूपपरमात्मासे ब्रह्मादिस्तंबपर्यंत भूतभौतिक उत्पन्न होवेहै.और जिसकरिके जात कहिये उत्पन्न भूतभौतिक प्राणकूं धारण करेहैं; और विनाशकालविषे जामें प्रविष्ट होइके तद्रूप होवेहै, सो ब्रह्म जानिये.ताही शुद्धब्रह्मका प्रतिबिंब मलिनसत्त्वप्रधान अविद्यामें होवेहै, कहिये ज्ञानक्रियाशक्तिमत् बुद्धिप्राणसंयुक्त लिंगशरीरमें प्रतिफलित होवेहै, सो जीव अल्पज्ञत्वादिविशिष्ट कहियेहै.अर्थात् आपने अधिष्ठान स्वरूपका यथार्थज्ञान भूलनेसें अविद्याके वश होइके लिंग तथा स्थूल शरीरमें अहं ममत्वका तथा स्त्री, पुत्र, धनादिकनके विषें केवल ममत्वका दृढअभिमान करनेसें अजन्मा अविक्रिय होतेभी जन्मादिषट्भावविकारवान् तथा माता, मान, मेय; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य रूपादि त्रिपुटीवान् होइके अकर्ता, अभोक्ता होतेभी कर्ता, भोक्ता होइके काम, क्रोध, लोभादिकनकी वशतासें आपातरमणीय शब्दादिविषयसुखमें आसक्तिमान् होइके जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, दुःखरूप संसृतिमान् होवेहै.

ऐसें जीवकूं कोई प्राक्तनपुण्यपरिपाकसें और(अपरोक्षानुभू० श्लो० ३) "स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्। साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम् ॥" इत्याद्युक्त साधनपूर्वक सद्गुरूका समागम होनेते नित्य, व्यापक परमेश्वरके इच्छामात्रसें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय होवेहै. ऐसें अंतर्यामी परमेश्वरका स्मरण, भजन, वंदन करनेतें उसका अंतःकरण निर्मल होइके आत्मानात्माका विवेक कहिये आत्मा सत्य है, देहादिक अनात्मा सो सर्व मिथ्याहै; ताते मिथ्यावस्तुमें दोषदृष्टि कहिये गर्भवास, जन्म, मरण, जरा, व्याधिआदि त्रिविधतापसें दुःखरूप जाणिके वैराग्य होतेही काम, क्रोध, लोभ इत्यादि दुष्टगुणोंका त्याग करिके ज्ञान, सत्य,दमादि सद्गुणवान् होइके सद्गुरुसें श्रवणमें "प्रथमं दशमोस्तीतिवत्" परोक्षज्ञान होनेते अनंतर पूछिगे हम कौन है तहां अपरोक्षानुभूतिका श्लोक १३ प्रमाण है—

"नाहं भूतगणो देहो नाहं चाक्षगणस्तथा ॥
एतद्विलक्षणः कश्चित् विचारः सोयमीदृशः॥१॥"

१अपने वर्णाश्रमधर्माचरणरूप तप करिके ईश्वरकूं प्रसन्न करनेसे अधिकारी पुरुषनकूं वैराग्यादि साधनचतुष्टय प्राप्त होतेहैं.

याका अर्थः—पंचीकृत पंचभूतोंसे उत्पन्न जो स्थूल-देह कहिए अस्थि, मांस, रुधिर, चर्म, नाडी, मूत्र, पुरीष आदिकनका समुदाय सो मैं नहीं. तथा अपंचीकृत भूतकार्य सप्तदश पदार्थका जो सूक्ष्म देह सो मैं नहीं हूं. अथवा विवेकचूडामणिका श्लो. ९८ प्रमाणहैः—

"वागादि पंच श्रोत्रादि पंच प्राणादि पंचाभ्र-मुखानि पंच।बुद्धयाद्यविद्यादि च काम कर्म-णी, पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः ॥ १ ॥"

अर्थः--वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, गुदा; (१) श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण; (२) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान; (३) आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी; (४) बुद्धि, मन, चित्त, अहंकार; (५) विक्षेपशक्ति सोही अविद्या, (६) इच्छाविशेष सोही काम, (७) पुण्य पापरूप कर्म, (८) इसप्रकारसें अष्टपुरीको सूक्ष्मशरीर वेदवित् कहैंहैं, सोभी मैं नहीं-हूं. अब "एतद्विलक्षणः कश्चित्" कहिये इन दोनूं देहसें विलक्षण कहिये पृथक् और उन द्विविध देहकूं सत्ता स्फूर्ति देनेवाला ऐसा आत्मा है उसकी विलक्षणता प्रदर्शक यह कठवल्लीकी श्रुतिः—(क० उ० २।१।३)

येन रूपं रसं गंधं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते ॥
एतद्वैतत् ॥

याका यह अर्थः--स्थूल, सूक्ष्म देहादिकसंघातसें आंतर ऐसा ज्ञानरूप जो आत्मा ताके सत्तास्फूर्तिसें सर्वलोक रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द इन विषयोंकूं और मैथुननिमित्त सुखप्रत्ययकूं स्पष्टतासे जानतेहै ।

दृष्टांतः--जैसे जिसके सत्तासें लोह दाह करे सो अग्नि है. तैसें जिसके सत्तास्फूर्तिसे लोक रूपरसादिकनका अनुभव करेहैं सो चैतन्य आत्मा है. जिस आत्माकूं या लोकके विषें अविज्ञेय कहिये ज्ञानका अविषय ऐसी कोईभी वस्तु अवशेष रहे नहीं किंतु सर्ववस्तु आत्मासेही प्रकाशित होवेहै. यही सर्वज्ञ आत्मा हृदयाकाशमें सर्वसे आंतर आनंदरूप साक्षी मैं हूं ऐसे जाने. (हृदयाकाशमें उस आत्माकूं स्पष्टतासें जाणनेवास्ते बृहदारण्यकके छटे अध्यायके श्रुतिमें याज्ञवल्क्यमुनि उपदेश करेहैं उसका संक्षिप्तार्थ यह है.—)

यद्यपि आनंदस्वरूप आत्मा सर्वत्र व्यापक है तथापि हृदयकमलकेविषैं स्थित बुद्धिकेविषैं विशेष-

करिके अभिव्यक्त होवेहै. यहां यह दृष्टांतः—जैसे सूर्यका एकही तेज ब्रह्मांडमें सर्वत्र व्यापक है; तथापि घटविषें, स्फटिकमणिके विषें और सूर्यकांतमणिके विषें स्वच्छता और अस्वच्छताके तारतम्यकरिके न्यूनाधिक प्रतीत होवेहै. कहिये घटस्थानीय तामस स्थूलदेहके विषें प्रकाशमात्र प्रतीत होवेहै, तथा राजस प्राण, इंद्रियनके विषें स्फटिकमणिकी न्याईं विशेष प्रकाश भित्त्यादिकमें प्रतिबिंबके तुल्य प्रतीत होवेहै. और सूर्यकांतमणिके विषें जैसे सूर्यका तेज दाहक और प्रकाशक रूपसें प्रतीत होवेहै, तैसेंही सात्त्विक अंतःकरणरूप जो बुद्धि उसके विषें आत्मज्योति आनंदरूप तथा प्रकाशरूप-करिके विशेष अभिव्यक्त होवेहै.

इसरीतिसें देहादिकनसें विलक्षण कूटस्थ कहिये निर्विकार जो साक्षी सो मैं हूं इसप्रकारसें विधिमुख-करके स्वस्वरूपका विचार किया और देहादिकसें बाह्य जो नामरूपक्रियात्म भूतभौतिक सर्वप्रपंच, सोभी अस्ति, भाति, प्रिय कहिये सत्, चित, आनंद, अधि-ष्ठान जो ब्रह्मरूप ताकें विषें अध्यस्त (कल्पित) हैं.

अर्थात् सोभी सर्व आत्मरूपही है. काहेते, अध्यस्तका अधिष्ठानसें अतिरिक्त स्वरूप है नहीं. तहां (वाक्य-सुधा श्लो० २०)

"अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकम् ॥
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥१॥"

याका यह अर्थः--'अस्ति, (विद्यमानता) भाति (प्रकाश) प्रियं (प्रेमास्पद) रूपं (पृथुबुध्नोदरादिक) नाम (घटपटादि)" ये पांच मिलकेही यह वस्तुहै, यह वस्तु भासेहै, यह वस्तु प्रियहै, या वस्तुका यह रूपहै, या वस्तुका यह नामहै, इस रीतिसें अंशपंचकके व्यतिरेकसें (अभावसें) व्यवहारकाही असंभव होवेहै. यातें लोकव्यवहारका विषय भूतभौतिकात्मक सर्वही वस्तु अंशपंचकात्मकही है. इस पंचअंशोंके विषैं पहिले तीन सत्, चित्, आनंद ये अंश ब्रह्मस्वरूपही हैं. औरं नाम रूप ये दो अंश जगद्रूप हैं. और "नेति नेति" या श्रुतिके अवलंबनसें निषेधमुखसेंभी विचारिये, जो स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर सोभी मैं नहींहूं. तहां यह आचार्यवचन प्रमाण है (हरिमीडेस्तो० श्लो० ३६)

"नाहं प्राणो नैव शरीरं न मनोहं नाहं बुद्धि-र्नाहमहंकारधियौ च॥योऽत्र ज्ञांशः सोऽस्म्य-हमेवेति विदुर्यं तं संसारध्वांतविनाशं हरि-मीडे ॥ १ ॥"

अर्थः—प्राण,शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह सर्व मैं नहीहूं कहिये प्राणसें आरंभ करिके चित्तपर्यं-त सर्वपदार्थ दृश्यत्व, तथा भौतिकत्व, तथा सावयवत्व, और ममताका विषय होनेतें, तथा सुषुप्त्यादिकनके विषें आत्मा होतेभी उनका अदर्शन होवेहै यातें.तथा उपच-य (वृद्धि) अपचय (क्षय) आदिधर्मवाले हैं, यातें घटादिकनकी न्याई अनात्मा है. यातें सो मैं नहीं हूं. किंतु दृश्यत्वादिधर्मनसें रहित तथा प्राणादिक सबन-का साक्षी तथा प्राणादिक व्यभिचारी हुयेभी आप अव्यभिचारी ऐसा जो चिद्धातुरूप आत्मा सोही मैं हूं. (पंचकोशातीत हूं.)

इन पंचकोशनसे आत्माके विवेकका विचार।

स्थूलशरीरभूत अन्नमयकोशका स्वरूप।

मातापितरोपभुक्त जो यवव्रीह्यादिक अन्न तासें जो वीर्य उत्पन्न होताहै तासें स्थूल देह उत्पन्न होवेहै,

और जो स्थूल देहउत्पत्तिसें अनंतरभी क्षीरआदिक अन्नकरिके वृद्धिकूं प्राप्त होवेहै और नाशसे अनंतरभी अन्न पृथ्वीमेंही लीन होवेहै. सो स्थूल देह अन्नमय कोश कहिये अन्नका विकार और आत्माका आच्छादक कोश है सो आत्मा नहीं.काहेते,जन्मसें पूर्व और मरण सें अनंतर ताका अभाव है. याते घटकी न्याई स्थूल देह अनात्मा है।

सूक्ष्मशरीरमें प्राणमय मनोमय और विज्ञानमय ये तीनो कोश अंतर्भूत हैं. ताका विवेचनः—

अन्नमयकोशसे अंतर प्राणमय कोशका स्वरूपः—

जो वायु देहके विषें पादसें आरंभ करिके मस्तकपर्यंत व्यापिके व्यानरूपसें सामर्थ्य देइके चक्षुरादि इंद्रियनकूं प्रवृत्त करेहै. सो वायु प्राणमय कोश, सोभी आत्मा नहीं है। काहेते, सो क्षुधा, तृषादि धर्मनसें पीडितहै, आत्मा तो धर्मातीत है।

प्राणमय कोशसें आंतर मनोमयकोशका स्वरूप ।

देहके विषें अहंताभिमानकूं तथा गृहादिकनके विषें ममत्वाभिमानकूं करेहै, सो मनोमयकोश कहियेहै,

सोभी मैं आत्मा नहींहूं. काहेते, कामक्रोधादिक अव-स्थाकरिके अनियत (जाका नियमकरिके एकरूप स्वभाव नहीं) स्वभाव है, और श्रुतिमें (अन्नमयं हि सोम्य मनः। छां०) भी मनकूं अन्नमय कहिके विका-रिता प्रतिपादन करीहै जैसा विकारी देह आत्मा नहीं. तैसा विकारी मनोमय कोशभी आत्मा नहीं ।

मनोमयकोशसें आंतर विज्ञानमयकोशका स्वरूपः—

सत्त्वगुणकार्य जो बुद्धि सो स्वच्छ होनेसे चिदा-भाससे संयुक्त होवेहै--सुषुप्तिकालके विषै लीन होइके पुनः जाग्रतकालके विषै मस्तकसे आरंभिके नखाग्रपर्यं-त शरीरको व्यापन करेहै जो, सो, विज्ञानमयकोश, सोभी मैं आत्मा नहींहूं. काहेते, विलयादिअवस्थावान् (सुषुप्तिमें लय पावनेवाला) है.याते घटादिकनकी न्याई आत्मा नहींहै.

विज्ञानमयकोशसें आंतर कारणशरीररूप आनंद-मयकोशका स्वरूपः—

भोक्ताशब्दकरिके वाच्य आनंदमयकोशके विषै अनात्मता दर्शावनेके लिये ताका स्वरूप कहिये-

है। पुण्यकर्मके फलके भोगकालविषैं जो वृत्ति अंतर्मुख होई आनंदका प्रतिबिंब धारण करे है, सोही वृत्ति पुण्यकर्मके फलभोगका उपराम हुयेते निद्रारूपसे लीन होवे है, सो आनंदमयकोश कहियेहै. सोभी कादाचित्कहिये सुषुप्तिअवस्थामें अभिव्यक्त होवे है. याते आत्मा नहींहूं. जैसे विद्युदभ्रादि पदार्थ आत्मा नहीं ।

शंकाः—आनंदमयादि सर्वकोशनके विषैं आत्मताका निरास करनेसें नैरात्म्यकी प्रसक्ति होवेहै.

समाधानः—बुद्ध्यादिकनके विषैं प्रतिबिंबरूपसें स्थित और प्रियादिशब्दवाच्य ऐसा जो आनंदमय कोश, ताका बिंबभूत (कारणभूत) जो मुख्य अविनाशी आनंद सोही आत्माहै. काहेते, सर्वकालविषैं नित्यहै ।

शंकाः—अन्नमयसें आरंभिके आनंदमयपर्यंत कोशनके विषैं आत्मता न हो तथापि तिनसें अतिरिक्त तो कोई आत्मा ज्ञानका विषय होता नहीं ।

समाधानः--यद्यपि आनंदमयादिकोशनका जो अनुभव होवेहै, सो अविद्याकृत आवरणयुक्तहै तोभी सो अनुभव पंच कोशनका जो पुच्छ (सर्वका बाध होनेते अवशिष्ट) प्रतिष्ठा (स्थान) रूप निरतिशय आनंदस्वरूप आत्माके बलसे होवेहै; तिस आत्माका निवारण करनेवास्ते कोईभी समर्थ नहीं । याते सातिशय आनंदमय कोशकाभी परमार्थभूत निरतिशय परमानंदरूप, और जिसके प्राप्तिके लिये अन्नमयादि पंचकोशनका कथन आरंभ कियाहै, तथा सो ब्रह्म पंचकोशनसेभी आंतरहै, और जिस ब्रह्मसत्ताकरिके पंचकोश आत्माके सदृश प्रतीत होवेहै सो ब्रह्मपुच्छ (बाधका अवधि)रूप है, और अविद्याकल्पित सर्वद्वैतका अवधिरूप अद्वैतप्रतिष्ठारूप ऐसा जो अद्वैत ब्रह्म, प्रतिष्ठारूप पुच्छहै,

इसरीतिसे त्वंपदार्थका शोधन करिके तांकी तत्पदार्थके साथ एकता जाणनेवास्ते श्रीशंकरभगवान्‌का वाक्य प्रमाण. (हरिमीडेस्तो० श्लो० ३७)

सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत्सूक्ष्मं नित्यं

तत्त्वमसीत्यात्मसुताय ॥ साम्नामंते प्राह पिता यं विभुमाद्यं तं संसारध्वांतविनाशं हरिमीडे॥१॥

संक्षेपार्थः—सत्तामात्रं कहिये अस्तिरूप प्रत्यय करिके जाणने योग्य.तामें श्रुतिप्रमाणः-(छां०उ०६।२।१) "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" तथा 'केवलविज्ञानं' कहिये सर्वविषयनसें निर्मुक्त चिन्मात्रस्वरूप. काहेते, वाचारंभणश्रुतिकरिके विषयकूं मिथ्यात्व सिद्ध है.और 'अजं' कहिये (जन्मरहित) काहेते 'तत्सत्यं' या छांदोग्यश्रुतिकरिके सत्यरूप प्रतिपादित कियाहै. और जो सत्य होवे सोही नित्य (जन्मनाशरहित) होवेहै. तथा 'सूक्ष्मं' कहिये इंद्रियादिकनका अविषय, "स य एषोणुः"या श्रुतिप्रमाणसें, तथा'विभुं'कहिये(सर्वत्रव्यापक) "स आत्मा" या श्रुतिप्रमाणसें तथा 'आद्यं' कहिये जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानरूपकारण. "तदैक्षत प्रजायेय" (छां० उ० ६ । २ । ४) या श्रुतिप्रमाणसें ॥ १ ॥

इसरीतिसे शोधित तत्पदार्थके साथ, शोधित त्वंपदार्थकी एकताका अनुसंधान करना, कहिये ईश्वरगत

मायोपाधिक सर्वज्ञता और जीवगत अविद्योपाधिक अल्पज्ञता या दोनोंमें माया, अविद्या, सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्व या उपाधिरूप वाच्यभागका त्याग करिके केवल लक्ष्यार्थ जो "ज्ञ" कहिये चेतनांश, ताका ग्रहण करिके ऐक्यका अवधारण कहिये जैसे घटाकाश मठाकाश कहियेहै. उनते घट, मठ ये दोनू उपाधिका त्याग करनेसें एकही महाकाश अवशिष्ट रहेहै. तैसेही माया, अविद्याका त्याग करिके सत्य, ज्ञान, आनंदरूप जो ब्रह्म सोही में हूं, ऐसा जो दृढनिश्चय सोही अपरोक्ष ज्ञान. जिसते, अविद्या और ताका कार्य जो संसृति ताकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति यह प्रयोजन सिद्ध होवेहै.

ऊपर लिखित प्रक्रियाका निष्कर्षार्थ (पर्यवसितार्थ) रूप ऐसी चार भूमिका श्रीवसिष्ठमुनिने कहींहैं. तहां श्लोक (यो० वा० उ० प्र० ११८ । ८)

(शुभेच्छा १.)

"स्थितः किं मूढ एवास्मि प्रेक्ष्येहं शास्त्रसज्जनैः ॥ वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥"

अर्थः—निष्काम कर्मनके अनुष्ठानसें मनःशुद्धिके अनंतर संन्यास और साधनचतुष्टयसंपत्तिसहित और मुक्तिके विषैं जिसका पर्यवसान होवे ऐसी और श्रवणादिकनके विषैं प्रवृत्तिरूप फल जिसका ऐसी जो आत्माके साक्षात्कारकी उत्कट इच्छा सो शुभेच्छाख्य प्रथम भूमिका ॥ १ ॥

(यो० उ० प्र० ११८ । ९)(विचारणा २.)

"शास्त्रसज्जनसंपर्कं वैराग्याभ्यासपूर्वकम् ॥
सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा ॥२॥"

अर्थः—गुरुशुश्रूषा, शौच इत्यादि जो सदाचार धर्म तिनकरिके सहित जो श्रवण, मननविषैं प्रवृत्ति सो विचारणाख्य द्वितीय भूमिका ॥ २ ॥

(यो०उ० ११८ । १०)(तनुमानसा ३.)

"विचारणाशुभेच्छाभ्यामिंद्रियार्थेष्वसक्तता ॥ यात्र सा तनुताभावात्प्रोच्यते तनुमानसा ॥ ३ ॥"

अर्थः—साधनचतुष्टयसंपत्तिपूर्वक श्रवण, मनन-सहित निदिध्यासनसें जो मनकी शब्दादिविषयनके विषें असक्ति (अनुरागराहित्य) अर्थात् सविकल्पक-समाधिरूप सूक्ष्मता, सो तनुमानसाख्य तृतीय भूमिका ॥ ३ ॥

(यो०वा०उ०प्र०११८।११) (सत्त्वापत्ति ४.)

"भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेऽर्थे विरतेर्वशात् ॥
सत्यात्मनि स्थितिः शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदा-हृता ॥ ४ ॥"

अर्थः—बाह्यपदार्थनके विषें संस्कारके उच्छेदसें जो आत्यंतिक चित्तविरक्ति, कहिये निर्वासना, तिसके स्थिरतासें शुद्ध (अविद्या और ताके कार्य अवस्था-त्रयसें शोधित) और सर्वका अधिष्ठानरूप सन्मात्र आत्माके विषें क्षीरोदककी न्यांई (जैसें क्षीरमें नीर एकताकूं प्राप्त होवैहै तैसें) त्रिपुटीका लय करिके साक्षा-त्कारपर्यंत जो स्थिति सो निर्विकल्प समाधिरूप सत्त्वापत्ति कहिये प्रत्यगभिन्नब्रह्मैक्यसन्मात्ररूपकरिके

अवस्थान; सो सत्त्वापत्त्याख्य चतुर्थभूमिका. इस भूमिकाके विषैं स्थित जो ब्रह्मवेत्ता पुरुष सो जीवन्मुक्त कहियेहै ।

इति श्रीमद्रुदयशंकरात्मजगौरीशंकरविरचिते स्वरूपानुसंधाने प्रथमप्रक्रिया समाप्ता ॥ १ ॥

द्वितीयप्रक्रियाप्रारंभः ।

बृहदारण्यककी श्रुति आत्मनिष्टपुरुषके विषैं कायक्लेशका राहित्य दर्शावेहै. (बृह० उ० ४।४।१२)

"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः ।
किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनु संज्वरेत् १॥"

अर्थः—भाष्यकार विज्ञानमयकोशसें आत्माका वैलक्षण्यज्ञापनके अर्थ विशेषण देवेहै. 'सर्वप्राणिमनीषितज्ञं' कहिये सर्व प्राणियनके मनवांछित पदार्थनकूं जाननेवाला, और तटस्थताके निवृत्तिअर्थ विशेषण देवेहै," हृत्स्थं " (हृदयमें रहनेवाला) और बुद्धिके संबंधसें (तादात्म्यसंबंधसें) प्राप्त हुये संसारीभावकूं निषेध करेहै 'अशनायादिधर्मातीतं' कहिये क्षुधा,

तृषादिधर्मरहित स्वरूपभूत कूटस्थ आत्माकूं सहस्रप्राणि-योंके मध्यसें कोई कदाचित् जाणेहै (साक्षात्कार करैहै). इसते आत्मविद्याका दुर्लभत्व द्योतन किया. किस रीतिसें जाणे? अयं कहिये अपरोक्ष और परम तथा सर्व प्राणियनके बुद्धिप्रत्ययका साक्षीभूत, तथा "नेति नेति" इत्यादि श्रुतिसें सर्वनिषेधावधिभूत (परिशिष्ट) प्रतिपादन किया, और जिस्से अन्य कोई भी द्रष्टा, श्रोता, मंता, विज्ञाता है नहीं, और सम, सर्वभूतस्थ कहिये सर्वभूतनका अधिष्ठानरूप नित्य,शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव जो आनंदस्वरूप आत्मा सोही मैं हूं, इस प्रकारते जो पुरुष जाणे, सो आपने स्वरूपसें अति-रिक्त फलभूत किस वस्तुकी इच्छा करते हुये, और स्व-स्वरूपसें अतिरिक्त किस प्रयोजनके लिये शरीरके पीछे तप्यमान होवे? (शरीररूपउपाधिकृत दुःखनसें दुःखी होवे.) अर्थात् नहीं होवेहै. जो अनात्मदर्शी पुरुष सो आत्मासें अतिरिक्त वस्त्वंतरके विषैं यह वस्तु मेरेकूं प्राप्त हो,यह वस्तु पुत्रकी,यह वस्तु भार्याकी;इसप्रकारसे इच्छा

करिके वारंवार जन्ममरण बंधके विषैं आरूढ होइके शरीरके आधिव्याधिके पीछे तप्यमान होवेहै ॥ १ ॥

इत्यादिश्रुत्यनुसार विचारः—तहां अंतःकरणादि कहिये लिंगशरीरके विषैं जडत्वरूप हेतुसें बंधमोक्ष घटे नहीं. तैसेही अहंकारादिकनसें विलक्षण, स्वयंप्रकाश, कूटस्थ, साक्षीकेविषैंभी जाग्रतसें आरंभिके मोक्षपर्यंत संसार घटे नहीं; काहेते सो असंग है, और उदासीन है, ऐसी शंका प्राप्तहोनेते, अंतःकरणमें प्रतिबिंबित अनिर्वचनीय चिच्छायाका अंगीकार करनेसें समाधान होवेहै । तहां आचार्यउक्तिका प्रमाणः—

(वाक्यसुधा श्लो० ६)

"चिच्छायावेशतो बुद्धौ भानं धीस्तु द्विधास्थिता॥
एकाहंकृतिरन्या स्यादंतःकरणरूपिणी ॥ १ ॥"

अर्थः—इस स्थलके विषैं रजतसुवर्णादिकनकी न्याईं अनेकविध परिणाम होनेयोग्य अंतःकरणनामक जो द्रव्य सो बुद्धिशब्दकरिके जाणना; तिस अंतःकरणमें कर्तृत्ववृत्तिमान् जो अंश ताकूं अहंकार जाणना; और करणवृत्तिमान् जो अंश ताकूं बुद्धि समझना. (बुद्धि

कहिये जिस्सें स्वरूपका बोध होवे.) ता बुद्धिमें साक्षी चैतन्यके प्रतिबिंबका जो प्रवेश तिसतें भान होवे हैं। तात्पर्य यह हैः—स्वभावसें जडरूपभी बुद्धि प्रविष्टचैतन्यप्रतिबिंबके बलसे प्रकाशवालेके सदृश होवेहै. सो बुद्धि द्विविध हैः—एक अहंकार शब्दवाच्य कर्तारूप,और दुसरी मनःशब्दवाच्य अंतःकरणरूप है। कामादि सर्व परिणामविशेषनका मन,बुद्धि, अहंकार, चित्त इस अंतःकरणचतुष्टयके विषैं अंतर्भाव होनेतें, और बुद्धिका अहंकारमें तथा चित्तका मनमें अंतर्भाव करनेसें और वृत्तिमान् तथा वृत्ति इन दोनोंसें अतिरिक्त दुसरा कोईभी अंतःकरणका आकार निरूपण करनेकूं अशक्य है।यातें एकही बुद्धि स्वविकारके अनुसार प्रविष्टचैतन्य सहित अहंकारशब्दवाच्य कर्तृत्वआकार करिके तथा मनःशब्दकरिके वाच्य करणात्मकवृत्तिरूपआकारकरिके द्विविध होरहीहै ॥ १ ॥

(वाक्यसु०श्लो०७)

"छायाहंकारयोरैक्यं तप्तायःपिंडवन्मतम्।
तदहंकारतादात्म्याद्देहश्चेतनतामगात् ॥ २ ॥"

अर्थः—चिदाभास तथा कर्तारूप अहंकारके तादात्म्यसें

एकता तप्त अयः पिंडकीन्याई प्रतीत होवेहै.जैसे दृष्टांतमें यह अग्नि यह लोह इस रीतिसें पृथक्करण शक्य नहीं. तैसेही सिद्धांतमेंभी यह अहंकार और यह चिदाभास, इस रीतिसे अहंकारका और तिसमें प्रविष्ट चिदाभासका पृथक्करण अशक्य है. ता चिदाभाससहित अहंकारके तादात्म्याध्याससंबंधसे जडभी स्थूल शरीर चेतनताकूं (ज्ञानरूप आत्मस्वरूपताकूं) प्राप्त होवेहै. जैसे परीक्षार्थ जलमें स्थापित मरकतमणि ता सर्व जलकूं आपने छायायुक्त करेहै. तैसें कूटस्थ, असंग, बोधस्वरूप, साक्षी चैतन्यभी अहंकारसे स्थूल देहपर्यंत निःशेष (सर्व) युष्मदर्थ (अनात्माजडवर्ग) कूं स्वच्छायायुक्तकी न्याई करेहै । याते चिदाभास बंध मोक्षका स्थान सिद्ध होवेहै ॥ २ ॥

ता चिदाभास जीवकी सप्त अवस्था ।

(१) अज्ञान, (२) आवरण,(३) विक्षेप,(४) परोक्षज्ञान, (५) अपरोक्षज्ञान, (६) शोकापगम, और (७) निरंकुशा तृप्ति.तामें तीन अवस्था बंधकारी,

और एक अंतराल अवस्था, और पुनः तीन मोक्ष की अवस्था है ।

ऊपर लिखित बंधक अवस्थामेंसें प्रथम अवस्था मूलाज्ञान कहिये स्वस्वरूपका अनादिकालसें अग्रहण-रूप प्रमाद. दूसरी आवरणशक्ति, ताके कार्य दो हैंः—असत्त्वापादन तथा अभानापादन, कहिये आपना स्वरूप जो कूटस्थ सो है नहीं, तथा भासे नहीं. तिसरी विक्षेपशक्ति, ताके कार्य दो हैंः—शरीर-त्रयकेविषैं अहंता और ममताका तथा स्त्री, पुत्र, गृह, क्षेत्र, द्रव्यादिकनकेविषैं केवल ममत्वका दृढ अभिमान, तथा देहादिक जो असत्, जड, दुःखरूप है. ताके विषैं वैपरीत्यसें असत्‌में सत्‌पनाकी तथा जडमें चेतन-पनाकी और दुःखमें सुखरूपताकी बुद्धिकूं करावे, और आपातरमणीय (देखनेमात्रमें सुंदर) ऐसे बाह्य सर्व जो विषय परिणाममें विषतुल्य हैं,तिनके विषैं रम-णीय (शोभन) बुद्धिसें आसक्तिपूर्वक बहिःप्रवृत्तिकूं करावे, परंतु आसक्तिसे रहित होईके अंतर्मुख होनें देवे नहीं. यह तीनों अवस्था बंधकारी हैं. चौथी अंतराल अवस्था. तहां श्लोक (विवेकचू०)

"जातीशतेषु लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम् ॥ तद्यो न पालयति लालयतींद्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ॥ १ ॥"

अर्थः—सर्वजातीमें मनुष्यजाति प्राप्त होना दुर्लभहै। तामें भी ब्राह्मणजाति प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभहै. सो ब्राह्मणत्व बडे सुकृत (पुण्य) विशेषसें प्राप्त हुयेभी जो पुरुष आपने इंद्रियकूं अंतर्मुखताके संपादनसें पालन करे नहीं कहिये आत्माके तरफ प्रवृत्त करे नहीं। किन्तु तिन इंद्रियनकूं बाह्य विषयनके विषैंही आसक्तकरि लालन करेहै (अर्थात् विषयसंलग्न रहेहै) ता पुरुषका हाथमें प्राप्त हुवा अमृत प्रमादसे नष्ट होवेहै. अर्थात् ताका जीवित व्यर्थ है. १ यातें अपूर्वपुण्य विशेषसें मनुष्यावतार, तामें ब्राह्मणशरीरकूं प्राप्तहुयें प्रथम शिव, विष्णु, देवी, गणपति, सूर्य इन पंचायतनदेवताका पूजन तथा शिवपंचाक्षरी मन्त्रादिकनका जप आदि करना; तहां श्रुतिः—(कैवल्य उ० १ । ७) अथर्ववेद ।

"उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकंठं प्रशांतम् ॥ ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥ १ ॥"

अर्थः—अनुपमयुवतिरूपमे वामांकके विषैं स्थित उमारूप ब्रह्मविद्या है भक्तनकूं कामादिक चौरनसें रक्षणकरनेमें सहायभूत जाकूं, तथा "परमेश्वरं" कहिये उत्कृष्ट और ब्रह्मादिकनकाभी नियंता तथा "प्रभुं" (समर्थ) तथा "त्रिलोचनं" कहिये सोम, सूर्य, अग्निरूप तीन हैं नेत्र जाके, तथा "नीलकंठं" विषपानसें श्यामहुवाहै कंठ जाका, तथा प्रकर्ष-करिके शांत ऐसे चिदानंदस्वरूप शिवजीका ध्यान करना ।

यारीतिसे ईश्वरकी स्तुति, वंदन, तीर्थ, दानादिकन-सें प्राप्त पुण्यविशेषकरिके शुद्धांतःकरण और साधन-चतुष्टयसंपन्न अधिकारीनें, वेदांतशास्त्रके ऊपर तथा वेदांतवक्ता ब्रह्मनिष्ठ गुरुके ऊपर श्रद्धा होनेसे अनंतर तिनके संनिध रहिके, वेदांतश्रवण करनेसे प्रथम सगुण ब्रह्म (मायाविशिष्ट विराट् हिरण्यगर्भादि) और

निर्गुणब्रह्म (मायासें रहित, अक्षर, अद्विय) का परोक्षज्ञान हुये अनंतर, दृश्य, द्रष्टा, तथा साक्ष्य, साक्षी इनके विवेकसें त्वंपदार्थकां शोधन तथा अध्यस्त, अधिष्ठान और कार्यकारणके विवेकसे तत्पदार्थका शोधन करना,—तामें—

त्वंपदार्थशोधनकाप्रकार ।

दृश्यद्रष्टाकाविवेक (वाक्य सु० श्लो० २)

"नीलपीतस्थूलसूक्ष्म, ह्रस्वदीर्घादिभेदतः ।
नानाविधानि रूपाणि,पश्येल्लोचनमेकधा॥ १॥"

अर्थः—दृश्यतामें नानात्वहेतुहै, तथा द्रष्टृत्वमें एकत्वहेतुहै यातें नील, पीत, स्थूल, सूक्ष्म, न्हस्व, दीर्घ इत्यादि नानात्वसे रूप दृश्यहोवेहै और चक्षुरादि इंद्रिय आपने स्वरूपके भेदके अग्रहणपूर्वक एकरूपसेंही सर्वरूपनका ग्रहण करेहै, याते चक्षु द्रष्टा होवेहै ॥ १॥

अब चक्षुकूं दृश्यत्व, और तासें आंतर द्रष्टा मनहै ताका विचारः-

"आंध्यमांद्यपटुत्वेषु, नेत्रधर्मेषु चैकधा । संकल्पयेन्मनःश्रोत्रत्वगादौ योज्यतामिदम्॥ १॥"

अर्थः—सामान्यआकारसेंभी आपने विषय नील पीतादिरूपनके ग्रहणका जो असामर्थ्य सो अंधत्व कहियेहै, तथा सामान्य आकारसे विषयकें ग्रहणका जो सामर्थ्य, सो मांद्य कहियेहै, तथा आपने विषयके जो सूक्ष्मविशेष आकार ग्रहण करनेंका सामर्थ्य सो पटुत्व कहियेहै. इसरीतिसे आंध्य मांद्य पटुत्व इत्यादि नेत्रके नानाधर्मनकूं एकरूपसेही मनसंकल्प करेहै, जैसे मेरा चक्षु अंधहै,मेरा चक्षु मंदहै,मेरा चक्षु पटुहै,इसरीतिसे मन एकरूपसेही संकल्प करेहै याते सो द्रष्टाहै और आंध्य मांद्यादि नानाहैं, याते दृश्यहै. इसप्रकारसें श्रोत्र त्वग् जिव्हा,घ्राण इन चारों इंद्रियनके विषेभी आप आपने विषयनकी अपेक्षासें द्रष्टत्व, तथा आपने भासक मनकी अपेक्षासे दृश्यत्व, और योग्यतानुरूप बधिरत्वादि भी योजने ॥ १ ॥

अब मनकूं दृश्यत्व और ताके आंतरीय साक्षीकूं द्रष्टत्व, ताका विवेकः-

(वाक्य सु० श्लो० ४)

"कामः संकल्पसंदेहादौ, श्रद्धाश्रद्धे धृतीतरे । ह्री र्धीर्भीरित्येवमादीन्भासयत्येकधा चितिः॥१॥",

अर्थः-रज्जुके अज्ञानसेंरज्जुकेविषैं आरोपित सर्पादिकनकूं जैसे रज्जु एकरूप करिके भासमान करेहै. तैसे ही स्वरूपके अज्ञानसें स्वरूपके विषैं आरोपित ऐसें काम, संकल्प, विचिकित्सा, श्रद्धा, धृति अधृति, धी, भी ये सर्व मनहीहै ॥ १ ॥

इस प्रकारके बृहदारण्यकश्रुतिकेविषैं कथित कामादिकनकूं तथा ऐत्तरीय उपनिषदमें उक्त संज्ञाआदिक सर्व अंतःकरणकी वृत्तिविशेषकूं,[१]स्वगत, सजातीय,विजातीय भेदसे रहित, तथा,सत, चित, आनंदहै लक्षण जाका ऐसे ब्रह्मसे अभिन्न, कूटस्थ, प्रत्यक्स्वरूप, सर्वकी साक्षीरूप जो आनंदात्माचिति, सो एकरूपसेंहीं कहिये निर्विकाररूपसेंही स्वभास्य, अवस्तुभूत जो मन और ताके विकार कामादिक तिनकूं प्रकाशित करेहै, सो सदाकाल द्रष्टारूपहीहै.रूपादिकनकी न्याईं दृश्य नहीं. काहेते षड्भाव विकारसें रहितहै, और स्वप्रकाशहै तहां श्रुतिः-

---

१-अवयवोंका भेद स्वगतभेदकहिये है जैसें वृक्षमें पत्रपुष्पादिकनकों भेद सजातीयभेद. जैसें एकवृक्षमें वृक्षांतरकाभेद, विजातीयभेद जैसें वृक्षमें शिलादिकनका भेद ।

(बृह. उ. ४ । ३ । २३)

"नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्"

साक्षी और साक्ष्यका विवेकः-

(पंचदशी प्र. १ श्लो. ३)

"शब्दस्पर्शादयो वेद्या वैचित्र्याज्जागरे पृथक् ।
ततो विभक्ता तत्संविदैकरूप्यान्न भिद्यते॥१॥"

अर्थः-जाग्रदवस्थाकेविषैं दृश्य ऐसें जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध विषय सो परस्परसें विचित्रहै, यातें भिन्न भिन्नहै. और तिन शब्दादिकनसें पृथग्भूत ऐसा जो ज्ञान सो एकरूपहै. जैसा के शब्दज्ञान, स्पर्शज्ञान, रूपज्ञान, रसज्ञान, गंधज्ञान इसरीतिसें सर्वज्ञेयविषयनमें ज्ञानकी एकरूपताहै, यातें सो ज्ञान भिन्न नहीं ॥१॥ इसरीतिसें स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तिअवस्थामेंभी जो विषयहै, सो ज्ञेयरूपहै. और ताकाज्ञान साक्षी एकरूपसेंही भासेहै,कहिये जाग्रदादि, तथा बाल्यादि अवस्था परस्पर व्यभिचारकूं प्राप्त होवेहै, परंतु तिनका ज्ञानरूप साक्षी तिन अवस्थामें अनुस्यूत अव्यभिचारी होयके तिनका अनुभव करेहै.

तत्पदार्थमें अध्यस्त और ताकें अधिष्ठानका विवेकः-

जैसें रज्ज्वादिरूप अधिष्ठानकेविषैं सर्पआदिक अध्यस्तहैं. तैसेही पंचभूत, तथा भौतिक नामरूपात्मक सर्व प्रपंच; अस्ति, भाति, प्रियरूप अधिष्ठानभूत ईश्वरतत्त्व केविषैं अध्यस्त (कल्पित) हैं.

तहां श्री आचार्यका वचनः-

(हरिमीडेःश्लो. ३८)

"मूर्तामूर्ते पूर्वमपोह्याथ समाधौ, दृश्यं सर्वं नेति च नेतीति विहाय। चैतन्यांशे स्वात्मनि संतं च विदुर्यं, तं संसारध्वांतविनाशं हरिमीडे ॥ १ ॥"

अर्थ-समाधौ कहिये जाकेविषैं चित्तका समाधान होवे ऐसा विष्णुरूप तथा चैतन्यांशे, कहिये जडांशका परित्याग करिके अवशिष्ट चिन्मात्रस्वरूप ऐसे प्रत्यगात्मा (प्रत्यगभिन्न विष्णुस्वरूप अधिष्ठान)के विषैं आरोपित ऐसें पृथ्वी, आप, तेजरूपमूर्तप्रपचकूं तथा वायु, आकाशरूप अमूर्त प्रपंच(दृश्यत्वकरिके भास मान अध्यस्तवर्गकूं 'नेतिनेति' याश्रुतिके अवलंबनसें निषेधकरिके इस निषेधके अवधिरूपसे विद्यमान अधिष्ठान सन्मात्र,जाकूं विद्वान् जाणेहै ता विष्णुकी में स्तुति करुहूं.

(अपरोक्षानु. श्लो. ९६)

"रज्जुरूपे परिज्ञाते, सर्पखंडं न तिष्ठति ।
अधिष्टाने तथा ज्ञाते, प्रपंचःशून्यतां गतः॥९॥"

कार्य कारण का विवेक ।

जैसें कार्यरूप घट; शरावादि मृत्तिकारूप कारणसें अभिन्नहै.तथा कटक;कुंडलादि कार्य तिनके कारणभूत सुवर्णसें अभिन्नहै.ऐसा अनुभव सर्वकूंहै.और वाचारंभण श्रुतिभी ऐसाही कहेहै. तैसेही नामरूपात्मक कार्यरूप सर्वप्रपंच सत्, चित, आनंद कारणरूप ईश्वरसें अभिन्न है;तहां श्रुतिः—"एकेन विज्ञातेन सर्वं विज्ञातं भवति"। "ब्रह्मैवेदं सर्वं" इत्यादि श्रुतियांके प्रमाणसें—ऊपरके अनुसार विवेचनके साह्यभूत श्रद्धादि अंतरंग साधन संबंधी श्लोकः—(हरिमीडे श्लो. २४)

"श्रद्धाभक्तिध्यानशमाद्यैर्यतमानैर्ज्ञातुं शक्यो देव इहैवाशु य ईशः । दुर्विज्ञेयो जन्मशतै श्चापि विना तैस्तं संसार० ॥ १ ॥"

अर्थः-श्रद्धा (श्रुति तथा गुरुवाक्यमें विश्वास,)भक्ति (गुरुके विषैं और विष्णवादिकनके विषैं प्रेम) ध्यान

(गुरुके मुखसें उपदिष्ट ब्रह्मके विषैं विजातीय प्रत्यय (ज्ञान) के तिरस्कारपूर्वक सजातीय प्रत्ययके प्रवाहका संपादन) शम (विषयनसे अंतःकरणकी व्यावृत्ति) आदि शब्दकरिके दम,उपरति,तितिक्षा,समाधान ग्रहण करने. इन साधनसहित प्रयत्नकरतेहुये मुमुक्षुजनकूं जो देवः (स्वप्रकाशपरमेश्वर) " इहैव " इसी युगके विषैं और इसी जन्मके विषैं तथा इसीदेहके विषैं शीघ्र प्रत्यग्रूप करिके साक्षात्कार करनेकूं शक्यहै । परंतु ऊपरकथित साधनविना तो जन्मशतैःकहिये अनेक जन्मोंकरिके तथा अनेक शास्त्रनकरिके और अनेक विध पांडित्य करिकेभी जो प्रत्यगभिन्न विष्णु दुर्विज्ञेय है. (साक्षात्कार होवे नहीं) तहां श्रुतिः—(कठ उ- १ । २ । २३ ।)

"नाविरतो दुश्चरितान्नाशांतो नासमाहितः ।
नाशांतमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥१॥"

अर्थः—निषिद्धकहिये अशास्त्रीयकर्मनसें उपराम नहीं हुवा, तथा अशांत कहिये विषयनसें जाका चित्त निवृत्त हुवा नहीं ऐसा, तथा असमाहित, कहिये समाधिके अनुष्ठानसें रहित.

तथा 'अशांतमानसः' कहिये कोई निमित्तसें कामक्रोधकूं करनेवाला और 'अपि' शब्दसें स्थित यज्ञादिकनके विषें कथित लक्षणोंसे रहित ऐसा जो पुरुष 'प्रज्ञानेन' कहिये संशय, असंभावना, विपरीतभावनारूप त्रिविध प्रतिबंधरहित ज्ञानकरिके 'एनं' कहिये पूर्वोक्त साधनोंसे सहित पुरुषोंने अपरोक्षतासें अनुभव किये निरतिशयानंदरूप आत्माकूं प्राप्त होवे नहीं. साधनरहित पुरुषनकूं प्रत्यगभिन्न ब्रह्मके साक्षात्कारकी संभावनामात्रभी नहीं, यह श्रुतिका तात्पर्यार्थहै, और-

(कठ. उ. २ । १ । १)

"परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नांतरात्मन् ॥ कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥"

अर्थः-" स्वयंभूः " कहिये स्वतः ही सर्वदा स्वतंत्र परमेश्वर ' परांचि ' कहिये बाह्यप्रवृत्तहोनेवाले ' पराक् ' बाहर प्रवृत्त होनेवाला ऐसा 'खानि ' कहिये श्रोत्रादि इंद्रियकूं ' व्यतृणत् ' कहिये हिंसा करताभया. अभिप्राय यह है. जब इंद्रिय अंतर्मुख होवेहैं तबहीं आत्मनिष्ठता करिके अमृतत्वकूं

प्राप्त होवेहै, अन्यथा नहीं. याते कर्मके अनुसार तिनकूं वहिर्मुख कियेहै. यही तिनकी हिंसा, ताकारणसें उपलब्धा (प्रमाता) पराक् (जड) रूप, अनात्मभूत ऐसे बाह्यशब्दादि विषयनकूंही "पश्यति" कहिये देखताहुवा, संलग्न रहेहै. सर्वलोकनका ऐसा स्वभाव होतेभी महानदीप्रवाहके सन्मुख चलनेकी न्याई कोई एकही धीर (धीमान् विवेकी) पुरुष प्रत्यगात्माकूं [यास्थलविषैं आत्मशब्दरूढी वृत्तिसे प्रत्यक् स्वरूपके विषै ही लोकमें प्रसिद्धहै. और व्याकरणके रीतिसें व्युत्पत्ति पक्षमें (यौगिकवृत्तिविषैं) भी प्रत्यक्स्वरूप विषैंहीं आत्म शब्दकी प्रवृत्तिहै तामें स्मृति प्रमाणः–(मनुस्मृ. श्लो०)

"यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह ॥
यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्तितः ॥ १ ॥"

अर्थः–'अतति व्याप्नोतीत्यात्मा' (जो सर्वत्र व्यापक सो आत्मा) और 'अतति आदत्ते इति आत्मा' (जो सर्वजगतकूं आपने विषैं उपसंहार करे,अर्थात् उपादान रूप सो आत्मा) 'अतति विषयानत्तीत्यात्मा' (जो

विषयनकूं भोगेहै कहिये. आपनेहीं चैतन्याभासरूप
करिकेही उपलब्धा सोही आत्मा) और 'अतति सततं
भवतीत्यात्मा' (जिसका तीनों अवस्थामें साक्षिरूपसें
संतत (अनुस्यूत) भावहै.) १

जिसहेतुसें इस प्रत्यक्स्वरूपकीही कल्पित अध्यस्तके वि-
षैंहीं निरंतर सत्ताहै यातें सो प्रत्यक्स्वरूपही आत्मा १

ताप्रत्यगात्माकूं] देखैहै;किसरीतिसें? 'आवृत्तचक्षुः'
कहिये शब्दादि विषयनमें निवृत्तहुयेहैं चक्षुरा-
दि इंद्रिय जिसके यातें ऐसा संस्कारवालाही पुरुष
प्रत्यगात्माका साक्षात्कार करनेकूं समर्थ है. काहे-
ते बाह्य विषयनका पर्यालोचन और प्रत्यगात्मा
का ईक्षण यह दोनूं एक पुरुषके विषैं एककालमें
संभवे नहीं।ऐसे किसफलकी इच्छासें महत्प्रयत्नसे इंद्रि-
यनकी बहिःप्रवृत्तिका निरोध करिके धीरपुरुष प्रत्य-
गात्माका साक्षात्कारकरे ? ऐसी शंका होनेते प्रयोजन
कहे है-' अमृतत्त्वमिच्छन् ' कहिये अमरणधर्मत्वकूं
इच्छाकरताहुवा अर्थात् मुक्तस्वभावताकी जो प्राप्ति
सोही फल है ॥ १ ॥

ऊपर कथित साधनोंसें प्राप्तहोनेयोग्य स्वस्वरूपका विचारः—तहां गुरुशिष्यके प्रश्नोत्तरका श्लोकः—(पंचीकरणमें—प्रस्ताविक) शिष्यः—"कोयं देवः" (स्वप्रकाश चैतन्यस्वरूप देव कौनहै ?)

गुरुः-"मनः साक्षी" (अंतः करणका साक्षात् द्रष्टा.)

शिष्यः—"मनो मे दृश्यते मया" (मेरे अंतःकरण का द्रष्टा तो मैंहीहूं)गुरुः--"तर्हि देवस्त्वमेवासि" (तब स्वप्रकाश आत्मा देव तूहीहै.)

शिष्यः—तामें प्रमाण क्या है- ?

गुरुः-"एको देव इतिश्रुतेः" तहां श्वेताश्वतरकी श्रुतिः-अ० ६.मं० ११)

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥ १ ॥

अर्थः—" एकः " इस पदकरिके पुराणोंमें प्रसिद्ध ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि भेदका निवारण जाणनां, तथा "देवः" कहिये स्वयंप्रकाश चैतन्यरूप, सो देव कहां रहेहै ? ऐसी आशंका होनेतें कहे है " सर्वभूतेषु-

गूढः " कहिये ब्रह्मासे आरंभीके पिपीलिकापर्यंत सर्वप्राणियनके विषें स्थित. तब ताका अनुभव काहेते होता नहीं ? ऐसी आशंकाते कहेहै-" गूढः " कहिये गुप्त, अर्थात् अज्ञानकरिके आवृतहै-यातें सामान्य प्रज्ञावान् पुरुषनके अनुभवमें आवता नहीं.तादेवके विषें देश काल और वस्तुरूप तीनप्रकारके परिच्छेदसें राहित्य कहेहै–"सर्वव्यापी" कहिये देश, काल, जीव, ईश्वर और जगत् इन सर्वकूं व्यापीके सदा रहने वाला परस्पर सजातीय भेदका निवारण करेहै." सर्वभूतांतरात्मा " कहिये स्वयं चैतन्यमात्रस्वरूप अद्वितीय हुवा, ब्रह्मादि स्थावरांत सर्वभूतन के विषें जीवरूपसें अंतःप्रवेश करिके स्थित सोहीआत्मदेव. शुद्धसत्त्व प्रधानमायाके विषें प्रतिबिंबित ईश्वररूप हुवा सर्वनकूं कर्मनके फलका प्रदाता, ऐसा"कर्माध्यक्षः" कहिये आप अधिष्ठाता रूप से पुण्य, पापरूपकर्मोंके फल प्रदाता विजातीय भेदका निवारण करेहै–" सर्वभूताधिवासः " कहिये सर्वभूत, भौतिकनका अधिष्ठानरूप, अर्थात् आरोपितको अधि-

ष्ठानसें अभिन्नताहै, यातें विजातीय जडभेदभी संभवे नहीं. ताआत्मदेवको जीवईश्वररूपसें स्थित होनेते, प्राप्तहुवाँ ऐसा जो पुण्यपाप कर्मनका कर्तृत्व, तथा जगत्स्रष्टृत्वादि,ताका निवारण करेहै--"साक्षी" कहिये आपने सन्निधानसें प्रवृत्तहुये ऐसें कार्यकारणादि जगत्कों, तथा जगदाकारसें परिणत अविद्याका साक्षात द्रष्टा-साक्षित्वमें हेतु कहेहै "चेता:" कहिये चैतन्यमात्रस्वरूप-आत्मदेवकूं साक्षित्व होनेते साक्ष्यविषयनके विषैं ईक्षणकर्तृत्वरूप विकारित्व प्राप्त होवेगा ऐसी शंका होनेतें आत्मवस्तुके विषैं साक्षित्वादि विशेषनका राहित्य कहेहै. "केवलः"कहिये ईक्षणकर्तृत्वादि सर्वविशेषेंसे रहितहै. ज्ञान, आनंद इत्यादिकनकूं कितनेक गुण रूप मानेहै. और ब्रह्मकूं गुणी मानेहै ताका निवारण करेहै. "निर्गुणः" कहिये गुणरहितहै. 'विज्ञानमानंदंब्रह्म' या श्रुतिप्रमाणसें, ज्ञान आनंदादि स्वरूपभूत है गुणरूप नहीं.

इसप्रकारसें परोक्षज्ञानरूप चतुर्थ अवस्थासिद्धिके

अनंतर महावाक्यजन्य जीवब्रह्मकी एकतारूप अपरोक्ष ज्ञान यह पंचमी अवस्थाहै—

महावाक्य-(ऋ. ऐ.उ. खं. ५ मं. ३
प्रज्ञानं ब्रह्म—(पंचदशी. प्र. ५)

"येनेक्षते शृणोतीदं, जिघ्रति व्याकरोति च ॥
स्वाद्वस्वादु विजानाति, तत्प्रज्ञानमुदीरितम् १
चतुर्मुखेंद्रदेवेषु- मनुष्याश्वगवादिषु ॥
चैतन्यमेकं ब्रह्मातः, प्रज्ञानं ब्रह्मय्यपि॥२॥"

अर्थः-चक्षुरिन्द्रियके द्वारा बाह्य निकली अंतःकरणवृत्तिमें उपहित (उपाधिमें स्थित) जा चैतन्यकरिके पुरुष रूपादिकनकूं देखेहै, तथा श्रोत्रद्वारा बहिर्गत अंतःकरणवृत्तिमें उपहित जा चैतन्य करिके शब्दसमूहकूं ग्रहण करेहै, तथा घ्राणद्वारा बहिर्गत अंतःकरणकी वृत्तिमें उपहित जा चैतन्यकरिके गंधसमूहका अवघ्राण करेहै.तथा वागिन्द्रियसे अवच्छिन्न उपहित जा चैतन्यकरिके शब्द समूहका उच्चारण करेहै, तथा रसनाद्वारा बहिर्निर्गत अंतःकरणकी वृत्तिमें उपहित जा चैतन्य करिके स्वादु अस्वादु रसकुं जाणे है, ता चैतन्यकूं

अज्ञान शब्दकरिके श्रुतिने कथन कियाहै॥ १ ॥७
ब्रह्मादिकनके देवनकेविषैं तथा मध्यम मनु ..
केविषैं तथा अधम गवाश्वादिकनकेविषैं तथा आ..
भूतनकेविषैं जो एक चैतन्यहै सो ब्रह्मजाणना.औ..
विषैंभी सो अज्ञानसें अभिन्न ब्रह्महीहै.

(बृह० उ० अ० १ ब्रा० ४।१०)

अहं ब्रह्मास्मि (यजुर्वेदका.)

(पंच० प्र० ५)

"परिपूर्णः परात्मास्मिन्, देहे विद्याधिकारिणि॥
बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा, स्फुरन्नहमितीर्यते॥३॥
स्वतः पूर्णः परात्मात्र, ब्रह्मशब्देन वर्णितः ॥
अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेनब्रह्मभवाम्यहम्॥४॥"

अर्थः—देश, काल, वस्तुसें अपरिच्छिन्न ऐसा परमात्मा इस मायासें कल्पित अधिकारी मनुष्यादि शरीर' नकेविषैं सूक्ष्मशरीरका साक्षी (अवभासक) रूपसे रहिके प्रकाशमान हुवा अहंपद लक्ष्य कहिये है. ३ । स्वभाव करिकेही देश, कालादिकसें अपरिच्छन्न ऐसे पूर्वोक्त परमात्माकं इस महावाक्यमें ब्रह्मशब्द करिके

"स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मतम् ॥
अहंकारादिदेहांतात् प्रत्यगात्मेति गीयते॥७॥
दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते ॥
ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥८॥"

अर्थः-'अयं' इसपदकरिके स्वप्रकाश और अपरोक्षत्व जाणनां. और अहंकारसें आरंभीके स्थूलदेहपर्यंत संघातसें प्रत्यक् कहिये अधिष्ठानत्व, साक्षित्वरूपसें स्थित जो वस्तु सो 'आत्मा' रूप जाणनां.॥७॥ आकाशादि सर्वजगत्कां अधिष्ठानरूप और तिन सर्वके बाधका अवधिरूप पारमार्थिक जो सच्चिदानंदरूपहै, सो 'ब्रह्म' शब्दकरिके जाणनां; सो ब्रह्म, स्वप्रकाश आत्मासें अभिन्नरूपहीहै. ॥८॥

इस प्रकारसें " यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म " सो मैं हूं कहिये जीवकूटस्थ में परिच्छिन्नत्व और ईश्वरकूटस्थमें परोक्षत्व इन दोनो वाच्यभागका त्यागकरिके लक्ष्यभाग जो अखंडार्थताका 'सोयं देवदत्त' के दृष्टान्तकी रीतिसें ग्रहण करनां. जासें ईश्वरकूटस्थ,जीवकूटस्थमें एकताकूं

प्राप्तहुवा कहिये जाकां परोक्षत्व नष्ट होयके अपरोक्ष-हुवा. और जीवकूटस्थ, ईश्वरकूटस्थमें ऐकताकूं प्राप्त होनेते ताका परिच्छिन्नत्व (अल्पत्व) नष्ट होयके अपरिच्छिन्नत्व (व्यापकत्व) प्राप्त होवेहै.

छट्ठी अवस्था शोकापगमः—
तहां ईशावास्यश्रुतिः— (मं०७)

"यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ॥
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥१॥"

अर्थः-- जिस ज्ञानीपुरुषकूं जिसकालके विषैं सर्व-जगत् वास्तव आत्मस्वरूपके दर्शनसें आत्मरूपही संपन्न हुवा, ता एकत्वदर्शी ज्ञानीपुरुषकूं तिसकालविषैं शोकक्या? और मोहक्या? कहिये कामनाकां बीजभूत शोक, मोह,अज्ञानसें होवेहै; परंतु विशुद्ध और आकाशोपम ऐसे आत्मैकत्वकूं देखनेवाले ज्ञानीकूं शोक, और मोह संभवे नहीं। काहेते कारणभूत जो अविद्या, ताका बाध होगयाहै. ॥१॥

तहां एकत्वमें छांदोग्य श्रुतिः- (प्र. ७।२४)

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्वि-
जानाति स भूमा."

अर्थः- जा स्वरूपतत्त्वके विषैं अन्य द्रष्टा अन्य करणकरिकें अन्य द्रष्टव्यकूं देखता नहीं, तथा अन्यश्रोता अन्यकरण करिके अन्य श्रोतव्यकूं श्रवण करता नहीं, तथा अन्य विज्ञाता अन्यकरणकरिकें अन्यविज्ञेयकूं जाणता नहीं, सो भूमा. अर्थात् लोकप्रसिद्ध दर्शन श्रवणादिकनका जो अविषय, व्यापक आनंदस्वरूप सो भूमा.

"आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन"
(तै०उ०२।९)

या श्रुतिके व्याख्यानका अवधारण करनां; इस अर्थके विषें वासिष्ठमें रामचद्रजीका वचन प्रमाण हैः-

"अखिलमिदमहं ममैव सर्वं, त्वहमपि नाहमथेतरच्च नाहम् । इति विदितवतो जगत्कृतं मे,
स्थिरमथवास्तु गतज्वरो भवामि ॥ १ ॥"

तात्पर्यार्थः—तादात्म्यअध्यारोपके दृष्टिसे तो सर्वभी अहंकारादि जगत मैंहीहूं, और संसर्ग संबंध) अध्या-

रोपके दृष्टिसे तो सर्वभी मेराहीहै. तथा अपवाददृष्टिसें तो अहंकार अहंताके आरोपमें निमित्तभूतऐसा अहंकारभी में नहीं, तब इतरदेहादिरूपमें नहींहूं इसमें क्या कहणा? इसरीतिसे अध्यारोपअपवादकारिकें स्वरूप तत्त्वका साक्षात्कारकरते हुवे मेरेकूं (मेरीदृष्टिसे) यह जगत् कृत्रिम (मायामय) ऐसा हो अथवा अकृत्रिम (आत्मरूपही) हो. तो दोनूं प्रकारसेभी में अध्या मिकादि ज्वररहितहूं ॥ १ ॥

सातमी अवस्था निरंकुशा तृप्तिः-(स्वात्मनि. श्लो. १०५)

"अजोहमक्षरोहं प्राज्ञोहं प्रत्यगात्मबोधोहम् ॥
परमानंदमयोहं परमशिवोहं भवामि परिपूर्णः १"

अर्थः-जन्मरहित यातेही अक्षर (विक्रियारहित ईश्वर) और व्यक्ति व्यक्ति के विषें प्रकाशकज्ञानरूप और परमानंदमय परम शिवरूप और परिपूर्ण ऐसा मैंहूं. ॥ १ ॥

(स्वात्म. आ. श्लो. १२६)

"ज्ञानमहं ज्ञेयमहं ज्ञाताहं ज्ञानसाधनगणोहम् ॥
ज्ञातृज्ञानज्ञेयैर्विना कृतमस्तित्वमात्रमेवाहम् १"

अर्थः-पदार्थकूं ग्रहणकरनेवाला वृत्तिरूपज्ञान मैंहीहूं, तथा 'ज्ञेय' कहिये. ज्ञानका विषयभी मैंहूं, तथा ज्ञाता कहिये वृत्तिद्वारा विषयज्ञानवालाभी मैंहूं, तथा ज्ञानका साधनभूत इंद्रियसमूहभी मैंहूं, तथा ज्ञाता, ज्ञान, और ज्ञेय इस त्रिपुटिसे रहित सन्मात्रभी मैंहीहूं.॥ १ ॥

(हस्तामलकवार्तिक. श्लो. ८ । ९ ।)

"अहंकारातीतो विषयविरहः स्वात्मरसिको
निराधारो ज्योतिर्भ्रमरचितसंबंधरहितः ॥
श्रुतीनां सिद्धांतोपरिमितवपुःस्वानुभवतः
स नित्यो बोधात्मा निरवधिरहं सौख्यजलधिः १
स्वतः शुद्धो बुद्धः समरसपरानंदविततो
धियां साक्षी वृत्तेः प्रलयमुदयं वेत्ति सततम् ॥
क्रियां यः कर्तारं विषयमथ आभासयति च
स्वयं ज्योतिःसोहं हृदयकमलाकोस्मि सुखदः२"

अर्थः-मैं अहंकारसें अतीतहूं; तथा बाह्याभ्यंतर सर्वविषयनके विरह (अभाव) सें स्वात्मरूपके विषैंही रसिकहूं; तथा निराधारहूं, और स्वप्रकाशहूं, तथा भ्रांति

स्वधर्मआचरणीय है कि तिन्होंके शुभजीवनचारित प्रसिद्ध करनारूप स्वकर्तव्यतामें प्रमाद नहीं राखिके सत्पुत्रता और सत्पात्रता दर्शावनी.

सज्जनोंके सज्जीवनकी संग्राहक सामग्री देशोदयमें उपयोगिनी अधिकतासे होवे है, देशके उदयते समीचीन लेखकनकी संख्या वृद्धिंगती है वे गुणानुरागी होते हैं, स्वदेशीजनोंके आदर्शरूप गुणाधिकताकूं परीक्षाकरके तिनोंके कंठमें स्वरचिता गुणगंधिनी पुष्पमाळा समर्पिके ता द्वारसे सर्वलोकनकूं सुगंध देनेके लिये वे प्रयतमान होवे है.

और जनमण्डलके मगजकूं उत्तम सुगंधीते तुष्टिपुष्टिके समर्पणमें स्वशक्तिका साफल्य मानतेहैं, श्रीहर्ष कहतेहैं किः—

"वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं, गुणाधिके वस्तुनि मौनिता चेत्"

(नैषध, ६—३२) जा वस्तुमें—व्यक्तिमें गुणोंकी अधिकता है ता वस्तुके विषें जो मौनिता, (बिलकुल

---

१ जिनके गुणदेखिके अन्यजनभी तादृशगुणनका आश्रय करतेहैं वे मूलगुणी।

चिरादतिचिरेणैव विश्रांतोस्मि निरामयः ॥
लब्धं लब्धव्यमखिलं तृप्तःसंश्चिरसंस्थितः २
नोपदेष्टव्यमस्माकं किंचिदप्युपयुज्यते ॥
सर्वत्रैवातितृप्तोस्मि संस्थितोस्मि गतज्वरः ३
ज्ञातमज्ञातमप्राप्तं त्यक्तं त्यक्तव्यमाश्रितम् ॥
तत्त्वं परत्वं सत्त्वं मे स्वस्यैवास्ति न किंचन ४
निःसंसृतिर्विगतमोहभयो विरागो ।
नित्योदितः समसमाशयसर्वसौम्यः ॥
सर्वात्मकः सकलसंकलनावियुक्त ।
आकाशकोशविशदः सममास्थितोस्मि ॥५॥"

अर्थः—हेभगवन् कुंभमुने ! तुमारे प्रसादकारिके सर्वदृश्यवर्गकूं अतिक्रमण कारिके स्थित जो स्वरूपताका साक्षात्कार मेरेकूं हुवा. तथा संसारके सीमांतकूंभी में प्राप्त हुवा, और जो लब्धव्यस्वरूप सो निश्चय करिके प्राप्त हुवाहै॥ १ ॥ तथा, चिरकालसेंभी अतिचिरकालकारि परमपदके विषैं विश्रांत होइके निरामय हुवाहूं, तथा जो लब्धव्यवस्तु सो संपूर्ण प्राप्त हुई है, और चिरकालकारिके संतृप्त हुवाहूं॥ २ ॥ अब मेरेकूं उपदेशकरनेका को२

उपयोग नहीं; में सर्वप्रकारसें अतितृप्त और विनष्ट हुयेहैं आधिभौतिकादिज्वर जाके ऐसा संपन्न हुवाहूं॥ ३ ॥ तथा जो अज्ञातवस्तु सो संपूर्ण जाणीहै और जो अप्राप्त सो प्राप्त हुई, तथा जो त्याग करने योग्य अहंकारादि सो त्याग किये, तथा निर्वासन ऐसा मेरा मन परमात्मस्वरूपताकूं (तदाकारता) ही प्राप्त हुवाहै—यातें मेरे स्वरूपसें इतर कोईभी वस्तु हैनहीं ॥ ४ ॥ जब तेरे स्वरूपसे अन्य कोई नहीं, तब तूं अब कैसा अवशिष्ट रह्या है, ? ऐसी आकांक्षातें कहे हैः—हे मुने ! में गयाहै संसार (जन्ममरणादिप्रबंध) जाका ऐसा और गयेहैं मोह, भय जाके ऐसा और गयेहैं रागद्वेषादि जाके ऐसा तथा नित्यप्रकाश और सर्ववैषम्यसें रहितहै स्वरूप जाका यातेही पूर्ण सौम्यरूप और सर्वात्मक तथा सर्वसंकलनारहित और आकाशकोशके सदृश कहिये निरवयव, व्यापक, असंग और स्वच्छ होयाहुवा केवल शांत स्वरूपसें रह्याहूं. ॥ ५ ॥

इति श्रीमदुदयशङ्करात्मजगौरीशङ्करविरचिते स्वरूपानुसंधाने द्वितीयप्रक्रिया ॥ २ ॥

श्रीस्वरूपानुसंधाने प्रक्रिया ३.

श्रीमद्भगवद्गीताके चौथे अध्यायमें (श्लो० १७) " किं कर्म किमकर्मेति० " (श्लो० १८) "कर्मण्यकर्म यः पश्येदिति० " तैसे अठारमें अध्यायमें (श्लो० १४) "अधिष्ठानं तथा कर्ता० " (श्लो० १५) " शरीरवाङ्मनोभिर्यत्० " (श्लो० १६) "तत्रैवं सति कर्तारम्० " इत्यादि स्मृतिप्रभृतिग्रंथोंके अनुसार त्वंपदार्थके विवेचनमें अनात्माकूं कर्मरूपता और आत्माकूं अकर्मरूपताका निर्णय स्पष्टरीतिसें जानीके

---

१ गीताके प्रथम अध्यायमें त्वंपदार्थका विवेचन कियाहै । काहेते सूचीकटाह (सोय और कटाई दोपदार्थ बनावनेमें प्रथम सहज बननेवाली सोय बनावेहै और पीछे कटाह बनावेहै) न्यायसे अवर जो त्वंपदार्थ उसका निरूपण कियाहै. अथवा त्वंपदार्थ मोक्षरूपफलका भागी होनेते उसका निरूपण अवश्य जानके प्रथम कियाहै. अथवा सर्वअविद्याके दोष त्वंपदार्थनिष्ठ होनेते ताका विवेचन प्रथम षट्कमें कियाहै ।

२ अनात्माको कर्मरूपता और आत्माको अकर्मरूपता यथाश्रुत अर्थसे असंगत होवैहै, क्यों मूलश्लोकमें कर्मरूप अनात्मा और अकर्मरूप आत्मा इस अर्थकी प्रतीति होवे नहीं किन्तु कर्मकरनेवाला और न करनेवाला या अर्थकी प्रतीति होवैहै, याते कर्मरूप यात इस रीतिसे कर्मका सम्पादक या अर्थको जानलेना, ऐसेही अकर्म रूपके स्थानमें भी जानना ।

संसारबंधनसे मुक्त होनेका विचार कहिये है. तहा यह स्मृति प्रमाणहैः-

(भ० गी० अ० ४ श्लो० १७)

"किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ॥
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात्१"

अर्थः—'कवयः'[1] (परोक्षज्ञानवाले) सर्वशास्त्रोंकूं जाननेवाले ऐसेभी पुरुष कर्मका स्वरूप क्याहै,और अकर्मका स्वरूप क्याहै, इस विषयमें मोहकूं प्राप्त होतेहैं. कैसे—कोई वेदोक्त तथा स्मृत्युक्त ऐसे जो सर्व वो कर्म हैं. और उन सर्व कर्मनका जो संन्यास सो अकर्म ऐसे कहेहैं; और कोईऐसाभी कहेहैं, जो चलनात्मक सोई कर्महै,और अचलनात्मक माने(तूष्णींस्थिति)सो अकर्म है याते हे अर्जुन ! तेरेकूं कर्म और अकर्म इनदोनोंका यथार्थ स्वरूप क्याहै यह जाननेके लिये उनके लक्षणका उपदेश करेंगे क्यों जिसके जाणनेसे अशुभ (संसार) से तू मुक्त होवेगा-आरुरुक्षु[2] पुरुषने संसारसे नि-

१ परोक्ष ज्ञानवाले या अर्थकूं समझना ।

२ आरुरुक्ष इसका अर्थ यहहै तत्त्वमें आरोहण (स्थिति) करनेकी जाकी इच्छा प्रबल होवे सो अर्थात् तीव्रमुमुक्षावाला ।

वृत्तिके अर्थ कर्म और अकर्म इन दोनोंका स्वरूप यथार्थतासें जाणना अवश्यहै—याते इन दोनोंका लक्षण हम तेरेकूं कहेंगे इसप्रकारसें पहिलें जो प्रतिज्ञा करगये, सो कर्म और अकर्म इन दोनोका स्वरूप लक्षणअब कहतेहैं ॥

(गी-अ-४ श्लो. १८)

"कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ॥
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् १"

अर्थः—कर्म कहिये देह, इंद्रिय और अंतःकरण आदिकनसें कियाजाताहै सो अर्थात् लौकिक और वैदिक ऐसा सर्वभी व्यापार सो कर्म कहावैहै. वो चेष्टामात्र औपाधिक (उपाधिकृत). कर्मके विषें जो आत्माका

---

१ शरीरव्यवहारोपयोगी स्वाभाविक चेष्टा (हिताहित प्राप्ति परिहारानुकूल व्यापार)सो लौकिक कर्म कहेहैं । और वैदिक कर्म नित्य, (जिसके न-करणते पाप होवे और जाकीकर्तव्यता वेदबोधन करेहै.) और नैमित्तिक, (किसी निमित्तते जाकी कर्तव्यता वेद् बोधन करेहै, और अकरणमें प्र-त्यवायजनक है सो) और प्रायाश्चित्त (पापनिवृत्यर्थ बोधित) काम्य, (किसी कामनासें कियाजावे सो)

यथार्थ स्वरूप जाणनेवाला विद्वान् पुरुष, सो अकर्म भावकूं देखे कहिये मूढ पुरुष स्वतः अकर्मरूप होयांभी अन्य देहेंद्रियादिकनकी क्रियासें कर्मवाला होवे है; तथापि आत्मवेत्ता पुरुष तो "ब्रह्मही मैं हूं" इसप्रकारसें ब्रह्मके विषेही आत्मत्वका विज्ञान होणेसें आपनेमें देहादिकनके संबंधका अभावहै यातें देहेंद्रियादिकनसें हुवा जो कर्म, सो आत्माका अकर्मरूपही है ऐसा देखेहैं, काहेते देहादिकृतकर्मके विषैं अहंता ममता करिके सत्त्वका अभावहै. अन्यकृत कर्मके विषैं अन्यका स्वकीयपना कहना बनेनहीं याते विद्वान् पुरुष देहादिकृत कर्मनकूं स्वीय अकर्मरूपतासे देखेहै. तथा अकर्म कहिये देहेंद्रियादिकनके व्यापारका उपरामरूप तूष्णींभावकूं कर्मस्वरूपसेंही जाणेहैं यद्यपि मूढ आपने विषैं देहादिकनका अध्यास करिके जब देहादिकनका व्यापार शांत होताहै तिसकालके विषैं "मैं तूष्णीं सुखकरीके बैठाहूं" और दुःखकारक कोईभी कर्म करतानहींहूं इस प्रकारसें दुःखरूप देहेंद्रियादिकनके निरोधविषैं सुखबुद्धि करीके देहादिकनकी अक्रियासें आपनेविषैं अक्रियपना

मानेहै, तथापि मूढकी दृष्टिसे जो तूष्णींभावरूप अकर्महै ताके विषैं मानसिक निरोधरूप क्रियाही रहीहै, यातें विद्वानको तूष्णींभावरूप अकर्मके विषैं कर्मत्वदर्शन न्याय (युक्ति) सें और दृष्टांतसें अनुभवसिद्धहैं, तात्पर्य यहहै—विद्वानकी दृष्टिसें संघातकृत (देहेंद्रियादिसमुदायने किया) कर्मनका संबंध नहींहोनेतें आत्मा अकर्मरूपही है और मूढकी दृष्टिसे संघातकृत कर्मका तादात्म्य संसर्गाध्यास[1] (स्वरूपके साथ संबंधरहित ऐसे पदार्थनका जो संबंधाध्यास कहिये संबंधरहित देह तत्कर्मादिकनके विषैं अहंममत्वके अध्यास)सें आत्मा कर्त्तारूपहै इसरीतिसें जिस अर्थका उपक्रम कियाहै तिसविषयका उपसंहार गीताके अठारमें अध्यायमें कियाहै, वहांकी स्मृतिः—

गी:अ. १८ श्लो १४)

---

१ संसर्गनाम संबंधका है। कर्मका संबंध वस्तुतः देहेंद्रियादि जडपदार्थनमें है आत्मामें नहीं, ताकूं आत्मामें मानलेणा सो संसर्गाध्यास, 'अतद्मिंस्तद्बुद्धिः" यह अध्यासलक्षणहै, असंबधीमें संबंध लेणा यह ताका र्थ है।

"अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् ॥
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्॥१॥"

अर्थः--कर्मके उत्पत्तिमें यह पंच हेतुहैं-(१) अधिष्ठानं कहिये सुखदुःखके भोगका और सर्वेंद्रियादिकनका आयतन ऐसा स्थूलशरीर और (२) कर्त्ता कहिये कर्तृत्व भोक्तृत्वके अभिमानवाला जो विज्ञानमय कोष अर्थात साभास अहंकार और (३) पृथग्विधं करणं कहिये बाह्याभ्यंतरभेदसें दोप्रकारके ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय और मन, बुद्धि इसप्रकारसें द्वादश करणहैं, और (४) विविधाश्च पृथक्चेष्टाः प्राणादि पंच और नागादि[१]पंच मिलके दशप्रकारका जो वायु उसकी अध ऊर्ध्व गतिरूप नानाप्रकारकी चेष्टा कहिये व्यापार. और (५) पंचमं दैवं कहिये चक्षुरादि इंद्रियनको प्रवर्तक अनुग्रह करनेवाली सूर्यादि देवता.१ और यह स्मृतिः-(गी. अ. १८श्लो० १५)

"शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः॥१॥"

---

१ नाग १ कूर्म २ कृकल ३ देवदत्त ४ धनंजय ५.

अर्थः—'नरः' कहिये बाह्यदृष्टिसें कर्मकरनेवाला पुरुष 'शरीरवाङ्मनोभिः' कहिये स्थूलशरीर, वाणी और मनकरिके बुद्धिपूर्वक 'न्याय्य' कहिये शास्त्रसें अविरुद्ध और विपरीत कहिये शास्त्रनिषिद्ध ऐसें जो कर्म करेहै ता कर्मके उत्पत्तिमें पूर्व कथित अधिष्ठानादि पंच कारणभूत हैं. (गी. अ. १८ श्लो. १६)

"तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥१॥"

अर्थः—पूर्वोक्त प्रकारसे अधिष्ठानादि पंचनको सर्व-कर्मोत्पत्तिमें कारणता है ऐसा निष्कर्ष (सिद्धअर्थ) होनेतें जो पुरुष आत्मानात्माके तत्त्वविचारसें रहितहै— सो पुरुष अधिष्ठानादि पंचनसें उत्पन्न हुवा विहित और निषिद्ध जो कर्महै उसके विषें इस कर्मके कर्ता हमहैं इस प्रकारसें अकर्ता, एकरस, निष्कल, निष्क्रिय, निर्विशेष ऐसे आत्माके विषें कर्तृत्व देखेहै,जैसे हमने स्नान किया, हमने भोजन किया, हम गये, हम आये, मैने दुष्ट अथवा अदुष्ट कर्म किया. इसरीतिसें विवेकरहित होनेतें आत्माको ही कर्मका कर्ता मानेहै. इसप्रकारसें

निष्क्रिय, अज, निर्विकार, असंग चिदात्माके विषैं अन्यके धर्मजो कर्तृत्व भोक्तृत्वादिक उनका आरोप करनेवाला पुरुष अकृतबुद्धि (श्रवण, मननादिसंस्कारसें रहित बुद्धिवाला) है. अथवा राजस, तामस, वासनात्मक अविद्यासें दूषित जिस्की बुद्धिहै. यातें वो पुरुष कुछभी जानता नहीं. पूर्वकथित स्मृतिप्रमाणका निष्कृष्ट तात्पर्यार्थ जो सिद्धहुवा उसका कथनः--

कर्मका कर्तृत्व भोक्तृत्व सावयवयमें बनेहै. निरवयवमें बने नहीं. जैसे निरवयव आकाशमें कर्तृत्व भोक्तृत्व बनता नहीं, यातें पूर्वोक्त अधिष्ठानादि पंचकरूप संघात (समुदाय) आत्माके संनिधानसें सत्ताप्रकाश पायके गमनादि चेष्टा करेहै यातें सक्रिय (क्रियावाला) है—

काहेतें त्रिगुणनिर्मित[1], सावयव[2], षड्भावविकारवाला[3] और षडूर्मिवावाला[4] संघातहै, यातें कर्ता भोक्ता बनैहै

[1] सत्त्वरजतम इन तीनगुणोसें निर्मित । [2] अवयववाला. [3] अस्ति १ जायते २ वर्धते ३ विपरिणमते ४ अपक्षीयते ५ विनश्यति ६ । [4] जरा १ मरण २ क्षुद ३ पिपासा ४ शोक ५ मोह ६ ।

और आत्मा तो ता संघातसैं विपरीतहै. काहेतें आत्मा अधिष्ठानरूप है, और उससंघातका प्रकाशक और सत्[1] चित्[2] आनंदरूपहै, यातें आत्मा अक्रिय अर्थात् अकर्ता भोक्ताहै, काहेतें आत्मा निरवयव, निर्गुण, षड्-भाव विकाररहित, षडूर्मिरहित, केवल शिव रूप है, यद्यपि दृश्य मान उपाधिसें तादात्म्याध्यास होनेतें अविद्याकरिके आत्माके विषैं कर्तृत्व भोक्तृत्वादिक-बनेहैं, तथापि सो मिथ्या अविद्यासें भ्रांतिरूपहै. जैसे जलमें प्रतिबिंबित चंद्रके विषैं जलरूप उपाधि-धर्म चलनादिक मिथ्या भ्रांतिरूप प्रतीत होवेहै, इसरीतिसें आत्माके विषें निष्क्रियत्व सिद्ध है.इस विषयमें गीताके अष्टादश अध्यायकी यह स्मृति प्रमाणहै–

(गी. अ. १८. श्लो. १७)

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमान् लोकान् न हंति न निबध्यते

---

१ सत् कहिये कालत्रयमें बाधरहित । २ चित्स्वयंप्रकाश ३ । आनंद दुःखविरोधि नित्यसुखरूप,

याका यह अर्थहै:--पूर्वोक्तरीतिसें जा पुरुषकूं अहंभाव नहीं कहिये बुद्धिके धर्म जो कर्तृत्व, भोक्तृत्व तिनकूं अहं ममत्वसें स्वस्वरूपके विषै: माने नहीं. सो पुरुष शरीरादि संघात कर्ता भोक्ता होतेभी उसके विषै लेपायमान होता नहीं, (संसारबंधनसें मुक्त रहेहै.) तामें मुंडक श्रुतिका प्रमाण,

(मुंडक उ. ३।१।१)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-नश्नन्नन्योऽभि चाकशीति ।

याका अर्थः--दो सुपर्ण कहिये पक्षीके सदृश, सयुजौ कहिये नित्य अवियुक्त अर्थात् संघातमें रहनेवाले, सखायौ कहिये (परस्परमित्र) चिद्रूप अर्थात् एक अंतःकरणसें उपहित (उपाधिवाला) चिदाभास तथा दुसरा अंतःकरणसें अनुपहित (नि-रुपाधिक) कूटस्थ (निर्विकार) ये दोनों समान कहिये एक 'वृक्ष कहिये तत्वज्ञानसें जिसका समूल

नाश होताहै ऐसा कार्य कारणोपाधिरूप जो शरीर उसको परिषस्वजाते कहिये आश्रयकरिके रहतेहैं. जैसें लौकिक दोपक्षी एक वृक्षका आश्रय करिके रहतेहैं--उन दोनोंके मध्यसें एक जीवात्मा स्वदिष्ट ऐसे, 'पिप्पलं' कहिये कर्मके फल जो सुखदुःख उनको कर्तृत्वादि कार्य कारणके अविवेकसें 'अत्ति' कहिये भोग करेहैं. और कार्यकारणसें विविक्त जो दुसरा कूटस्थ साक्षी सो 'अनश्नन्' कहिये सुखदुःखका भोग न करताहुवा 'अभिचाकशीति' कहिये कर्तृत्व भोक्तृत्वादिरूप कार्यकारणको केवल साक्षितासें देखेहै, अर्थात् जिसकी प्रेरणासें जीव सत्तास्फूर्तिकूं प्राप्त होयके चेष्टा करेहै दर्शनसें ही साक्षीको प्रेरकत्व राजाकी न्याई जाणनां, इसरीतिसें कर्तृत्व भोक्तृत्वादि रहित, शरीरादिकनसें पृथक् आनंदात्मस्वरूप जो हमहै- सो असंग, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अखंड, एकरस, परिपूर्ण, प्रत्यगभिन्न ब्रह्मस्वरूप ही है ऐसा अवधारण करनां तहां कैवल्यश्रुतिः--

१ जिसका अधिष्ठानभूत वस्तुके स्वरूपविषै प्रवेश न होवैं और वस्तुको जनावे सो उपाधि कहियेहै--

(कैवल्यउ. १।१०)

सर्वभूतस्थमात्मानंसर्वभूतानि चात्मनि ।
संपश्यन् ब्रह्म परमं, याति नान्येन हेतुना॥ १॥

अर्थः—आत्मा कहिये जो हमारा स्वरूपहै सो सर्वभूतनके विषें अनुस्यूत रह्या है तथा अधिष्ठानभूत आनंदस्वरूप जो हम उस्के विषें सर्वभूत अध्यस्तस्वरूपसें रहेहै. इस रीतिसें कल्पित पदार्थनको अधिष्ठानसें भिन्नत्व नहीं होनें तें जगत और ब्रह्मका वास्तव भेद नहींहै, यातें अपरिच्छिन्न ब्रह्मरूप मैंहूं इस रीतिसें अभेद ज्ञानकूं प्राप्त हुये पुरुष ब्रह्मानंदकूं प्राप्त होतेहैं- दुसरें साधनसें ब्रह्मप्राप्ति होती नहीं. १-

(इसरीतिसें सर्वात्मभाव संपादन करना उचितहै.)

पूर्वोक्त ब्रह्माकारवृत्तिके दार्ढ्य अर्थ निदिध्यासनरूप

---

१ अपरिच्छिन्न इसका अर्थ त्रिविध परिच्छेदरहित ऐसा होवेहै, परिच्छेद तीन प्रकारका है.१ कालपरिच्छेद,सो अनित्यमें होवेहै, देशपरिच्छेद, सो अल्पमेंहोवेहै, (२) (३)वस्तुपरिच्छेद सो सावयवमें होवेहै. परिच्छेद परिमाणका होवेहै, ब्रह्म नित्य, व्यापक और निरवयव होनेते अपरिच्छिन्नहै।

सविकल्प और निर्विकल्प (संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात) समाधिका चिंतन तहां श्लोकः—

(वाक्यसु. श्लो. २४)

कामाद्याश्चित्तगा दृश्यास्तत्साक्षित्वेन चेतनम् ।
ध्यायेद्दृश्यानुविद्धोयं, समाधिः सविकल्पकः॥१॥

याका अर्थः—काम, क्रोध, लोभ, प्रेम, हर्ष, शोक, इत्यादि अनेक वृत्तियां सत्त्व रज, तमोगुणनके तारतम्यसें प्रसिद्ध प्रतीत होवेहैं; तथा एकवृत्तिके उपशमसें अनंतर दुसरीः वृत्ति उत्पन्न होवेहै, सो वृत्ति आपने स्वरूपकूं तथा दूसरे वृत्तिके स्वरूपकूं और कामादिकनकूं जानसकती नहीं. काहेतें सो वृत्ति दृश्यहै.और मैं वृत्तियांका द्रष्टा हूं, तथा जाग्रत और स्वप्नावस्थाकें विषैं चित्तके रहनेतें वृत्तिका भी अस्तित्व है, और सुषुप्तिमें चित्तके साथहीं लीन होवेहै, यातें वृत्त्यादिक सर्व चित्तके धर्महैं, याकारणतें वृत्ति साक्ष्यहै, और मैं तिनका साक्षी हूं; तथा चैतन्यस्वरूप मैं सर्ववृत्तियनका प्रकाशक और वृतियांके भाव अभाव इन

दोनोंका जाननेवाला हूं; इसरीतिसें अखंड एकाग्रता करिके ध्यान करनेसें दृष्ट प्रकारका हृदयमें सविकल्प समाधि कहियेहै १ (इस रीतिसें युक्तिकरिके कामादिक दृश्यनका पृथक्‌भावसिद्ध करनसे उनसे अतिरिक्त आनंदात्मा सिद्ध होवहै.)

(वाक्यसु. श्लो. २५)

असंगः सच्चिदानंदः स्वप्रभो द्वैतवर्जितः ।
अस्मीति शब्दविद्धोयं समाधिः सविकल्पकः ३

अर्थः—जो परमात्मा 'असंग' कहिये संगरहित है; तहां श्रुतिः—(बृह. उ. अ. ४।३।१५) "असंगो ह्ययं पुरुषः" "असंगो नहि सज्जते" तथा 'सत, चितते आनंद' कहिये सत्यज्ञान और आनंदस्वरूप है' स्वप्रभ' कहिये स्वयंप्रकाशहै, तहां श्रुतिः—(बृह. उ. अ. ३।८।११)"अदृष्टं दृष्टम् अश्रुतं श्रोतृ"(बृ. उ. अ. ३।४।२) "न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येत"तथा 'द्वैतविवर्जित' दृश्य सर्वधर्मनसें रहित और स्वगत, सजातीय, विजातीय भेदनसे रहित, तहां श्रुतिः—(छांदोग्य उ. अ.

५।२।१)"एकमेवाद्वितीयं"ऐसा जो प्रत्यग्रूप साक्षी सो ही मैं हूं; इसरीतिसें निरंतर भावना करनीं ऊपर कथित रीतिसें कामादि अशेष वृत्तियांका लयकरनेवाला और असंग इत्यादि शब्दसे मिश्रित. और विजातीय प्रत्यय रहित सजातीय प्रत्ययका प्रवाहरूप जो चिन्मात्रनिष्ठ अनुभव सो शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि कहियेहै. १-

(ऊपरके न्याई श्रुतिसेंभी आत्माका असंगत्व द्वैतराहित्य सिद्ध होवेहै' इसरीतिसें दोप्रकारके सविकल्प समाधिके अभ्यास पाटव (चातुर्य) के बलसैं (सहजलभ्य) निर्विकल्प समाधिकूं दर्शावेहै.तहां श्लोक

(वाक्यसुं. श्लो. २६)

स्वानुभूतिरसावेशाद्दृश्यशब्दानुपेक्षितुः।
निर्विकल्पः समाधिस्यान्निवातस्थितदीपवत् १

अर्थः—रस कहिये आनंदस्वरूप परमात्मा तथा अनुभवस्वरूप प्रत्यगात्माभी परमात्मासें अभिन्न होनेतें और परमप्रेमका आस्पद होनेतें रसरूप है. अर्थात्

ब्रह्मसें अभिन्न प्रत्यक्स्वरूपभूत जो अनुभवरूप रस ताको आवेश कहिये पूर्वोक्त दोप्रकारकी जो समाधि, ताके अभ्यासके बलसें अंतःकरणके विषै स्वरूपभूत ज्ञानरूप आनंदका जो आविर्भाव सो स्वानुभूति रसावेश कहिये है. तात्पर्यः—दृश्य ग्रहणतें द्रष्टा, साक्ष्य ग्रहणतें साक्षी, संग दृष्टिसें असंग इत्यादि परस्पर सापेक्षहै. परंतु पूर्णस्वरूपके विषें दृश्य, साक्ष्य, संग आदिक प्रतियोगिनका असंभव है, यातें ताका प्रतिषेधभी नहीं केवल शुद्धचिदाकाश परिपूर्णहीहै और जो नामरूप क्रियात्मक भ्रमरूप द्वैत भासैहै सो तो रज्जुसर्पकी न्याई तथा मृगजल, तथा स्वप्नकी न्याई मिथ्याहै. तहां गौडपादकारिकाः—(मांडूक्यका. २।१६)

आदावंते च यन्नास्ति, वर्तमानेपि तत्तथा ।
वितथैः सदृशाः संतोऽवितथा इव कल्पिताः १

अर्थः—जो मृगतृष्णादिक प्रातिभासिक आदि और अंतके विषें असत् है. सो मध्यकालके विषैं भी असत् है. इसरीतिसें जैसें लोकसिद्धहै तैसें ही जाग्रतके विषें दृश्य सर्वभिन्नपदार्थ आदिअंतके विषैं अभावरूप

होनेतें मृगजलकी न्यांई असत्यहै. तथापि अनात्मवेत्ता मूढ पुरुष ताकूं सत्यकरिके मानेहै १ और आवेश कहिये आनदमें निमग्न होना सो भी स्वानुभूतिरसावेश कहियेहै उस रसावेशसें पूर्वोक्त कामादि दृश्यकूं तथा असंगादि शब्दनकूं उपेक्षित करनेवाला और स्वानुभूति रसनामक महानक्र (मकर) करिके ग्रस्त होनेतें स्वातंत्र्यका अभावहै कहिये अनुभवरसको हि भूताविष्टकी न्यांई वश होनेतें परतंत्रहुये पुरुषको निर्विकल्प समाधि होवेहै. अर्थात् लय, विक्षेप, कषाय आदिकनके अभावतें प्रतिबंधरहित स्वतःसिद्ध होवेहै, वायुरहित प्रदेशमें स्थित दीपकीन्यांई इस समाधि विषैं इष्टसिद्धिकार तथा वसिष्ठजीका वचन प्रमाणहै.

(इष्टसि. मंगलाच १)

स्वानुभूतिरजामेया, त्वनंतानंदविग्रहा ।
महदादिजगन्मायाचित्रभित्तिं नमामि ताम् ॥१॥

अर्थः—जो पूर्णचिदात्माकी अनुभूति (अनुभव) "अजा" जन्मादिविकाररहित है, तथा 'अमेया'

कहिये मननका अविषय तथा 'अनंतानंदविग्रहा' कहिये अपरिच्छिन्न आनंदस्वरूपवाली ऐसीहै; सो "महदादिजगन्मायाचित्रभित्ति" कहिये महत्तत्वसें आरंभीके स्थूलशरीरपर्यंत सर्वजगत् मायारूप चित्रकी भित्ति कहिये अधिष्ठानरूप आत्माकी जो अनुभूति तिसकूं मैं नमस्कार करूंहूं (वासिष्ठसार. प्र.श्लो.-

अंतःशून्यो वहिःशून्यः शून्यकुंभ इवांबरे ।
अंतःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुंभ इवार्णवे ॥ १ ॥
मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव ।
भावनामखिलां त्यक्त्वा यदिष्टं तन्मयो भव ॥ १
प्रशांतसर्वसंकल्पा या शिलावदवस्थितिः ।
जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा॥ १॥

अर्थः— जैसें आकाशके विषैं रिक्त (खाली)घट बाह्य तथा आंतरमें शून्यरूपहै. कहिये इतरवस्तुसें रहितहै, और समुद्रके विषैं जलपूर्ण घट अंतरबाह्य जलमयहै, तैसेंही जो अधिकारी अंतर तथा बाह्यनिर्विकल्प समाधिके बलसें अध्यस्त जो सर्व दृश्यप्रपंच तासें रहितहै, और अंतर तथा बाह्य चिन्मात्रस्वरूप करिकेपूर्णहै॥ १॥

ग्राह्य कहिये ग्रहणकरनेयोग्य जो दृश्य विषयादि तत्स्वरूप न होना तथा ग्राहकरूप भी न होना कहिये अहंकारादिरूप न होना, किंतु नामरूप क्रियात्मक सर्व-भावनाका त्याग करिके कहिये अध्यस्त जाणीके जो अवशिष्ट चिन्मात्रस्वरूप तन्मय होना ॥२॥ शांत हुये हैं सर्वसंकल्प जिसके विषैं ऐसी और जाग्रत् निद्रा (मोहरूपनिद्रा) सें निर्मुक्त ऐसी जो शिलाकी न्यांई स्थिति सोही परमस्वरूपकी स्थिति कहियेहै, ताकाही नाम सर्ववासनाजालका उच्छेद कहियेहै॥ ३॥ (इसरीतिसें अनुभवकरिके भी शुद्धस्वरूप वृत्तिमें आरूढ कहिये दृढ निश्चल करना.) इसप्रकारसें त्रिविध प्रदर्शित हृदयसंबंधि समाधिकों बाह्यसंबंधदर्शनेके वास्ते वहार तत्पदार्थ ब्रह्म और सर्ग (सृष्टि) का विवेकहै—जिसमें तथा सत, चित, आनंद ब्रह्मके विषैं है निष्ठा जिसकी ऐसा दृश्यानुविद्ध समाधिका प्रदर्शन करेंहै.

(वाक्यसु. श्लोक. २७)

हृदीव बाह्यदेशेपि यस्मिन् कस्मिंश्च वस्तुनि ।
समाधिराद्यः सन्मात्रान्नामरूपपृथक्कृतिः ॥१॥

अर्थः—जैसें हृदयमें कामादिकनसें साक्षीकूं पृथक् करिके उस कामादिक संकल्पका जो साक्षी चैतन्य, सोही मैंहूं इसप्रकार जो चिंतवन सो आंतरदृश्यानुविद्ध समाधि कहियेहै. उसीप्रकारसें बहारभी आपनेकूं इष्ट कोईभी वस्तुकी अवलंबन करिके सत्, चित्, आनंद, नामरूप पंच अंशात्मक जो इष्ट वस्तुका स्वरूप तामें जो नामरूप अंशद्वय ताकूं पृथक् करिके उन दोनोंका अधिष्ठानभूत जो सत्, चित, आनंद काल्पित रूपवस्तु सोही तत्पदका लक्ष्यार्थ ब्रह्म और ता ब्रह्मरूप ही मैंहूं इसरीतिका जो चिंतवन सो बाह्यदृश्यानुविद्ध समाधि कहियेहैं. १ इस रीतिसें बाह्यदृश्यानुविद्ध समाधिका निरूपण करिके समष्टिव्यष्टिरूप समस्त दृश्यप्रपंचका लय करनेवाला बाह्यशब्दानुविद्ध समाधि ताकूं दर्शावेहै

(वाक्यसु. श्लो. २८)

अखंडैकरसं वस्तु सच्चिदानंदलक्षणम् ।
इत्यविच्छिन्नचिंतेयं समाधिर्मध्यमो भवेत्॥१॥

अर्थः—अखंड कहिये देश, काल, वस्तु करिके अपरिच्छिन्न और एकरस कहिये तीनों कालके

विषैं भी एकरूप जो वस्तु सोही ब्रह्म मैंहूं, इसरीतिसे विजातीय प्रत्ययरहित सजातीय प्रत्ययका प्रवाहरूप जो चिंतन सो बाह्यशब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि कहियेहै. इसप्रकारसें ब्रह्मके विषैं द्विविध प्रकारके सविकल्प समाधिकूं प्रदर्शनकरिके, अब पूर्वोक्त समस्त दृश्य और शब्दनका विलयकरनेवाले निर्विकल्प समाधिकूं दर्शावेहैः—(वाक्यसु. श्लो० २९)

स्तब्धीभावो रसास्वादस्तृतीयः पूर्ववन्मतः।
एतैः समाधिभिः षड्भिर्नयेत्कालं निरंतरम्॥१॥

अर्थः—पूर्वोक्त बाह्य तथा आंतर इन द्विविध प्रकार सविकल्प समाधिके अभ्यासबलसें भूमा (व्यापक) नंद रसास्वादनसें व्यष्टि समष्ट्यात्मक सर्व दृश्यप्रपंचके तथा अखंड एकरस इत्यादि शब्दसमूहकी उपेक्षा करिके आस्वादन किये भूमा (व्यापक) नंदके परतंत्रतासें स्थित जो चित्त ताका वातरहित प्रदेश स्थित दीपकीन्याई जो निश्चलभाव (स्तब्धता) सो तृतीय निर्विकल्प समाधि जानिये और सोभी

पूर्वोक्त समाधिकीन्यांई आंतर (त्वंपदार्थ-विषयक) और बाह्य (तत्पदार्थविषयक) दोप्रकारका जाणना इसरीतिसें दोप्रकारके समाधिसेही मुमुक्षने निरंतर कालनिर्गमन (क्रमण) करना उचितहै ॥१॥ इसप्रकारसें आंतर औ बाह्य मिलके दोप्रकारके समाधिका दीर्घकाल निरंतर सत्कारपूर्वक मुमुक्षु अवश्यकर्तव्यतासें अनुष्ठानकरिके अनन्तर पूर्वोक्तप्रकारसें अन्वयव्यतिरेक युष्मदर्थ (अनात्मा) की व्यावृत्ति (निरास) और अस्मदर्थ (आत्मा) की अनुवृत्ति (व्याप्ति) सें आंतर और बाह्य इन द्विविध प्रकारके पदार्थका परिशोधन करिके देहाभिमान गलितहुये और साक्षात्कार किये अनंतर पूर्वोक्त परमात्मस्वरूपका समाधिका आस्वाद मुमुक्षुका मन अंदर अथवा बहार जहांजहां जावै तहांतहां स्वतःसिद्ध ही होवेहैं या वार्ताकूं कहेहैः—

(वाक्यसु.श्लो० ३०)

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्रयत्र मनो याति तत्रतत्र समाधयः॥ १॥

अर्थः—सम्यक् प्रकारसें किया आंतरदृक् (द्रष्टा) दृश्यका जो विवेक उसकारिके अस्मत् शब्दका अर्थभूत जो साक्षी आत्मा ताके विषैहीं अभिमानसें (अहंकार) आरंभ करिके देहपर्यंत जो युष्मदर्थ ताके विषै "मैं कर्ताहूं" "मनुष्यहूं" इसरीतिसें अनात्माके विषैं अभिमान गळितहुये तथा बाह्य नामरूपात्मक जो सर्वप्रपंच और ब्रह्मके विवेकसें नामरूपात्मक सर्वमिथ्याहै और ताका अधिष्ठानभूत सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्महीसत्यहै। इसरीतिसे परमात्माके ज्ञानहुये ते गळित हुवा है देहाभिमान जिसका तथा जान्याहै परमात्मतत्त्व जिसने ऐसें पुरुषका मन अंदर बहार जहांजहां जावें तहांतहां पूर्वोक्त षड्विध समाधि स्वतः ही सिद्ध होवेहै ॥ १ ॥ तीव्र वैराग्यके बलसें परमहंसाश्रमके स्वीकारपूर्वक ब्रह्मके साक्षात्कारपर्यंत सद्गुरुके सन्निध शारीरक शास्त्र (वेदांतशास्त्र) का अवलंबन करिके निरंतर पौनः पुन्यसे किया तत्त्वंपदार्थका जो विवेक उसकारिके गळितहुवाहै देहाभिमान जिसका और ज्ञातहै परमात्मतत्त्व जिसकूं ऐसें पुरुषको षड्विध समाधि

अनायाससें स्वतः ही प्रवृत्त (प्राप्त) होवेहै यही तात्पर्यार्थ है काहेते (ब्रह्मसू० ४ । १ । १) "आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" इस व्याससूत्रके अनुसार "अहं ब्रह्म" इस वाक्यके अर्थका बोध सुदृढ होने पर्यंत समाधिसहित श्रवणादिकनका अभ्यासकरें इसप्रकारसें आचार्यजीने कहाहै अब वैराग्यसंन्यासादिक श्रवणके साधनोंविषैं प्रयास देखीके तथा दीर्घकाल, निरंतर सत्कारपूर्वक अनुष्ठित श्रवणादिरूप ज्ञान साधनोंके विषै महत्प्रयास देखीके तथा ब्रह्मआत्माके एकत्वज्ञानका फल अग्निहोत्रादिककी न्याई तत्कालमें प्राप्त नहीं होवेहै ऐसी स्वबुद्धिसे कल्पना करिके साधनानुष्ठानसें उपराम होईके स्थितशिष्यकूं फल प्रदर्शनद्वारा साधनानुष्ठानके विषैं ताकूं प्रवृत्त करणेवास्ते तथा विश्वास उत्पत्तिके अर्थ ब्रह्मात्माकी एकतारूप ज्ञानका तत्काल फल प्रदर्शक श्रुतिकूं पठन करेहैंः-

(द्वितीयमुंडक । २ । २ । ८)

"भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ।
क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे १॥"

अर्थः—देहसे बाह्य नामरूपात्मक सर्वप्रपंच सर्पाधारभूत रज्जूकी न्याई व्याप्त सच्चिदानंदरूप परमात्मा सोही परशब्दका अर्थ है; तथा अंतःकरणादि सर्वदृश्यनसें विलक्षण और अस्मत्प्रत्ययका अवलंबभूत तथा प्रत्यक् चैतन्यमात्र और साक्षीभूत जो जीवात्मा सो अवरशब्दका अर्थहै अर्थात् प्रत्यगभिन्न जो परमात्मा ताका साक्षात्कारहुये कहिये, तूं सो मैं हूं और मैं सो तू है, तथा ब्रह्म मैं हूं और मैं जो सोही ब्रह्महै. इसरीतिसें अखंड एकरसता करिके करतलामलककी न्याई साक्षात्कार हुये अधिकारीका हृदयग्रंथि कहिये अहंकार और साक्षी इन दोनोंका तादात्म्याध्याससें लोहाग्निकी न्याई एकहुवा जो स्वरूप सो, भिद्यते (भिन्न कहिये तूटताहै) तथा सर्वसंशय छिन्न होवेहै, कहिये मेरे विषे वास्तव ब्रह्मता है या नहीं? और ब्रह्मत्व होते भी साक्षात्कार हुवाहै या नहीं? और साक्षात्कार हुयेभी मेरेकूं कर्तव्यकार्य कोई है या नहीं? और कर्तव्यका अभाव होनेतेभी मेरेकूं जीवन्मुक्ति है या नहीं? और जीवन्मुक्ति होतेभी वर्तमान देहके पात

अनंतर विदेह मुक्ति प्राप्त होवेगी या नहीं और विदेहमुक्ति होनेतेभी कालांतरके विषै पुनः जन्म होवेगा या नहीं इत्यादि संशयोंका छेद होवे है, अर्थात् परावरके ऐक्य दर्शनरूप शास्त्रकरिके संशयरूप पाश खंडित होवेहै तथा उस अधिकारीके कर्म क्षीण होवे हैं, (संचित, अनारब्ध (क्रियमाण) शब्दका वाच्य पुण्यपापसंमिश्र जोकर्म सोही विवक्षितहै, प्रारब्धकर्मका भोगसे क्षय होवेहै) ॥ १ ॥ ऊपर कथित प्रकारकी जो स्थिति सोही जीवन्मुक्ति कहियेहै.

यस्मिन् कालेस्वमात्मानं योगी जानाति केवलम्।
तस्मात्कालात्समारभ्य जीवन्मुक्तो भवेत्सदा १॥

याका भावार्थः—योगी कहिये त्वंपदार्थ और तत्पदार्थके शोधनपूर्वक भाग त्यागलक्षणा (तत्त्वंपदोंके वाच्यार्थमें जो विरुद्ध विशेषणांशभाग तिनका त्यागकरिके शुद्ध विशेष्यभागकूं जणावनेवाली) सें अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) जाननेवाला आपने स्वरूपभूत आत्माकूं जिसकालके विषै केवलरूप कहिये अद्वैत, अखंड, एक

रस अनुभव करे तिसकालकूं आरंभ करिके जीवन्मुक्त रहेहै ॥ १ ॥ ऊपर कथितार्थकूं दृढकरनेवास्ते श्रीवासिष्ठांतर्गत सिद्धगीताके प्रमाणहैं:—(यो-वा-उपशमप्र-सर्ग-७)

द्रष्टृदर्शनदृश्यानि, त्यक्त्वा वासनया सह
दर्शनप्रथमाभास, मात्मानं समुपास्महे १०॥१
यस्मिन् सर्वं यस्य सर्वं, यतः सर्वं यस्मा इदम्।
येन सर्वं यद्धि सर्वं, तत्सत्यं समुपास्महे १२॥२॥
सर्वाशाः किल संत्यज्य, फलमेतदवाप्यते ।
येनाशाविषवल्लीनां, मूलमाला विलूयते १४॥३॥
बुद्ध्वाप्यत्यन्तवैरस्यं, यः पदार्थेषु दुर्मतिः ।
बध्नाति भावनां भूयो, नरो नासौ सगर्दभः १६ ४॥
उपशमसुखमाहरेत्पवित्रं,
शमवशतः शममेति साधुचेतः ।
प्रशमितमनसः स्वके स्वरूपे,
भवति सुखे स्थितिरुत्तमा चिराय १८ ॥ ५ ॥

इनका अर्थः—शुद्ध प्रत्यगात्मस्वरूपका निष्कर्ष (सर्वउपाधिनिरासकरिके अवशिष्ट करिके करतलाम-

लकवत् साक्षात्कार करावते कोई सिद्ध मुनि कहतेहैं, जो द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इस त्रिपुटीकूं वासनासहित त्याग करिके (इस स्थलके विषें त्रिपुटीका त्यागकरनेसें शुद्ध आत्माके विषें जाग्रत और स्वप्न इन दोनूं अवस्थाका निरास सूचन कियाहै. और वासनाका त्याग कहनेसें दो अवस्थाकी बीजभूत और वासना जालकरिके परिपूर्ण ऐसी जो अज्ञानात्मक सुषुप्ति अवस्था ताका निरास सूचन कियाहै.) त्रिपुटीसें पर और चक्षु, मन आदि इंद्रियनकी वृत्तियोंसें पहिले ही उनकी उत्पत्तिमें साक्षीरूप करीके भासमान अर्थात् त्रिपुटीसें पूर्व सिद्ध और सर्वकूं अनुभव सिद्ध ऐसा जो त्रिपुटीसे विवेचित तुरीयस्वरूप प्रत्यगात्मा ताकी उपासना करियेहै. (प्रत्यगभिन्न ब्रह्मस्वरूपकी स्थितीकूं प्राप्तहुये है.)॥ १ ॥ जो ब्रह्म, नामरूपात्मक सर्वप्रपंचके आधार तासें तथा सर्वका स्वामीरूप होनेसे तथा सर्वका अभिन्ननिमित्त उपादानरूप अपादान (अवधिभाव) सें तथा परार्थस्वरूप संप्रदान भावसे तथा सर्व जो कर्तृकरणादि भाव तासें अर्थात् सप्तविभक्त्यर्थरूप तासें मायाकरिके

सर्वजगतके व्यवहारका निर्वाहक और सर्वात्मक ऐसा होवेहै.ता सर्वका अधिष्ठान परमार्थ सत्यब्रह्मरूप प्रत्यगात्माहै. इसरीतिसे अभेद साक्षात्कार करिके ब्रह्मात्मैक्यरूप अवस्थामें स्थितिकूं प्राप्तहुये है ॥ २ ॥ अन्य सिद्ध मुनि पूर्वोक्त स्वरूप तत्त्वकी प्राप्तिकै विषैं वैराग्यकूं ही मुख्य साधन कहेहैं. सर्व आशाके परित्यागसैं ही हृदयस्थित और ज्ञानका फलरूप जो प्रत्यक्स्वरूप ब्रह्म ताकूं प्राप्तहोवेहै । जा स्वरूपके लाभसे आशारूप विषलताकी मूलमाला (वासनाजालसे जटिल ऐसा हृदय ग्रंथि) छिन्न होवेहै (भग. गी. अ. २ । श्लो-५९)

रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।

इसभगवद्गीतावचनके प्रमाणसे ॥ ३ ॥

पूर्वोक्त वैराग्यके ही दार्ढ्य अर्थ कहेहैः-जो दुर्मति पुरुष भोग्यविषयनके विषै वैरस्य जानीके अनंतरभी तिसकेविषै फिर वासनाबद्ध होवेहै सो नर नहीं किंतु गर्दभ जानिये ॥ ४ ॥ अन्य सिद्धमुनि उपशमकूंही

मुख्य साधन कहेहै और वैराग्यादि इतर साधन उपश-
मके अर्थहैं इस आशयसे उपसंहारकर है. उपशम
कहिये बाह्य आंतर इंद्रियनका स्वस्वविषय विषैं व्यापार
का उपराम.उसकारिके सर्वविक्षेप दुःखकी शांति होनेतें
आविर्भावकूं प्राप्त होनेवाला जो आत्मसुख ताकूं हीं
सम्पादन करना । सो आत्मसुख विषय सुखकीन्याई
दोषहेतु नहीं किंतु चित्तप्रसादका हेतु है । याते पवित्र-
रूप है तथा उपशमवान् जो पुरुष ताका चित्त निरिं-
धन अग्निके सदृश शांतिकं प्राप्त होवेहै । और शांत
कहिये निर्वासनाचित्तवाले पुरुषनकूं निरतिशयानंदरूप
स्वकीय परमार्थस्वरूपके विषैं स्थिति कहिये भूमिका
ओंकी परंपराविषैं आरोहणक्रमसे उत्तम ऐसी सप्तम
भूमिकाकेविषै प्रतिष्ठा प्राप्त होवेहै ॥ ५ ॥

इति श्रीमदुदयशंकरात्मज गौरीशंकरविरचिते स्वरू-
पानसंधाने तृतीयाप्रक्रिया समाप्ता ॥ ३ ॥

चतुर्थप्रक्रियाप्रारंभः ।

मांडूक्यश्रुति, और तिसके उपर व्याख्यान रूप गौडपादाचार्यकारिका तिनके तात्पर्यके अनुसार विचार. मांडूक्यभाष्यके आरंभमें मंगलाचरण.

प्रज्ञानांशुप्रतानैः स्थिरचरनिकरव्यापिभि र्व्याप्य लोकान् । भुक्त्वा भोगान् स्थविष्ठान् पुनरपि धिषणोद्भासितान् कामजन्यान् ॥ पीत्वा सर्वान् विशेषान्स्वपिति मधुरभुङ् मायया भोजयन् नो । मायासंख्या तुरीयं परममृतमजं ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि ॥ १ ॥

अर्थः—विधि मुख (स्वरूपबोधक शब्दोंकरीके प्रतिपादन) करीके ब्रह्मवस्तुप्रतिपादनकी जो प्रक्रिया ताकूं दर्शावेहै, जो परब्रह्म ताकूं में नमस्कार करूं हूं. अस्मदर्थका कहिये अहंप्रत्ययके विषय प्रत्यगात्माकी ब्रह्मके साथ ऐक्यताका अनुसंधान ताके स्मरणरूप नमनकूं सूचन करतेहुये भाष्यकारने ब्रह्मशब्दके अर्थकूं ही प्रत्यक्त्व (आत्मत्व) सूचन किया. तिसकरिके

तत्पदार्थ और त्वं पदार्थका ऐक्यरूप विषय ध्वनित होवेहै, और यत शब्दको प्रसिद्ध अर्थकी द्योतकता होनेतें वेदांत प्रसिद्ध जो ब्रह्म ताकूं नमस्कार करूहुं, ऐसे संबंध करीके श्रौतमंगलाचरणभी किया, और ब्रह्मकूं अद्वितीयत्व है याते जन्ममरणकारणके अभावतें अमृतं और अजं ऐसा कहाहै और जन्ममरणका प्रबंध (संततबंधन) रूप संसारताका निषेध करिके स्वतः सिद्ध संसाराभावकूं प्रदर्शन करतेहुये श्रीआचार्यने संसाररूप अनर्थकी निवृत्तिरूप प्रयोजनभा द्योतन किया.जो अद्वितीय और स्वतः संसारशून्य ऐसा ब्रह्म वेदांतप्रमाणनसे सिद्धहै, तो अवस्थात्रयविशिष्ट भोक्ता ऐसे जीवनका अनुभव तद्रूपसें कैसा होवेहै ? और तिनोंकूं भोग करावनेवाला ईश्वर श्रुतिमें श्रुत होवेहै तथा भोग्य कहिये भोगने योग्य विषयसमूहभी पृथक् प्रतीत होवेहै, यह सर्व दृश्यवर्ग अद्वैतस्वरूपके विषैं विरुद्ध है. ऐसी आशंका होनेते ताके समाधान अर्थ अद्वैत ब्रह्मके विषैं जीव, जगत, और ईश्वर ये सर्व कल्पनासें संभवै है इस अभिप्रायसे कहे हैः—

"प्रज्ञानांशुप्रतानैः" कहिये जन्मादि विकाररहित कूटस्थ ज्ञप्तिरूप जो ब्रह्मवस्तु ताकूं प्रज्ञान कहियेहै, काहेते "प्रज्ञानं ब्रह्म" ऐसा श्रुतिप्रमाण है, इस ब्रह्मके अंशु (किरण) रूप चिदाभास, जीव सूर्यप्रतिबिंबकी-न्याई निरूपण कियेभी बिंबभूत् ब्रह्मसें भिन्नता करिके विद्यमान है नहीं. उन चिदाभास जीवनका 'स्थिरचर' कहिये वृक्षादि मनुष्यादि समूहके विषैं व्यापक 'प्रतान' विस्तारसे लोक कहिये विषयनकूं व्यापीके और देवतानुगृहीत बाह्य इंद्रियनके द्वारा बुद्धिका जो तत्तद्विषयरूप परिणाम तासें जन्य है, याते स्थूल ऐसे भोग कहिये सुखदुःखके साक्षात्कारकूं भोगिके 'स्वपिति' कहिये शयन करेहैं; इस प्रकारसें ब्रह्मके विषैं जागरित कल्पित है, इस प्रकार सूचना किया. तिसही ब्रह्मके विषे स्वप्नकल्पनाको दिखाताहै कि, पुनःकहिये जाग्रत् अवस्थामें हेतु धर्म अधर्मके क्षयके अनन्तर स्वप्नके हेतु कर्मका उद्भव होतेहुये स्वप्नके विषे बाह्य इंद्रिय तथा स्थूल विषय हैं नहीं किंतुवासनात्मक भासता है, सो कैसा है की काम कर्म

और अविद्यासे जन्य ऐसा सो वासनात्मक विषयोंका अनुभव करके शयन करताहै, अवस्थाद्वयकी ब्रह्मके विषैं कल्पना प्रदर्शनकरिके सुषुप्तिकीभी कल्पना प्रदर्शन करेहै, जागरित स्वप्नरूप स्थूल सूक्ष्म सर्व विषयनकूं 'पीत्वा' कहिये अज्ञात स्वरूपके विषैं लीन करीके शयन करे है. (कारणभावसें स्थित रहेहै) ता सुषुप्तिके विषैं आनंदकूं प्राधान्यकें अभिप्रायसें विशेषण देवेहैं. 'मधुरभुक्' कहिये आनंदका अनुभव करनेवाले प्रतिबिंबरूप जीवकूं मायाकृत मिथ्याभूत अवस्थात्रयके संबधी (अवस्था त्रयवान्)ऐसे संपादन करिके भोगप्रद होयाहुयां सो ब्रह्म रहेहै, याते ब्रह्मके विषै तीन अवस्था तथा अवस्थावाले जीव और मायावी ईश्वर ये सर्व पदार्थ कल्पितहै. या वार्ताकूं कहेहैं " मायासंख्यातुरीयं " तुरीय (चतुर्थ) ऐसे अर्थसें ब्रह्मकूं सद्वितीयता प्राप्त होवेहै, इस शंकाका समाधानः—कल्पित स्थानत्रयकी अपेक्षासें जो ब्रह्मकूं तुरीयत्व कहा तिसतें द्वैत संभवे नहीं, मायावी कहने निकृष्टताकी

शंका होनेते सिद्धान्त कहेहै, 'परं' (शुद्ध) यद्यपि ब्रह्मकूं माया उपाधिद्वारा मायाविता है तथापि स्वरूपसें मायाका संबंध नहीं याते निकृष्टता संभवे नहीं॥ १॥ प्रथमश्लोकमें विधिमुखसें वस्तुप्रतिपादनकी प्रक्रियाका अवलंब करीके तच्छब्दार्थसें उपक्रमकरि तच्छब्दार्थको त्वंपदार्थ प्रत्यगात्मस्वरूपत्व कथन किया, तथा विषय और प्रयोजनकी उक्तिकरिके संबंध औ अधिकारीका सूचन किया,अब निषेधद्वारासें वस्तु प्रतिपादन करनेवाली प्रक्रियाका आश्रयण कारिके त्वं पदार्थसें उपक्रम कारिके त्वमर्थकूं तत्पदार्थके साथ असंसारी ब्रह्ममात्रत्वकी प्रतीति करावे है. (मांडू. भाष्य-२) श्लोकः—

योविश्वात्मा विधिजविषयान्प्राश्यभोगान्स्थविष्ठान् पश्चाचान्यान्स्वमतिविभवान्ज्योतिषास्वेनसूक्ष्मान् ॥ सर्वानेतान्पुनरपि शनैः स्वात्मनि स्थापयित्वा हित्वासर्वान्विशेषान्विगतगुणगणः पात्वसौनस्तुरीयः ॥ २ ॥

अर्थः—त्वंपदका अर्थभूत और स्वतः सिद्ध ऐसा जो चिद्धातु यत् सर्वनामकरीके ग्रहण करनां । तिस

चिद्धातुके विषैं जागरित आरोपित है ताका उदाहरण देवेहै जो चिद्धातु विश्वात्मा हैं-विश्व कहिये पंचीकृत (जिनका पंचीकरण अर्थात् प्रत्येक भूतका अर्धभाग और इतरभूतोंकें चतुर्थ भाग इनका मेलनसों) महाभूत और ताका कार्यभूत स्थूल जगद्रूपी विराट् शरीर यही जागरित अवस्था; तिसके विषैं 'अहं' ममत्वाभि मानवाला सो विश्वात्माकहिये है.ताकी अर्थ क्रियाकूं कहेहै 'विधिजविषयान्' कहिये अविद्या कामसें उत्पन्नहुये धर्म और अधर्मनसें जन्य शब्दादि विषय, वें कैसें हैं भोग शब्दके वाच्य तथा आदित्यादि देवतानुगृहीत बाह्य इंद्रियद्वारा जो बुद्धिवृत्तिके परिणाम तिनके विषयभूत हैं याते (स्थूलतम ऐसें तिन शब्दादि विषयनकूं साक्षात अनुभव करीके यह प्रत्यगात्मा स्थित है. सो ही परमात्माके विषैं स्वप्नावस्थाका अध्यास दर्शावेहैं, जाग्रतके हेतुभूत कर्मनके नाश अनंतर स्वप्नके हेतुभूत कर्मनका उद्भव होनेते स्थूल विषयसे अन्य ऐसे और सूक्ष्म कहिये बाह्य इंद्रियउपराम हुयेहैं याते

अविद्या काम औ कर्म इनसे प्रेरित स्वबुद्धिमात्रके प्रभावसें उत्पन्न अर्थात् वासनामय और आदित्यादि ज्योतिअस्त होनेते आत्मभूत ज्योतिसें ही विषय किये-हुये सूक्ष्म विषयनकूं अनुभव करीके अपंचीकृत (जिन भूतोंका पंचीकरण हुवा नहीं) पंचमहाभूत और तिनका कार्य सूक्ष्मप्रपंच हैरण्यगर्भ शरीरके विषैं तथा स्वप्न अवस्थाके विषैं अहं ममताका अभिमान करताहुवा तैजस होवेहैं.ताही आत्माके विषैं सुषुप्तिकी कल्पना दर्शावेहै. स्थूल और सूक्ष्म इन विभागकरिके स्थानद्वयावच्छिन्न पूर्वोक्त सर्व विशेषनकूं स्थूल सूक्ष्म उपाधिद्वारा स्थानद्वयके विषैं जो संचार तिसकरिके श्रम प्राप्त होनेते स्वप्नकूं भी त्यागनेके इच्छासें 'शनैः' मंद मंद अनुक्रमसे अथवा क्रमराहित्यसे कारणात्मक अज्ञानविशिष्ट स्व-स्वरूपके विषैं स्वप्न विषयनकूं स्थापन करीके कहिये लय अथवा उपसंहार करीके अव्याकृत प्रधान ऐसा हुवा प्राज्ञ होवेहै. अब स्थानत्रयविशिष्ट ताही प्रत्यगात्माकूं " नांतः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं" इत्यादि निषेधशास्त्रजन्य

प्रमाणिक ज्ञानकी आरूढतासें कार्यकारणरूप सर्व अनर्थनकूं प्रामाणिक ज्ञानप्रभावसें बाध करीके निरुपाधिक परिपूर्ण ज्ञप्तिमात्र परमात्मास्वरूप करीके निष्पन्न प्रत्यगात्मतत्त्वकूं कहेहै, जो प्रत्यगात्मा सर्व विशेषनके त्यागसें गुणगणरहित होनेते तुरीयरूप है. प्रथम श्लोक-प्रदर्शित प्रणामका विघ्न प्रवाहकी शांतिरूप प्रयोजन सो स्थानत्रयकी कल्पनासें अतीत परम वस्तुका लाभ रूप है, ताकी प्रार्थना करेहै, जो व्याख्यातारूप और श्रोतारूप सर्वनके पुरुपार्थनमें प्रतिपक्षीभूत जो कारण त्रिविध प्रतिबंध (भूत, भावी, वर्तमान, इनका विवरण पंचदशी ध्यानदीप श्लो. ३९—से ४५ तक निरूपण कियाहै विस्तृत होनेते लिखते नहीं.) तिनके निरास-पूर्वक निरस्त भई हैं अशेप कल्पना जिस्सें और नित्य विज्ञप्तिस्वभाव ऐसा परमात्मा मोक्षदान करीके और मोक्षकारण ज्ञान प्रदान करीके रक्षण करेहै ॥ २ ॥

(१) ॐकारके निर्णय अर्थ और आत्मतत्त्वकी प्रतिपत्ति (ज्ञान) में उपायभूत प्रथम ॐकारप्रकरण. (२) जैसें रज्जुके विषैं सर्पादिविकल्पका उपशम हुये

रज्जुतत्त्वकी प्रतिपत्ति (ज्ञान) होवेहै, तैसें द्वैतप्रपंचका उपशम हुये अद्वैतकी प्रतिपत्ति होवेहै. ता द्वैतका हेतुसें मिथ्यात्व प्रतिपादनके लिये दुसरा वैतथ्यप्रकर्ण, (३) अद्वैतकूं वैतथ्य प्रसंग प्राप्त हुयें युक्ति सिद्ध जो अद्वैतत्व ताके दर्शनार्थ तृतीय अद्वैत प्रकरण, (४) अद्वैतत्व सिद्धिमें प्रतिपक्षीभूत दूसरे अवैदिक वादांतरनकूं उनकीही विरुद्ध उक्तिकरीके निराकरण अर्थ चतुर्थ अलातशांतिप्रकरण.

ॐकार जो है सो सगुण ब्रह्मका प्रतीकरूपहै, और निर्गुण ब्रह्मका द्वारभूत है. सो ॐकार चार मात्रात्मक है, ताकीं (मांडू. उ. मं ८) " पादा मात्रा मात्रापादा कहिये प्रत्येक मात्रा चार चार (विश्वादि १५)पादात्मक हैं सो अध्यात्म, अधिदैव, और अधिभत इत्यादिक त्वंपदार्थ तत्पदार्थके शोधनपूर्वक अध्यारोप तथा अपवाद दृष्टिसें व्यष्टि समष्टिका एकताका और सर्वत्र चैतन्यसत्तास्फूर्तिकी अनुस्यूतता तथा अद्वैतका अनुभव श्रुति करावेहै, तिनका प्रकारः—

(१) अकार मात्रा, सत्त्वगुणात्मिका जाग्रत् अवस्था, नेत्र स्थान, स्थूल भोग सप्तांग (१ द्युलोक मूर्धा २ सूर्यचक्षु. ३ वायु प्राण, ४ आकाश देहका मध्यभाग, ५ जलवस्ति, (मूत्रस्थान) ६ पृथ्वी पाद, ७ आहवनीय अग्नि मुख,) एकोनविंशति मुख (वागादि पंचकर्मेंद्रिय, श्रोत्रादि पंच ज्ञानेंद्रिय, प्राणादि पंचक, अंतःकरण चतुष्टय कहिये मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार.) बहिःप्रज्ञ कहिये आत्मासें अतिरिक्त जो अनात्मा सर्वदृश्य विषय तिनके विषैं जिसकी प्रज्ञा संलग्न रहेहै सो अर्थात् जाकी प्रज्ञा अविद्यासें बहिर्विषयक होवेहै सो विश्वसंज्ञिक साभास अहंकार अभिमानी भोक्ता सो अध्यात्मक और अधिदैविक, वैश्वानर तिसकूं विराट्भी कहेहैं सो समष्टि विश्वका आयतनहै. तहां पुरुषसूक्तश्रुतिः—

(ऋ. सं. अ. अ. व. मं.)

" सहस्रशीर्षा पुरुषःसहस्राक्षः सहस्रपात" व्यष्टि समष्टिकी एकतासें स्थूल भोग, तामें अन्यश्रुतिः—

(कैवल्य उ. मं. १२)

स्त्रियन्नपानादिविचित्रभोगैः
स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति ॥ १ ॥

याका अर्थः—"स एव" कहिये मायाकरीके परिमोहित आत्मा, मनकूं अनुकूल स्त्री तथा अन्नपानादि और 'आदि'शब्दार्थ मनके अनुकूल अशनाच्छादनादि विचित्र भोगनसें जाग्रदवस्था (चक्षुरादि इंद्रियकरीके बाह्य विषयनकी उपलब्धिरूप अवस्था) विषैं विषयोपभोगजन्य तृप्तिकूं प्राप्त होवेहै. कहिये सुखदुःखादिका अनुभव करेहै, ॥ १ ॥ इस रीतिसें जाग्रत्सें सुषुप्तिपर्यंत शास्त्रीय अर्थ वा लौकिक कामनाकूं करताहुवा विश्वाभिमानी भ्रमित होवे है, जैसें शकुनि पक्षी आकाशमें फिरिके भ्रमित होयके आपने आश्रय स्थानकूं प्राप्त होवेहै; इस रीतिसे जाग्रत् विषैं वृत्तियां भ्रमित होनेते अकारमात्रा उकारमें मिलिकें विश्व तैजसकें विषैं और वैश्वानर हिरण्यगर्भके विषैं लीन होवेहै. इस रीतिसें जाग्रत्का अस्तकाल और स्वप्नका

उदयकाल इन दोनों कालका जो संधि (अंतराल अवस्था) ताके विषैं दोनों उपाधिसें रहित अंतर्यामी का अनुभव होवेहै. अब—

२—उकारमात्रा रजोगुणात्मिका, स्वप्नावस्था, कंठ-स्थान, सूक्ष्म भोग, सप्तांग एकोनविंशति मुख, अंतः प्रज्ञ (बहिरिंद्रियनका उपराम हुये ते वासनामय मनोमात्र तासें अंतर्मुख जाकी प्रज्ञा सो) तैजस अभिमानी (स्थूल विषयनकरीके रहित और केवल प्रकाशस्वरूप विषयभूत जो प्रज्ञा ताके विषें विषयि-पणा करीके जो रहे है सो.) भोक्ता अध्यात्मक और अधिदैविक हिरण्यगर्भ ताकूं सूत्रात्माभी कहेहै, सो समष्टि तैजसका आयतन है तहां श्रुतिः—

(बृ. उ. २।१।२०) "यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा-व्युच्चरंति" व्यष्टि समष्टिकी एकात्मतासें सूक्ष्म भोग तामें अन्य श्रुतिः—

(कैवल्यउ. मं. १३)

स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता, स्वमायया कल्पितविश्वलोके ।

याकाअर्थः—सर्व इंद्रियोंका उपरामरूप स्वमावस्था के विषैं प्राणका धारक जीव, विविध प्रकारकी वासना-युक्त होइके स्वाज्ञान करीके कल्पित रथ, अश्व' मार्ग इत्यादि विश्वके विषैं "मैं सुखी—दुःखी हुं" इस प्रकारसें सुखदुःखनका भोक्ता होवेहै. १ ॥ इस रीतिसें स्वमावस्थाके विषैं रथ, अश्व, तथा रथ मार्ग-भी नहीं हैं, तो भी जो गिरि, नदी समुद्र आदि अनेक प्रपंच भोगमें आवेहै, सो सर्व, स्वयं ज्योति साक्षी आत्मारूप अधिष्ठानके ऊपर; उल्लिखित होवेहै जैसे सूर्यके किरणोंके ऊपर जलका उल्लेख होताहै तैसे इस वार्ताका विस्तार बृहदारण्यकके छट्टे अध्यायमें तृतीय ब्राह्मणके विषैं याज्ञवल्क्य मुनिने जनक राजा-कूं स्वमावस्थाविषैं स्वयंज्योतिपनाका अनुभव करायाहै. तहां श्रुतिः—

(बृह. उ. अ. ६।३।९)

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानं च संध्यं तृतीयꣳ स्वमस्थानं

तस्मिन् सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदं च परलोकस्थानं च अथ यथा क्रमोयं परलोकस्थाने भवति तमाक्रममाक्रम्योभयान्पाप्मन आनंदाश्च पश्यति स यत्र प्रस्वपित्यस्य लोकस्य सर्वावतो मात्रामपादाय स्वयं विहत्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपित्यत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति ॥ १ ॥

अर्थः--शंका--पूर्वमंत्रमें ऐसा कहाहै जिस स्थानके विषैं आदित्यादिक बाह्यतेजका अभाव हो ते कार्य-कारण संघातरूप पुरुष बाह्यज्योतिसें अतिरिक्त स्वरूपज्योतिकरीके गमनादिक व्यवहार करे है सो आदित्यादि ज्योतिषनके अभावविशिष्ट कोई स्थान कहींहै नहीं जिसके विषैं विविक्त स्वयं ज्योतिष उपलभ्यमान होवे, काहेते सर्वकालके विषैंही कार्यका-रणका संघात, बाह्यज्योतिकरी संबंधवाला प्रतीत होवेहै, याते विविक्त (पृथक्) स्वयंज्योतिष्ट्र रूप करीके सत्य नहीं, तहा सिद्धांती—कोई एक स्थानके-विषैं बाह्य अध्यात्मिक भूत भौतिक सूर्यादि तेजनसें संबंधरहित विविक्त स्वयंज्योतिष्ट्ररूप करीके उपलभ्य

मान होवेहै, याते पूर्वमंत्रमें कहा सर्व समीचीन है, इस आशयसें समाधान करेहै, जो आत्मा जिस कालके प्रकर्ष करीके स्वप्नका अनुभव करेहै, अर्थात् संधि-स्थानकूं प्रकाशे है, तिसका कालके विषैं सर्वावान् कहिये संसर्गमें कारणीभूत ऐसभिूत भौतिक सर्व मात्रावाला यह जागरित देहकी मात्रा(एकदेशरूप अवयव) कूं ग्रहणकरीके अर्थात् दुष्ट जन्मकी वासनाओसें वासित होईके स्वयं जागरित स्थूलदेहकूं हनन करके कहिये संबंधरहित होयके (इस स्थलकें विषैं आत्माकूं देहका हंतृत्व कहाहै, ताका यह अभिप्राय है जागरित अवस्थाके विषैं आदित्यादि देवनका जो चक्षुरादि इंद्रियनके विषैं अनुग्रह सो स्थूल देहके व्यवहार अर्थ है, और आत्मसंबंधी जो देहव्यवहार सो धर्माधर्मफलोपभोगनसें प्रेरित है,और इस देहके विषैं धर्माधर्मनके फलोपभोगका जो उपराम सो कर्मनके उपरामसें कृत है, याते कर्मकृत देह हननका आत्माके विषैं उपचारसें हंतृत्व कहा है.) ता वासनावासित आत्मा वासनामय स्वप्नदेहकूं स्वयं निर्माण करीके (या स्थलके विषैं भी कर्मकृत

निर्माणके उपचारसें आत्माकूं निर्मातृत्व जाणना) आपनी मात्रोपादानरूप दीप्ति करीके कहिये सर्व वासनात्मक अंतःकरणवृत्तिके प्रकाश करीके सो वृत्ति स्वप्नके विषें विषयभूत और सर्ववासनामय होयके प्रकाशे है, और सो वृत्ति स्वप्नके विषें स्वयंभा कहावे है, विषयी तथा विविक्तरूप तथा अलुप्तदृक् स्वभावरूप स्वरूप-ज्योति करीके पूर्वोक्त विषयभूत वासनामय वृत्तिभाकूं विषय करताहुवा प्रस्वाप करेहै, पूर्वोक्त रीतिसें जो वर्त-नताकूँही प्रस्वाप (स्वप्न) जानिये.ता स्वप्नावस्थाके विषें आत्मा स्वयं विविक्तज्योतिष (बाह्य अध्यात्मिक भूत भौतिक सूर्यादिकनसें संसर्गरहित स्वप्रकाशरूप) होवेहै.

शंकाः—इस आत्माने जाग्रत् देहकी मात्रा(वासना) का ग्रहण किया है, याते तिनके होते स्वप्नके विषें आत्मा स्वयं ज्योतिष कैसा कहावें ?

उत्तरः—या दोषकूं इस स्थलके विषें नही जाणना काहेते वासनामयत्व तो विषयभूत है, याते तिस करीके ही स्वयंज्योतिष आत्मदर्शनयोग्य है,विषय विना स्वयं-ज्योतिष आत्माका दर्शन शक्य नही जैसें सुषुप्तिकालके

विषैं कोईभी विषय न होनेते आत्मा दर्शानेकूं शक्य नहीं तैसें,जब सो वासनात्मक विषयभूत स्वयंभी उपलभ्यमान होवेहै, तिस कालके विषैं मियांनसें खड्गकी न्याई सर्व संसर्गरहित चक्षुरादि कार्यकारणसें व्यावृत्त स्वरूप अलुप्तदृक् सो आत्मज्योतिष स्वस्वरूपसें प्रकाशमान ग्राह्य होवेहै, याते सो आत्मा स्वप्नके विषैं स्वयंज्योतिष अनुभूत होवेहै यह सिद्ध हुवा॥ १ ॥ तात्पर्य यह है यद्यपि जाग्रतमें और स्वप्नमें आत्माका स्वयंज्योतिपत्व सिद्धहै,परंतु जाग्रत् विषैं सूर्य, चन्द्र, अग्नि और वाक् इन चार ज्योतिकरीके संकीर्ण है यातें जाग्रत विषैं स्वयंज्योतिपत्व अनुभूत होवे नहीं, और स्वप्नमें सूर्यादि ज्योतिषनका अभाव होनेते स्वयंज्योतिषत्व स्पष्ट अनुभूत होवेहै !

शंका:—स्वप्नके विषैं आत्मा स्वयंज्योतिष है यह कहना संभवे नहीं काहेते जागरितके विषैं जैसें, तैसेंही ग्राह्य ग्राहकादिकन के (सर्व) व्यवहार स्वप्नमें भी दृष्ट है, और चक्षुरादिकनके अनुग्राहक आदित्यादिकनके आलोक भी जाग्रत्की न्याई दृष्ट होवेहै याते

स्वप्नके विषैं स्वयंज्योतिपत्व अवधारण कैसा होवे ?

समाधानः—जाग्रत स्वप्नमें जो वैलक्षण्य है सो श्रवण कर, जाग्रत्में इंद्रिय, बुद्धि, मन, आदिकनके प्रकाशनव्यापारसें आत्मज्योतिप संकीर्ण है, और स्वप्नके विषें तो इंद्रियनका और तदनुग्राहक आदित्यादिकनके प्रकाशका भी अभाव है याते सो आत्मज्योतिपत्व केवल विविक्त है, याते वैलक्षण्य सिद्ध होवेहै.

शंकाः—जैसें जागरितके विषैं उपलभ्यमान होवे है, तैसेंही स्वप्नमें भी उपलब्ध होवेहै याते इंद्रिय तथा तदनुग्राहकनकें अभावतें कथित वैलक्षण्य कैसा घटे है ? समाधानः—तहां श्रुतिः—

(बृह. उ. अ. ५ । ३ । १० ।)

न तत्र रथा न रथयोगा न पंथानो भवंत्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते न तत्रानंदाःमुदः प्रमुदे भवंत्यथानंदान् मुदः प्रमुदः सृजते न तत्र वेशांताः पुष्करिण्यः स्रवंत्यो भवंत्यथ वेशांता पुष्करिण्यः स्रवंत्यःसृजते स हि कर्ता२

अर्थः—स्वप्नके विषैं रथादिक विषय तथा तिनकूं जोडनेयोग्य अश्वादिकभी नहीहैं, और रथ चलनेके मार्गभी नहींहैं, तथापि आत्मा रथ, अश्व, तथा तिनके मार्गकूं स्वयं उत्पन्न करेहै,

शंकाः--रथादिकनके साधनभूत काष्ठादिकनका अभाव होनेते तिनकूं किस रीतिसे पैदा करेहै ?

समाधानः—जाग्रत् लोककी वासनामात्रकूं ग्रहण करीके और स्थूलदेहका त्यागकरीके आत्मा स्वप्नलोककूं स्रजे है.वासनात्मक अंतःकरणकी वृत्ति ही स्वप्नलोककी उपलब्धिमें निमित्तभूत शुभाशुभ कर्मसें प्रेरित हुई दृश्यरूपताकरीके भासे है,यह पूर्वकहा ताकूं कैसे भूलते हो स्वप्नके विषैं करण तथा तिनके अनुग्राहक आदित्यादिकनका प्रकाश तथा तिनसें अवभास्य रथादिक विषय विद्यमान है, तथापि केवल वासनामात्र है,और सर्व कर्म प्रेरणासे उद्भूत अंतःकरणवृत्तिके विषैं दृष्ट होवेहै,सो सर्व अलुप्तदृक् ज्योतिषसे प्रकाश होवेहै, सो हि आत्मज्योतिषता स्वप्नके विषैं खड्गकी न्याई केवल विविक्त है.तथा ता स्वप्नके विषैं

जाग्रत् प्रसिद्ध सामान्य आनंद नहीं तथा मुद (पुत्रादिलाभ निमित्त हर्ष) नहीं. तथा प्रहर्ष (अतिशयित आनंद) भी नहीं तथापि तिनकूं आत्मा सृजे है, और स्वप्नके विषें वेशांत कहिये अल्पजलाशय, महा सरोवर, नदी तथा गिरि, समुद्रादिक भी नहीं है, तथापि आत्मा तिनकूं वासनामात्रसें सृजे है, आत्माके विषें जो सृष्टिका कर्तृत्व कहा सो वासनाके आश्रयभूत चित्तवृत्तिके उद्भूतपनामें निमित्तभूत कर्मरूप हेतुमें औपचारिक (विवर्तरूप) जानियें,परंतु साक्षात्कर्तृत्व नहीं,काहेते आत्माके विषें साधनोंके अभावतें क्रियाका असंभव है, और कारक विना क्रिया बने नहीं,स्वप्नमें हस्तपादादिक क्रियाकारकनका संभव नहींहै याते सो सर्व आरोपित जानिये कहिये ता स्वयं ज्योतिप अधिष्ठानके विषें पूर्वोक्त सर्व अध्यस्त अर्थात् कल्पित जानिये ॥ २ ॥ ×

× विवर्तका लक्षण.“कारणेन विषमसत्ताकोऽन्यथाभावो विवर्तः”.

अर्थः—कारणके साथ विषम है सत्ता जिसकी ऐसा जो अन्यथाभाव कहिये रूपांतरकी प्रतीति सो विवर्त. जैसे रज्जुके विषयमें भुजंग.

उपरकी न्याईं तैजस अभिमानी उकारमात्रात्मक स्वप्नावस्थामें विचित्र स्वप्नभोगनकूं भोगिके पूर्वोक्त शकुनिदृष्टांतकी न्याईं श्रमित होईके मकारमात्रामें लीन होवेहै, तैजस प्राज्ञमें मिलेहै, और हिरण्यगर्भ अव्याकृतमें मिलेहै, इस प्रकारसें स्वप्नका अस्तकाल और सुषुप्तिका उदयकाल इन दोनोकी अंतरालअवस्थामें निरुपाधिक अंतर्यामीका अनुभव होवे है, अब मकारमात्रा तमोगुणात्मिका, सुषुप्ति अवस्था, हृदय स्थानक, आनंद भोग, एक होईके कहिये जागरित और स्वप्न या दोनों स्थान करीके प्रविभक्त (पृथक्-पृथक्) ऐसा जो मनस्पंदनमात्र स्थूल सूक्ष्म द्वैतसमूह सो सर्व जैसे स्वयं विभक्तरूप, है तिनका अपरित्याग करीके हीं अपने सर्व विस्तारसे सहित होते अव्याकृतनामक कारणभावकूं प्राप्त होवेहै (कारणात्मकहोवेहै) जैसा दिनरात्रिके तमसें ग्रस्त होयाहुवा तमस्त्वनासें ही व्यवहार होवेहै, तैसा स्थूल सूक्ष्म कार्यसमूहभी कारणभावकूं प्राप्त होयके कारणशब्दकरीके ही व्यवहृत होवे है, सो अवस्थारूप उपाधिसें उपहित

चैतन्यरूप आत्माभी एकीभूत कहिये है, चेतोमुख कहिये (केनउ.२ । ३) "प्रतिबोधविदितं मतं" इस श्रुतिमें प्रसिद्ध प्रतिप्रतिबोधशब्दकरीके वाच्य जो स्वप्न औ जागरित ताकूं चेतस् कहे है, सो चेतस् प्रतिद्वारभूत होनेते प्राज्ञ चेतोमुख कहिये हैं. सुषुप्तिरूप द्वार विना स्वप्नऔरजाग्रत्की संभवही नहीं,काहेते स्वप्नतथाजाग्रत् दोनोंभी सुषुप्तिके कार्यरूप है, इस रीतिसें सुषुप्तिका अभिमानी प्राज्ञ उभयस्थानका कारण होनेते चेतोमुख या नामकूं धरे है, अथवा सुषुप्ताभिमानी प्राज्ञका स्वप्न और जाग्रत्के विषैं क्रमसे या अक्रमसें जो अवागमन ताका चैतन्यही द्वारभूतहै , काहेते चैतन्य विना कोईभी चेष्टा सिद्ध होवे नहीं इस अभिप्रायते प्राज्ञ चेतोमुख चेतोमुख कहियेहै घनप्रज्ञ कहिये जाग्रत् तथा स्वप्नात्मक मनका स्पंदरूप प्रज्ञाका जो अवस्थामें घनीभाव अर्थात् अविभक्तभाव होवेहै सो, प्राज्ञाभिमानी भोक्ता कहिये प्रज्ञप्तिमात्रही जाका असाधारणरूप अर्थात विशेषज्ञानके अभावतें सो अध्यात्मक और अधिदैव अव्याकृत ईश्वर ताकूं शबल (उपाधिवाला) ब्रह्मभी कहेहै, सो समष्टि प्राज्ञका आयतन है, तहां श्रुतिः—

(बृह०उ.६।३।१९)
न किंचित् कामं कामयते न किंचित्स्वप्नंपश्यति।
(बृह०.उ६।३।२२) "तापी अतापी भवति
विद्धोऽविद्धोभवति" ॥

अर्थ—सुषुप्ति अवस्थामें प्राज्ञभोक्ता किसी कामकी इच्छा नहीं करता तैसेही कोई स्वप्नभी 'नहीं, देखता तापयुक्त हो तोभी तापरहित होताहै और शरीरमें किसीप्रकारकी चोट लगे तोभी उसको (नहीं) जाणता व्यष्टिसमष्टिकी एकात्मकतासें आनन्द भोग तामें अन्यश्रुतिः— कैवल्य(१ । १३)

" सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोभिभूतः सुखरूपमेति "

अर्थः—सुषुप्तिकालके विषैं कहिये आनंदभोगके अवसर विषैं सर्व विशेष अज्ञानरूप स्वकारणमें लीन हुये अज्ञानकरीके आवृत ऐसा हुवा सुखरूपकूं कहिये स्वप्रकाश आनन्दात्मक स्वरूपकूं प्राप्त होवैहै, इस रीतिसे सुषुप्तिअवस्थामें आवरणयुक्त आनन्दभोगकरीके सो मकारमात्रा आवरण (अज्ञान) का भंग करीके

शुद्ध ब्रह्मका अनुभव होनेवास्ते अर्धमात्रामें लीन होई कहिये अर्धमात्रा, शुद्धसत्त्वगुणात्मिका, तुरीयावस्था, हृदयाकाशस्थानक, परमानंदभोग, अंतर्यामी भोक्ता सो अध्यात्मक,और अधिदैव, शुद्धब्रह्मस्वरूप, इस रीतिसे अध्यारोपदृष्टिसें अध्यात्म. अधिदैव, अधिभूत सर्व प्रपंचके विषें अधिष्ठानस्वरूपका अनुभव कराया, अब अपवाद दृष्टिसें "नेतिनेति" या श्रुतिके अनुसार अनुसंधान, तहां मांडूक्यश्रुतिः—

(माडूक्य उ. मं .७)

नांतःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञंनाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमाचिंत्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शांतं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यंते स आत्मा स विज्ञेयः॥१॥

अर्थः—अवस्थात्रयसें अतीत ऐसें तुरीय स्वरूपका अध्यारोपदृष्टिसें विधिमुखकरीके अनुभव होना शक्य नहीं, याते अपवाददृष्टिसें निषेधमुख करीके ताका अनुभव करावे है. "नांतःप्रज्ञमिति" या श्रुतिमें प्रथम

प्राप्त बहिःप्रज्ञ विश्वाभिमानीका त्याग करीके तैजस अभिमानी अंतःप्रज्ञका जो पहिले निषेधविषैं ग्रहण किया. ताका यह कारण है जाग्रदादि तीनों अवस्था-कूं स्वप्नता जाणनेवास्ते तहां श्रुतिः—

(ऐतरीय उ. ३ । १२)

"त्रयोऽवस्थास्त्रयः स्वप्नाः" तथा अतिवाहिक भी अंतःप्रज्ञ है, याते ताका प्रथम ग्रहण किया "न अंतःप्रज्ञं" इसकरीके स्वप्नाभिमानी तैजसका निषेध तथा "न बहिःप्रज्ञं" इसकरीके जाग्रदभिमानी विश्वका निषेध और "नोभयतःप्रज्ञं" इसकरीके जाग्रत् और स्वप्न इन दोनोकीं अंतराल अवस्थाका प्रतिषेध,—तथा "न प्रज्ञानघनं" इसकरीके सुषुप्ति अवस्थाका निषेध, और "न प्रज्ञं" इसकरीके एकही कालविषे सर्व विषयनके ज्ञातृत्वका निषेध, और "नअप्रज्ञं" इसकरीके अचैतन्य (जडता) का निषेध.

शंकाः—आत्माके विषैं प्रत्यक्षादि (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, यह षट प्रमाण) प्रमाणसें अनुभूयमान अंतःप्रज्ञत्वादिनका रज्जु

आदिके विषैं सर्पादिकनके निषेधकी न्याईं प्रतिषेध कर-नेसें ता अंतःप्रज्ञत्वादिकनका असत्त्व कैसा सिद्धहोवे ?

समाधानः--आत्मस्वरूपके विषैं अंतःप्रज्ञत्वादि धर्मोंका परस्पर व्यभिचार है, जैसें रज्ज्वादिक-नके विषैं सर्प, धारा, माला इत्यादिकनका परस्पर व्यभिचार है, और जैसा अधिष्ठानभूत रज्जुका व्यभिचार नहीं.तैसैं आत्मस्वरूकाभी व्यभिचार नहीं; याते आत्माके विषैं कल्पितअंतःप्रज्ञत्वादिकनका सर्पा-दिकनकी न्याईं निषेध घटे है.

शंकाः--ज्ञप्तिस्वरूपकी सत्यता सुषुप्तिके विषैं व्य-भिचरित होवेहै ?

समाधानः--सुषुप्तिका साधक ज्ञप्तिस्वरूप अनुभूत होवे है,याते तिस विषैं सत्यत्वका व्यभिचार घटे नहीं. तामें श्रुत्यर्थका प्रमाणः:--"विज्ञाताके विज्ञप्तिका लोप होवेनहीं, अविनाशी है, याते पूर्वोक्तरीतिसें तुरीयस्व-रूप निर्विशेष है, याते ही 'अदृष्टं' कहिये चक्षुरादि ज्ञानेंद्रियनका अविषय और अविषय होनेतेहीं अव्य-वहार्य कहिये व्यवहारका विषय नहीं, तथा 'अग्राह्य'

कहियेकर्मेंद्रियोंसें जाका ग्रहण होवेनहीं, तथा 'अल-क्षण' कहिये लिंगरहित अर्थात् अनुमानका विषयनहीं, यातेंही 'अचिंत्य' कहिये मनका अविषय अर्थात् चिंतवनमें आवेनहीं और मनका अविषय 'अव्यपदे-श्य' कहि शब्दप्रमाणकाभी अविषय, तथा 'एकात्म-प्रत्ययसारं, कहिये जाग्रदादि अनेक अवस्थाविषैं एक आत्मा है, इस प्रकारका जो अव्यभिचारी प्रत्यय तिसकरीके अनुभव करनेयोग्य, अथवा एक आत्म प्रत्यय ही (आत्माकारवृत्तिही) जो तुरीयानुभवके विषैं प्रमाणभूत है सो, "नांतःप्रज्ञं" इत्यादि पदनसों स्थानवानके धर्मनका निषेध किया, और 'प्रपंचोपशमं" कहिये जागदादि स्थानके धर्मोंसें भी रहित, यातेंही "शांतं" कहिये अविक्रिय और शिवरूप, काहेते "अद्वैतं" कहिये भेद विकल्पनासें रहित ऐसे तुरीय स्वरूपकूं "मन्यते" कहिये ज्ञानी लोक मानतेहैं, और प्रतीयमान जाग्रदादि पादत्रयसें विलक्षण होनेतें सो ही तुरीय स्वरूप आत्मा, तथा ताकाही साक्षात्कार

करनाहै, जैसें प्रतीयमान सर्प दंडादिकनसें अतिरिक्त रज्जुस्वरूपकूं जाणेहैं; तैसें "तत्त्वमसि" इत्यादि वाक्य-नतें अखंडाकार अनुभव करनां, तहां बृहदारण्यक श्रुतिः–(७ । १ । १)

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ १ ॥

अर्थः–'अदः कहिये अपरोक्ष तत्पदलक्ष्य जो ब्रह्म सो पूर्ण है कहिये आकाशकी न्याई व्यापक, निर्भेद और निरुपाधिक है, यही सोपाधिक होईके कहिये नामरूपसें स्थित और व्यवहारयुक्त होईके, "इदं" कहिये त्वं पदलक्ष्य प्रत्यगात्मस्वरूप है, सोभी पूर्णस्वरूप ही है, शंकाः–सोपाधिक प्रत्यगात्मस्वरूपकूँ पूर्णत्व कैसा घटे ? समाधानः–उपाधि परिछिन्न विशेष स्वरूपकूं पूर्णत्व कहते नहीं, किंतु निर्विशेष पारमार्थिक परमात्मस्वरूपसें पूर्णत्व कहिये है, सो विशेषस्वरूप कार्यात्मक ब्रह्म, पूर्णब्रह्मरूपकारणसें उत्पन्न होवेहै, यद्यपि कार्यरूपसें उत्पन्न होनेतेभी आपना पारमार्थिक

पूर्ण परमात्मभावकूं त्यागे नहीं. सो कार्यात्मक पूर्णब्रह्मताका पूर्णत्व ग्रहणकरीके कहिये तत्पदलक्ष्यार्थके साथ एकरसताका संपादनकरीके अर्थात् अविद्याकृत देहेंद्रियविषयादिरूपउपाधिके संसर्गजन्य अभासत्व पारिच्छिन्नत्वादिकनका वियाकरीके तिरस्कार करनेसें अनन्तर, अबाह्य, प्रज्ञानघन, एकरस ऐसा केवल ब्रह्म ही अवशिष्ट रहेहैं. ॥ १ ॥ आत्मस्वरूप दुर्विज्ञेय होनेते सिंहावलोकनन्यायकरीके आचार्योक्तिका विचार मांडुक्यप्रथमप्रकरण,

(गौडपादका. आ. प्र.श्लो. १६)

अनादिमायया सुप्तो, यदा जीवः प्रबुध्यते ।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ॥ १ ॥

अर्थः—जो असंसारी जीव सो बीजरूप ऐसें तत्त्वका अग्रहण तथा कार्यरूप अन्यथाग्रहणस्वरूप ऐसे अनादिकालसें प्रवृत्त मायारूपी दो प्रकारका जो स्वप्न तिस करीके "यह मेरा पिता, ये मेरी स्त्री, ये मेरा पुत्र, दौहित्र, पौत्र, क्षेत्र तथा पशु आदि इन सर्वनका मैं

स्वामी हूं, सुखी हूं, दुःखी हूँ, और इसने मेरा क्षय किया, और इसने वृद्धिकूं प्राप्त कराया, इस प्रकार स्वप्नोंकूं जाग्रत् तथा स्वप्नरूप स्थानद्वयविषैं देखता हुवा निद्रा करेहै, (अज्ञानके विषैं मग्न रहेहै) परंतु जिस कालविषैं वेदांतार्थतत्त्वज्ञ परम दयालु गुरुने तूं पूर्व कथित रीतिसें सुखदुःखादिहेतुफलरूप नहीं, किंतु "तत्त्वमसि" (सो ब्रह्म तूं है) इस रीतिसें बोध किया होवे तिस कालविषैं ऐसा जानैहै के, ब्रह्मस्वरूपके विषैं बाह्य तथा आंतर जन्मादि षड्भाव विकार है नहीं याते "अज" कहिये बाह्याभ्यंतर सर्व भावविकाररहित, तथा जो आनंदात्मक स्वरूपके विषैं जन्मादिकनका कारणीभूत अविद्यात्मक अज्ञानरूपी बीजरूप निद्रा विद्यमान नहीं, याते "अनिद्र" तथा तुरीयस्वरूप आत्मा स्वप्नरहित है, काहेते अन्यथा ग्रहणरूप स्वप्नका निमित्तभूत अविद्याका नाश हुवा है, और जिस हेतुसें अज, अनिद्र, अस्वप्नरूप है, तिस हेतुसें ही

अनात्मको कर्मरूपता और आत्माको
अकर्मरूपता ।

चतुर्थ प्रक्रिया । पृष्ठ ८७

माण्डुक्यश्रुति, गौडपादाचार्य्यकारिका
तथा अन्य प्रमणोंसे ब्रह्मवस्तु प्रति-
पादनकी प्रक्रिया, जाग्रत् तथा स्वप्ना-
वस्थामें आत्माका वैलक्षण्य ।

पञ्चम प्रक्रिया । पृष्ठ १३९

वेदान्त शास्त्रके ३ प्रस्थानों (श्रुति-
सूत्र-स्मृति)के प. प. भगवान् शंक-
राचार्यकृत १६ भाष्योंके नाम, श्रुति
प्रस्थानमें ईश, केन, कठ इत्यादि
क्रमसे उपनिषदोंका सार लेकर
शङ्कासमाधानपूर्वक ब्रह्मनिरूपण ।

षष्ठ प्रक्रिया । पृष्ठ २८२

व्याससूत्रों तथा शङ्करभाष्यके अर्थको
स्पष्ट करनेवाले उपक्रम उपसंहारादि
षाड्विध लिङ्गोंका स्पष्टीकरण तथा
वेदान्त सूत्र चतुष्टयीकी व्याख्या ।

पृथक् नहीं तथा आत्मस्वरूपसेंभी पृथक् नहीं, इस प्रकारसें आत्मतत्त्वज्ञ ब्राह्मण परमार्थ तत्त्वकूं जानतेहैं, याते अशिवका हेतुभूत पृथक्त्वका अभाव होनेते जो अद्वैतस्वरूप सोही शिवरूप है ॥ १ ॥

(मा. का. २।३८)

तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा दृष्ट्वा तत्त्वंतु बाह्यतः। तत्त्वी भूतस्तदाराम, स्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ॥ १ ॥

अर्थः—"मैं परब्रह्म हुं, मेरेसें अन्य किंचिन्मात्रभी नहीं" इस प्रकारसें स्मृतिका प्रवाह करनां; सोभी अमुककालके विषैं ऐसा नियम नहीं, किंतु नित्य निरंतर करनां या वार्ताकूं कहेहैं, जो कल्पित बाह्य पृथिव्यादिक तथा आध्यात्मिक देहादिक रज्जुसर्पादिकनकी न्याई, और स्वप्न मायादिकनकी न्याई असत है; किंतु अधिष्ठानस्वरूप सोही "तत्त्व" कहिये सद्रूप है; (वाचारंभणश्रुतिके प्रमाणसें) और आत्मा तो अध्यासदृष्टिसें ही बाह्याभ्यंतरसहित है, और वस्तुदृष्टिसें अजन्मा है, तथा पूर्वरहित, अपररहित, अंतररहित, बाह्यरहित आकाशकी न्याई सर्वत्र व्यापक

है, तथा सूक्ष्म, अचल, निर्गुण, निष्कल, निष्क्रिय, और सत्यरूप है, ऐसा जो आत्मा सोही तूं है, या श्रुतिके अर्थसे तात्त्विकदृष्टिकरिके स्वयं तत्त्वभूत, तथा तत्त्वस्वरूपके विषैं ही रममाण बाह्यार्थके विषैं नही, जैसें अतत्त्वदर्शी कोई पुरुष चित्तकूं आत्मरूप: मानता हुवा चित्तके चलनतें आत्माकूं चलित मानताहुवा तत्त्वसें चलित देहादिभूत आत्माकूं कदाचित् मानेहै, जो अब "मैं आत्मतत्त्वसें प्रच्युत हुवाहुं" और मन समाहित हुये कदाचित् तत्त्वभूत आत्माकूं प्रसन्न माने है के "मैं अब तत्त्वीभूत हुवा-हुं" आत्मवेत्ता पुरुष तैसा होवेनहीं; काहेतें आत्मा एकरूप है, यातें ताकेविषैं स्वरूपसें प्रच्यवनका संभवभी नही, यातें सदाकालही "मैं ब्रह्म हुं" इस प्रकारसें अप्रच्युत होवेहै, अभिप्राय यह है, जो सदाकाल स्वरूपतत्त्वसें अप्रच्युत आत्मस्वरूपका दर्शीहोवे है, (भगवद्गीता: अ० ५ श्लो- १८

"शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः

(गी. अ. १३।२७)"समं सर्वेषु भूतेषु" इत्यादि स्मृतिप्रमाणोंसें.

(गौडपा. का. ४।८१)

अजमनिद्रमस्वप्न, मनामकमरूपकम् ।
सकृद्विभातं सर्वज्ञं, नोपचारः कथंचन ॥१॥

अर्थः—जन्ममें निमित्तभूत अविद्याका अभाव होनेतें बाह्याभ्यंतरसहित आत्मस्वरूप 'अजं' कहिये अजन्मा है. अविद्यारूप निमित्तकरिके रज्जुसर्पादिकनकी न्याई जन्म होवे है यह वार्ता पूर्व कहीहै, सो अविद्या सत्यस्वरूप आत्मबोधकरिके निवारण करीहै, याते आत्मस्वरूप अजन्मा है; और इस हेतुसें ही 'अनिद्रं' कहिये अविद्यास्वरूप अनादिमायारूप निद्रासे रहित, मोहरूपी स्वापसें, अद्वैत आत्मस्वरूप करिके प्रबुद्ध हुवा है, याते 'अस्वप्नं' कहिये बाह्याभ्यंतर स्वप्नसे रहित; अबोधकृत आत्मसंबंधी जो नाम सो प्रबोध सो प्रबोधके अनंतर रज्जुसर्पकी न्याई नष्ट हुये है याते ब्रह्मस्वरूप आत्मा कोईभी नामसें कहनेकूं शक्य नहीं, तथा कोईभी रूपसें निरूपण करने शक्य नहीं याते 'अनामरूपक' कहिये नामरूपसें रहित है,

"अद्वैत" कहिये सर्वद्वैत प्रपंचसें रहित तुरीय आत्म स्वरूपकूं जातेहै ॥ १ ॥

(मा. का. २ । ३४)

नात्मभावेन नानेदं न स्वेनापि कथंचन ।
न पृथङ्नापृथक्किंचिदिति तत्त्वविदो विदुः॥१॥

अर्थः—तेहेत्रिस श्लोकमें कहां है कें अद्वैत शिवरूपहै सो किस रीतिसें ? तिसके ऊपर कहे हैं, एकका अन्यसें नानाभूत पृथक्त्व जहां देखनेमें आया होवे, तहां अशिव होवेहै परंतु अद्वैतपरमार्थ सत्यस्वरूप आत्माके विषैं प्राणादिक सर्व जगत् परमार्थ स्वरूपसें निरूपण किया तोभी वस्त्वंतर-रूप होवेनहीं, जैसें रज्जुका स्वरूप प्रकाशसे निरूपण कियें कल्पित नानाभूत सर्प, मालादि नहीं तैसे, और प्राणादि जगत् कल्पित होनेतें स्वतः सत्तासे कोईभी काल विषैं विद्यमान नहीं, जैसें रज्जुके विषैं सर्प कल्पित होनेते स्वतःसत्तावान् नहीं तैसें, तथा जैसें अश्वसें महिष पृथक विद्यमान है, तैसें प्राणादिक जगत्परस्परभी भिन्न नहीं, याते असत्पनासें परस्परभी

(वाक्यसुधा. श्लो. ३९)

प्रातिभासिकजीवोयस्तज्जगत्प्रातिभासिकम्।
वास्तवं मन्यते ऽन्यस्तु मिथ्येतिव्यावहारिकः १

अर्थः—स्वप्नमें कल्पित प्रातिभासिक नामक जो जीव सो स्वप्नकल्पित प्रातिभासिक नामवाले जगत्कूं वास्तव माने है, कहिये सत्य माने है; परंतु मिथ्या नहीं, काहेते आपनी स्थितिपर्यंत जगत्की स्थिति होवे है, तथा प्रातिभासिकसें अन्य व्यावहारिक जीव पूर्वोक्त प्रातिभासिक जगत्कूं तथा ताके द्रष्टा प्रातिभासिकजीवकूं भी मिथ्या माने है,सत्य माने नहीं, काहेते स्वप्नसें पूर्व तथा अनंतर प्रबोध विषे वें दोनूं प्रातिभासिक द्रष्टा और दृश्य तिनकी स्थिति नही ॥ १ ॥

(वाक्यसु. श्लो. ४०)

व्यावहारिकजीवोयस्तज्जगद्व्यावहारिकम् ।
सत्यं प्रत्येति मिथ्येति मन्यते पारमार्थिकः॥२॥

अर्थः—और जो व्यावहारिक जीव सो मायाकल्पित व्यावहारिक जगत्कूं सत्य माने है, मिथ्या

जाणे नहीं काहेते आपनी स्थितिपर्यंत व्यावहारिक जगत्कीभी स्थिति होवे है, और व्यावहारिक जीवसें अन्य पारमार्थिक जीव सो व्यावहारिक जगत्कूं तथा ताके द्रष्टा व्यावहारिक चिदाभासकूं मिथ्या माने है, सत्य माने नहीं, काहेते नित्य प्रलयनामक सुषुप्तिके विषैं व्यावहारिक दृश्य जगत् तथा ताका द्रष्टा व्यावहारिक जीव इन दोनोंके स्थितिका अभाव अनुभव सिद्ध है. (ऋ. सं. अ. अ. ७ व. १७) "नासदासीन्नो सदासीत्" इत्यादि श्रुतिके अनुसार व्यावहारिक दृश्य और द्रष्टा इन दोनूकूं अनादित्व होतेभी (मुं. ३। २) "गताः कलाः पंचदश दश प्रतिष्ठाः" इत्यादिश्रुत्यनुसार वर्तमान देहके राहित्यरूप विदेह कैवल्यदशाके विषै व्यावहारिक दृश्य द्रष्टाके प्रतीतिकाभी आत्यंतिक नाश निश्चित है, याते श्रुति, आचार्य और अनुभव इनोंसे स्वभावसिद्ध ब्रह्मात्मैकत्वका साक्षात्कार किये अनंतर भावि देहका राहित्यरूप जीवन्मुक्ति दशाके विषैं व्यावहारिक जीव, जगत्की कादाचित्क प्रतीति होवे है, तोभी तिन दोनोंकी सत्ताका आत्यं-

तिक नाश श्रुति, युक्ति, अनुभव इनोंसे अनुभव सिद्ध है, याते प्रातिभासिक जीव, जगत् जैसें मिथ्याभूत है, तैसेंही व्यावहारिक जीव, जगतभी मिथ्याभूत है यह तात्पर्य है ॥ २ ॥

(वाक्यसु. श्लो. ४१)

पारमार्थिकजीवस्तु ब्रह्मैक्यं पारमार्थिकम् ।
प्रत्येति वीक्षते नान्यद्वीक्ष्यते त्वनृतात्मना॥३॥

अर्थः—पारमार्थिक कहिये साक्षात्परमात्मस्वरूप जो जीव सो वर्तमान देहके अभावरूप कैवल्यकी प्राप्ति पर्यंत ब्रह्मचित् शब्दकरिके लक्ष्य और साक्षीरूप तथा स्वगत;सजातीय, विजातीय भेदरहित तथा बंध मोक्ष व्यवहारसें अतीत सत्, चित्, आनंदस्वरूप और स्वस्वरूप ब्रह्मैक्यकूं ही पारमार्थिक जाणे है, अन्य देखे नहीं. (छां. उ. ७ । २४ । १) "यत्र नान्यत्पश्यति" (बृह. उ. ४ । ४ । १४) "यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्, इत्यादि श्रुतियांके प्रमाणसें, यद्यपि प्रबल प्रारब्धवशसें स्वस्वरूपावस्थानसें चिदाभासआकार

करिके व्युत्थान प्राप्त हुयेभी कदाचित् जीव जगत् आदिकूं देखे है. तोभी मिथ्यात्वरूपसें ही देखे है, सत्यत्व करिके नहीं, यह तात्पर्य है. ॥ ३ ॥

(वाक्यसु. श्लो. ४२)

माधुर्यद्रवशैत्यानि नीरधर्मास्तरंगके ।
अनुगम्याथ तन्निष्ठे फेनेप्यनुगता यथा ॥४॥

अर्थः—आरोपितकूं अधिष्ठानसें अनन्यत्व (एकत्त्व) तथा तन्मात्रपारिशेषत्त्व दृढकरने अर्थ दृष्टांत कहेहै, जैसें माधुर्य द्रवत्व और शीतलत्व ये जलके गुणहैं, ता जलके ऊपर वायुवशसें उत्पन्न हुये जलके विवर्त हैं, याते जलनिष्ठ तिन तरंगविषैं अनुगत होईके अनन्तर तरंगके विवर्तरूप और तरंगनिष्ठ फेनके विषैंभी अनुगत होवेहै, जल, तरंग, फेन इस प्रकारसें भेद वियमान होतेभी माधुर्य, द्रव, और शैत्यतासें अतिरिक्त ताकरिके जल तरंग फेनके स्वरूपका अभाव है, याते माधुर्यादिस्वरूपहीहै, इसरीतिसें पूर्व पूर्व अधिष्ठानकाही उत्तर उत्तर विवर्त

है, याते उत्तर उत्तर कार्यका पूर्व पूर्व अधिष्ठानसें भेद नहीं.॥ ४ ॥

(वाक्यसु. श्लोक. ४३)

साक्षिस्थाः सच्चिदानंदाः संबंधाद्व्यावहारिके ।
तद्द्वारेणानुगच्छंति तथैव प्रातिभासिके ॥ ५ ॥

अर्थः—पूर्वोक्त दृष्टांतकी न्याई ब्रह्मस्वरूप साक्षीके विषैं स्थिति और स्वरूपलक्षण शब्दकरिके वाच्य ऐसे सत्त्व, चित्त्व, आनंदत्वरूप धर्म तरंगविषैं जलगुण संबंधके सदृश व्यावहारिक जीव जगत्के विषैं संबंध पायके प्रातिभासिक जीव जगत्के विषैंभी अनुवृत्त होवेहै, जैसें पूर्वोक्त दृष्टांतमें तरंगका विवर्त फेनतरंगसें अभिन्न हैं, तथा जलका विवर्त तरंग जलसें अभिन्न हैं, और सर्वानुस्यूत माधुर्यादिगुण जलसें अभिन्न हैं; तिस प्रकारसें प्रातिभासिक जगत्, जीव व्यावहारिक जगत् जीवसें अभिन्न हैं, और व्यावहारिक जगत् जीव साक्षि चैतन्यसें अभिन्न हैं; और साक्षिनिष्ठ सच्चिदानंद धर्म ब्रह्मचैतन्यसें अभिन्न है ॥५॥ पूर्वोक्त सर्व अर्थनका

उपसंहाररूप चतुर्थप्रकरणके समाप्तिमें गौड
रिका. (गौ. का. श्लो. १००)

दुर्दर्शमतिगंभीरमजं साम्यं विशारदम्
बुद्ध्वा पदमनानात्वं नमस्कुर्मो य ॥ ७

अर्थः—'दुर्दर्शं' कहिये सद्भावःस्वसें
होनेयोग्य काहेते अस्ति नास्ति इत्यादि चतुः
वर्जित है; अर्थात् दुर्निज्ञेय और इसी
'अतिगंभीर' कहिये मूढप्रज्ञ पुरुषनकूं समुद्रकी
दुःप्रवेश है. तहां प्रमाण (पंचदशी. २ । २७)

मग्नस्याब्धौ यथाक्षाणि विह्वलानि तथाऽस्य धीः
अखंडकरसंश्रुत्वा निःप्रचारा बिभेत्यतः ॥ १

तथा 'अजं' कहिये जन्मादिविकारनसें रहित, तथा 'साम्यं' कहिये सर्व वैषम्यसें रहित, तथा 'विशारदं' कहिये अत्यंत निर्मळ, तथा 'अनानात्वं' कहिये सर्व नानात्व (भेद)सें रहित, 'पदं' कहिये आनंदात्मस्वरूपकूं, 'बुद्ध्वा' कहिये यथार्थतासे जाणिके आत्मस्वरूपभूत होईके, हंता पदकूं नमस्कार करते हैं; यद्यपि परमार्थ

'इद्ध कहिये प्रदीप्त तिसकरीके प्रकाशित जो बुद्धि, अज्ञान और ताका कार्य जन्ममरणादि संसारका नाशरूप फलकूं संपादन करेहै' यही तात्पर्य है, अब ब्रह्मका तटस्थ लक्षण (स्वरूपमें जाका वस्तुतः संबंध नहीं ऐसा जो लक्षक) कहेहै यद्यपि परब्रह्म जन्मादि सर्व विक्रियासें रहित अर्थात् निर्विकार है, तथापि आपनी शक्तिरूप अनीर्वाच्य अज्ञान वैभवरूप ऐश्वर्यके योगसे आकाशादिक कार्यरूपकूं जन्मका संबंध पायके ता जगत्का निदान कहिये आदिकारण ऐसे व्यवहारकूं भजनेवाला होवेहै, (ब्रह्मकूं जगत्कारणत्व श्रुति तथा व्याससूत्रमें प्रसिद्ध है) यद्यपि ब्रह्म कूटस्थ और व्यापक होनेते गतिरहित है तथापि पूर्वोक्त अज्ञानके बलसें कार्य ब्रह्म ताकूं पायके गतिमत् होवेहै. यद्यपि सो ब्रह्म वस्तुतः समस्त नानात्वसें रहित एकरस अद्वितीय है ऐसा उपनिषद् प्रतिपादित है; तथापि जीव जगत् ईश्वर इत्यादि प्रकारसें अनादि अनिर्वाच्य अविद्याके बलसें अनेककी न्याई भासैहै, किनके दृष्टिसें

ब्रह्मकूं अनेकता भासै ? ताकूं प्रतिपादन करेहै, विविध प्रकार जो विषयधर्म तिनकं सत्य तथा समीचीन बुद्धिसें ग्रहण करनेते विवेकरहित हुये हैं अंतःकरण जिनके तिन मढनकी दृष्टिसें ब्रह्मकं अनेकत्व भासैहै; और शांतविवेकी पुरुषनकी दृष्टिसें जो ब्रह्मके विषैं एकताहै। प्रामाणिक है। मूं. प्राप्तैश्वर्ययोगादगाते

(मांडूक्य विविधविषयधर्म ...
हेतुब्रह्मयत्तन्न-

प्रज्ञावैशारवेवेधक्षुभिः
भूतान्यालोक्य मग्नः है और सर्व
समुद्रे । कारुण्यादुद्धारामृतोमें
भूतहेतोर्यस्तं पूज्याभिपूज्यं परमगुरुमसु
पातैर्नतोस्मि ॥ २ ॥

अर्थः—ग्रंथ की रचनाका प्रयोजन प्रदर्शनपूर्वक व्याख्यान किया, अब आगम शास्त्रकूं रचनेवाले परमगुरु गौडपादाचार्यजीकूं भगवान् भाष्यकार प्रणाम करतेहैं, जो गुरु इस ज्ञानरूपी अमृतकूं करुणासें प्राणिपनके उपकारअर्थ उद्धारकरतेभये, ता परमगुरुकूं

नमस्कार करूहुं, वे परमगुरु पूज्य, और अन्य सर्व गुर्वनके बीचमें अतिपूज्य होनेते पूज्यपूज्य हैं, तिन गुरुके चरणारविंद ऊपर स्वीय उत्तमांग कहिये मस्तक ताका जो वारंवार पतन कहिये नम्रीभाव तिसकरीके नमुहुं, वे आचार्य कैसें ज्ञानरूपी अमृतकूं उद्धरण करतभये ताकूं कहेहै; मेधा कहिये धारणासृष्टित जो प्रज्ञातारूपी जो मंथनदंडकारिके विलोडनकिया वेदरूपी जो समुद्र, ताके अंतःस्थित ज्ञानरूपी अमृतकूं उद्धरण करतेभये, ज्ञानरूपी अमृतका प्रसिद्ध अमृतसें अवांतरवैषम्य तिसकूं दर्शावेहै, जो भगवान्नारायण जिसने क्षीरसमुद्रमें स्थित अमृतकूं उद्धृत किया, सो देवताको अनायाससें प्राप्त हुवाथा, और इस ज्ञानरूप अमृत तो ज्ञान साधनोंके प्रयास विना देवताकोभी दुर्लभ है, श्रीआचार्यजीने जो करुणासें सो वेदरूपी समुद्रसे प्राणियनके उपकार अर्थ उद्धरण किया, सो करुणा आचार्य जीकूं किस कारणते उत्पन्न भई ? इस आकांक्षा ऊपर कहेहैंः— जो समुद्रकी न्याई दुस्तर संसार समुद्र ताकेविषै

निरंतर जो जनन कहिये अनेक देहग्रहण तारूपी जो मकर तिसकरीके अतिभयंकर ऐसे संसारसमुद्रमें मग्न कहिये डुबतेकी न्याई परवश ऐसें प्राणियनकूं देखीके आचार्यकूं करुणा प्रगट भई, तातें ज्ञानरूप अमृतका उद्धरण करीके सर्वप्राणियनकूं प्राशनकरवायके तिनका रक्षण करतेभये. ॥ २ ॥

(मांडू. भा. अंतिम श्लोकः—)

यत्प्रज्ञालोकभासा प्रतिहतिमगमत् स्वांत-मोहांधकारो मज्जोन्मज्जच्च घोरे ह्यसकृदुपज-नोदन्वति त्रासनेमे । यत्पादावाश्रितानां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्र्याह्यमोघा तत्पादौ पावनीयौ भवभयविनुदौ सर्वभावैर्नमस्ये ॥ ३ ॥

अर्थः—गुरुभक्तिको विद्याप्राप्तिके विषैं अंतरंग साधनत्वका अंगीकार करीके गुरुचरणारविंदनके विषैं प्रणाम करेहैं; तिन गुरुचरणारविंदनकें विषैं सर्वभावसें कहिये शरीर, वाक्, मन इनोंके प्रह्वीभावसें नमुहुं, गुरुचरण-पावनरूप होनेते सर्वके विषैंभी पवित्रताका संपादन करने

हरेहैं, और सो चरण आपने संबंधी भक्तजनोंके संसार-कृत दुःखनकूं कारणभूत मूलाज्ञानसहित नाशन करिके परम पुरुषार्थके विषैं परिसमापन करते हैं गुरुस्वरूपका वर्णन करेहै. मेरे अंतःकरण विषैं जो मोह ताका हेतु भूत जो अविवेक ताकारण जो अनादि अज्ञानरूप अंधकार जा गुरुकी प्रज्ञारूपी आलोकदीप्ति करिके नष्ट होवेहै ता गुरुचरणके विषैं नमस्कार, आचार्यप्रसादसें केवल अज्ञानही तुच्छ होवेहै इतनाही नहीं किंतु अज्ञान-का कार्य अनर्थ जात (समूह) कहिये संसृतिभी कार-णभूत अज्ञाननिवृत्ति अनंतर स्थितिशून्य होयके आभासमात्र होवेहै, या वार्ताकूं कहेहै, अनेकवार देव, तिर्यङादि अनेक योनिके विषैं जो जन्म (अनेक प्रकारके देहोंका ग्रहण) रूपी अत्यंत त्रास देनेवाला भयंकर समुद्र कहिये कोई समयमें पूर्वोक्त अज्ञान-कार्यरूपसें मग्न होयके अनाभिव्यक्त रहे है,ताही अज्ञान अवस्थाविशेषमें कार्यरूपसें मग्न न होयके अनर्थकारी परिवर्तनकूं प्राप्त होवेहै,इस प्रकारसें संसारसागरविषैं पारि-वर्तमान अज्ञान, स्वकार्यसंघातसहित आचार्यप्रसादसें

निवृत्त हुवाहै, आचार्यप्रसादसें मेरेंकूंही पूर्वोक्त फलकी प्राप्ति भई ऐसा नहीं, किंतु श्रीआचार्यचरणसेवातत्पर बहुरी पुरुपनकूं सो फल प्राप्त हुवाहै इस वार्ताकूं कहेहै, जो गुरुचरणारविंदका आश्रय करनेवाले और तिनकी शुश्रूपाविपें प्रीतिमान् ऐसें अनेक शिप्यनकूंभी श्रुति कहिये मनन, निदिध्यासन सहित श्रवण ज्ञान तथा इंद्रियनकी उपरतिरूप शांति तथा विनय (अनुद्धतपना) तिन सर्वकी प्राप्ति श्रेष्ठ कहिये प्रतिष्ठित और अमोघ कहिये सफल सिद्ध होवैहै, इस प्रकारसें आचार्यजीके प्रसादसें आपनेंकूं तथा अन्य बहुरी शिप्यनकूंभी परमपुरुपार्थविपें परिसमाप्तिका संभव है, यातें पुरुपार्थ कामनावाले पुरुपोंने मनोवाक्कायसें आचार्यपरिचर्या करनी अवश्य है. ॥ ३ ॥ श्लोकः—(मुक्तिकोपनिपद्)

मांडूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये ।
तथाप्यसिद्धं चेज्ज्ञानं दशोपनिपदं पठ॥१॥

चतुर्थप्रक्रिया समाप्ता ।

इति श्रीमदुदयशंकरात्मजगौरीशंकरविरचिते स्वरूपानुसंधाने चतुर्थप्रक्रिया समाप्ता ॥ ४ ॥

पञ्चमप्रक्रिया ।

वेदांतके प्रस्थानत्रय, तिनमें (१) श्रुतिप्रस्थानके १२ द्वादश भाष्य. (२) सूत्रप्रस्थानका १ भाष्य (३) स्मृतिप्रस्थानके ३ तीन भाष्य. इस रीतिसें भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजीनें प्रस्थानत्रयके ऊपर षोडश भाष्य किये हैं।

श्रुतिप्रस्थान ।

कहिये

उपनिषदनके द्वादश भाष्य १२:–

(१) ईश. (२) केन. (३) कठ. (४) मुंडक. (५) प्रश्न. (६) मांडूक्य. (७) तैत्तिरीय. (८) ऐतरेय. (९) छांदोग्य. (१० बृहदारण्यक. (११) केनका वाक्यभाष्य. (१२) उत्तर नृसिंहतापिनी.

(१) ईशावास्य उपनिषद्के अनुसार विचार.

भाष्यकारका मंगलाचरण.

"येनात्मना परेणेशा, व्यात्तं विश्वमशेषतः ।
सोहं देहद्वयोः साक्षी, वर्जितो देहतद्गुणैः ॥ १ ॥

अर्थः-जिस परमेश्वरने परमात्मतासें सर्वजगत् व्याप्त किया है, सोही परमात्मा मैं हूं; तथा स्थूल, सूक्ष्म उभयदेहका साक्षीरूप और उभयदेह तथा तिनके धर्मनसे रहितहूँ ॥ १ ॥ कितनेक कर्म जड ऐसा माने हैं, जो "ईशावास्यं" इत्यादि मंत्र कर्मके शेषभूत हैं, मंत्रत्व सामान्यसें "इषे त्वादि" मंत्रकी न्याई ता ऊपर भाष्यकार कहे हैं, ईशावास्यादि मंत्र कर्मविषें विनियुक्त नहीं, काहेते अकर्मशेष कहिये कर्मके अंगभूत नहीं ऐसे आत्माके यथार्थ स्वरूपके प्रकाशक हैं, ता आत्माके विषैं यथार्थत्व सो शुद्धत्व अपापविद्धत्व, एकत्व, नित्यत्व, अशरीरत्व, सर्वगतत्व इत्यादि उत्तरत्र कहेंगे, सो यथार्थत्व कर्मसंघातसें विरुद्ध है, यातें मंत्रका कर्मके विषैं विनियोग नहीं. सो आत्माका यथार्थ स्वरूप उत्पाद्य[1], विकार्य[2], आप्य[3], संस्कार्य[4], कर्त्ता, भोक्तारूप नहीं जिसकरिके कर्मशे-

---

१ उत्पाद्य (उत्पत्तिहोने योग्य, पुत्र, वृष्ट्यादि.) २ विकार्य. (विकारभावकूं प्राप्त होनेयोग्य, दध्यादि) ३ आप्य. (प्राप्तहोनेयोग्य स्वर्गादि) ४ संस्कार्य (प्रोक्षणादि संस्कार करने योग्य. व्रीहीआदि.)

पत्व कहना शक्य होवे, और सर्व उपनिषदनका तथा गीता मोक्षधर्म प्रमुख अध्यात्मशास्त्रनका तात्पर्य आत्माके यथार्थ स्वरूप निरूपणविषे ही उपक्रमोपसंहारादि षड्विध लिंग करिके ज्ञात होवे है; याते आत्माके विषे आविद्यकत्व, अनेकत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, अशुद्धत्व, पापविद्धत्व इत्यादि धर्मनकूं ग्रहण करिकेही लोकबुद्धि सिद्ध कर्मनका विधान कियाहै. जो पुरुष दृष्टादृष्ट स्वर्गादिफलनका अर्थी हुवा "मैं ब्राह्मण हूँ; काणत्व, कुब्जत्व, इत्यादि अनधिकारके धर्मवाला नहीं" इस रीतिसे आपनेकूं मानता है. ताका कर्मविषे अधिकारहै. इस प्रकारसें अधिकारवित् कहते हैं; याते ईशावास्यादि मंत्र आत्माका यथार्थ स्वरूप प्रकाश कारिके ताविषे स्वाभाविककर्म उपासनाका निवर्तन करते हुये शोकमोहादि संसार धर्मनके नाशमें साधनभूत जीवब्रह्मकी एकताका विज्ञानकूं उत्पादन करेहै.इस रीतिसे ब्रह्मात्मैक्यरूप विषय,प्रतिपाद्य, प्रतिपादकभावसंबंध शोकमोहादि अनर्थ निवृत्ति पूर्वक परमानन्द प्राप्तिरूप प्रयोजन, मुमुक्षु अधिकारी

इस प्रकारसे अनुबंध चतुष्टय विशिष्ट ईशादिमंत्रका संक्षेपसे व्याख्यानः—(ईशावास्य उ- मं- १)

"ईशावास्यमिद ँ सर्व्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् १"

अर्थः—नामरूप क्रियात्मक जो यत्किंचित् जगत् सो स्वात्मस्वरूप, सर्वका नियंता परमेश्वर जो परमात्मा, तत्त्वस्वरूप करिके आच्छादनकरना कहिये परमेश्वर परमात्मासे अभिन्न जो अहं, सोही यह सर्व जगत है इस रीतिसे परमार्थ सत्य स्वरूप की भावना करिके अनृत चराचरात्मक सर्वजगत् तिरोधान करना. जैसें सूर्यका प्रकाश सर्वत्र व्यापकहै, तिसमें जो त्रसरेणु भासैहै सो भ्रांतिमात्रहै, वस्तुतः प्रकाशही सत्यहै; तैसे नामरूपात्मक सर्व जगत् व्यापक आत्मप्रकाशके विषे भ्रांतिमात्रहै, परमार्थतासे तो आत्मस्वरूपही है. इस मंत्रसे वास्तव रूपसे परमात्मस्वरूपही सर्व है परंतु भ्रांतिकरिके अनीश्वर रूपसे जो ग्रहण किया सो सर्व ईश्वरही है. और सो ईश्वर मैं हूं इसरीतिसें ब्रह्मात्माके

ऐक्यका छांदोग्यमें "तत्त्वमसि" या वाक्यकी न्याईं उपदेश कियाहै इस प्रकारसें उपदेशजन्य ज्ञानमात्र करीके ज्या पुरुपकी अनृतदृष्टि निवृत्त न होवे तिसकूं विचारादि प्रयत्न करीके तात्त्विक स्वरूपका प्रकाशसे अनृतदृष्टिका तिरस्कार होवेगा इस अभिप्रायसे दृष्टांत कहेहैं जैसे जलादिकनके संबंधसे विगडे हुवे चंदन काष्ठक्लेदसे उत्पन्न जो दुर्गंध सो काष्ठके घिसनेसे उत्पन्न हुये आपके परमार्थिक सुगंध करिके तिरोहित होवेहै. तैसे आत्माके विपे अध्यस्त कर्तृत्व, भोक्तृत्वादि विशिष्ट द्वैतरूप नामरूपक्रियात्मक सर्वभी विकारवृंद परमार्थ सत्य आत्मस्वरूपकी भावनासें, त्यक्त होवेहै, इस प्रकारसें ईश्वराभिन्न आत्मभावना करिके पुत्रादि ईपणात्रय (पुत्रेपणा, दारेपणा, वित्तेषणा) के संन्यास विषेंहीं अधिकारहै, कर्मके विषैं नहीं; याते तिनका त्याग करिकेहीं हे पुरुप! स्वात्माका पालन कर,काहेते त्यक्त, अथवा मृत ऐसा पुत्र,अथवा भृत्य आत्मसंबन्धिताका अभाव होनेते स्वात्माका पालन करनेकूं समर्थ नहीं; याते निष्क्रिय आत्मस्वरूपसे जो अवस्थान तिसविषैं

त्यागकूं अनुकूलत्व होनेतें तिस त्याग करिकेही आत्माका रक्षण युक्तहै शरीरके संधारणोपयोगी कौपीन, भिक्षा अशनादिकनसें अधिकद्रव्य(पदार्थों) के परिग्रहविषैं कदाचित् राग होवे तो तिसके निरोध-विषैं प्रयत्न करनां, काहेते सो राग, स्वरूपावस्थानका विरोधिभूतहै; याते इस अभिप्रायसे नियम विधिकूं करेहै। हे पुरुष ! ईषणाका त्याग करिके तूं अपने अथवा दूसरेके धनकी आकांक्षा न कर; काहेते धन किसका होवे है ? किसीकाभी नहीं तो जाकी इच्छा किसकारणतेरखणीं, सो आत्माही सर्व है इस रीतिसें आत्मभावना करिके नामरूपात्मक सर्वभी त्याग कियाहै, यातें आत्मासें अतिरिक्त कोईभी पदार्थ नहीं तिसवास्ते मिथ्या धनविषयक आकांक्षा न करणी प्रकीर्ण श्लोक तत्त्वालोक ग्रंथेः—

" उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ॥
अर्थवादोपपत्तीच लिंगं तात्पर्यनिर्णये ॥ १ ॥

इन षड्विध लिंगनके अनुसार ईशोपनिषद्का तात्पर्य निर्णयः—या ईशावास्योपनिषद्में ईश्वररूप परमात्माकी

भावना करिके नामरूपक्रियात्मक सर्वजगत् ...
करना कहिये सर्वात्मभावकी भावना करनी ऐसा ...
क्रम करिके "सपर्यगाच्छुक्रम्" इस अष्टम मंत्रसें ...
आत्मस्वरूप स्थूल, सूक्ष्म, कारणशरीरनसें, तथा ...
पुण्यादि संबंधसें रहित शुद्ध ब्रह्मरूप है, इस रीतिसे
उपसंहार. १ तथा चतुर्थ मंत्रमें "अनेजदेकम्" कहिये
स्थिरताकी अच्युतिरूप चलनसें रहित अर्थात् सर्वदा
एकरूप, औरं पंचम मंत्रमें "तदंतरस्य सर्वस्य" कहिये
सो आत्मतत्व सर्वजगतके अन्तर्बाह्य व्यापक है, इस
रीतिसे वारंवार कथनरूप अभ्यासके दर्शनसें २ और
चतुर्थमेंहीं "नैनदेवा आप्नुवन्" कहिये इस आत्म-
तत्त्वकूं मनआदिक इंद्रिय, तथा तिनके अधिष्ठातृदेवता
प्राप्त (विपय) करनेकूं समर्थ नहीं, इस रीतिसें इतर
प्रमाणों करिके अगम्यतारूप अपूर्वताका कथनसें. ३
और सप्तममंत्रमें "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनु-
पश्यतः" कहिये आत्मैकत्वका साक्षात्कार करनेवाले
ज्ञानीपुरुपकं शोक क्या और मोह क्या ? अर्थात्

होवे नहीं; इस रीतिसे शोकमोहादि अनर्थकी निवृत्ति और परमानंदप्राप्तरूप फलके कथनसे ४ और द्वितीय मंत्रमें "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" कहिये अनात्मज्ञ पुरुषने कर्म करतेहुये जीवनेच्छा रखनी इस करिके जीवनेच्छा-वान् भेददर्शी पुरुषकं कर्म करनेका अनुवाद करिके चतुर्थ मंत्रमें "असूर्या नामते" कहिये जो आत्मघाती अर्थात् आत्माकी विस्मृतिवाला, सो अज्ञानावृत आसुरलोककूं प्राप्त होते हैं. इस प्रकारसे निन्दा करिके एकात्मदर्शनकी स्तुतिरूप अर्थवाद प्रदर्शन किया ५ और चतुर्थ मंत्रमें "तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति" कहिये सो चैतन्यस्वभाव आत्मतत्त्व होतेही अर्थात् ताकी सत्तासेही वायु सर्व प्राणियनकूं चेष्टा करावे है. इस रीतिसे उपपत्ति कहिये युक्तिप्रदर्शन करी है ६ इस प्रकारके षड्विध लिंगनसे इस उपनिषद्के सर्व मंत्रनका ऐकात्म्य कहिये जीवब्रह्मकी एकताका प्रति-पादनके विषेही तात्पर्य है तहां श्लोकः— (प्रस्ताविक)

"सत्ये मय्येव भातं चरमचरमतोन्तर्बहिश्चाहमे-
कोमत्तोन्यन्नास्ति किञ्चिज्जगदपि सवितुर्मंडले

पूरुषोहम्॥ इत्थं यस्य प्रबोधो गुरुवरकरुणा-पांगतस्तस्य तृष्णा सन्देहो मोहशोकौ भय-जननजरामृत्यवो नैव संति ॥ १ ॥"

अर्थः—सत्यस्वरूप मेरे विषेही भासमान् जगत् मेरेसे किंचितमात्रभी अन्य नहीं; और आंतरसेभी आंतर तथा बाह्य मैंही एकहूं तथा सूर्यमण्डलमें जो पुरुष सो मैंही हूं. इस प्रकारसे श्रेष्ठ गुरुके करुणायुक्त कटाक्षपूर्वक जाकूं बोध प्राप्त होवे ता पुरुषकूं तृष्णा, संदेह, मोह, शोक, भय, जन्म, जरा, मरण इत्यादि विकार रहतेही नहीं. किंतु ब्रह्मरूपही होवे है.

(२) केनोपनिषद्के अनुसार विचार-
भाष्यका मंगलाचरण.

"यच्छ्रोत्रादेरधिष्ठानं चक्षुर्वागाद्यगोचरम् ॥
स्वतोऽध्यक्षं परब्रह्म नित्यमुक्तं भवामि तत्॥१॥"

अर्थः—जो ब्रह्म श्रोत्रादिक इन्द्रियनका अधिष्ठान होतेभी तिनका अविषयहै; तथा स्वतः अध्यक्ष कहिये नियंतारूप अर्थात् सर्वका प्रवर्तक और नित्यमुक्त ऐसाहै ताही ब्रह्मसे अभिन्न प्रत्यक स्वरूप मैं हूं ॥१॥

"केनेषितम्" इत्यादि सामवेदीय तलवकार शाखाके उपनिषदका व्याख्यान करने इच्छते भगवान् श्रीभाष्यकार—अहं प्रत्ययके विषयभूत आत्माकूं संसारित्वरूप हेतुसे उपनिषद् करीके प्रतिपादन करनेयोग्य असंसारी ब्रह्मभावका असंभव है. याते ब्रह्म आत्माकी एकतारूप विषयके अभावसे यह केनोपनिषद् व्याख्यान करने योग्य नहीं ऐसी वादीकी शंका प्राप्त होते अहंकारके साक्षी आत्माके विषे संसारीपनाका ग्राहक प्रमाण कोईभी नहीं, याते प्रत्यक्स्वरूपके विषे ब्रह्मत्व प्रतिपादनमें विरोधका संभव नहीं. याते ब्रह्मात्मैक्यरूप विषयका संभवसे यह उपनिषद् व्याख्येय है ऐसी प्रतिज्ञा करेहैं:—

"केनेषितं" इत्यादि उपनिषद ब्रह्मविषयक कहना है। याते नवमाध्यायका प्रारंभ करियेहै । इस नवमाध्यायसे पूर्व अष्ट अध्यायनमें सर्वकर्म समाप्त किये,तथा समस्त कर्मनाकि आश्रयभूत प्राणोपासना तथा कर्ममें अंगभूत पांचभौतिक, साप्तभौतिक, सामविषयक उपासना कथन करीहै; अनंतर वंशान्त ग्रंथ करिके

गायत्र सामकी प्राण दृष्टिसे उपासनाभी कथन करीहै। इस प्रकारसें पूर्वोक्त कर्म तथा उपासनाका सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठान करना निष्काम मुमुक्षु पुरुषकी सत्वशुद्धिके अर्थ होवे है और उपासनारहित सकाम पुरुषको तो केवल श्रौत स्मार्त कर्मानुष्ठान करना दक्षिण मार्गकी प्राप्ति अर्थ और पुनरावृत्तिके अर्थ होवेहै; तथा स्वाभाविक अशास्त्रीय प्रवृत्तिसें पश्वादि स्थावर पर्यंत अधोगति होवेहै, तामें श्रुतिः–(छांदोग्य उपनिषद् ५। १०। ८)

"अथैतयोः पथोर्न कतरे च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयं स्थानमिति॥"

अर्थः–जो प्राणी दक्षिण तथा उत्तर इन मार्ग द्वयसे एकविषेही प्रवृत्त न होवे सो बारंवार आवृत्ति प्राप्त होनेवाला अतिक्षुद्रभूत होवेहै. बारंवार जन्ममरणरूप तृतीय स्थानकूं प्राप्त होवेहै. अन्य श्रुतिः–(तै-ब्रा-)

"प्रजा ह तिस्रोत्यायमीयुरिति"

अर्थः—अंडज, स्वेदज, उद्भिज्जरूप त्रिविधप्रजा पितृयाण तथा देवयान मार्गनकूं अतिक्रमण करिके कष्टरूप गतिकूँ प्राप्त होती भई तथा बाह्य, अनित्य और संस्कार विशेषसे जन्य साध्य फलसे तथा तिनके साधनोंसे तथा तिनके संबंधसे विरक्त ऐसा शुद्ध सत्व-वान जो निष्काम पुरुष, ताकूंहीप्रत्यगात्मा स्वरूपके विषे जिज्ञासा प्रवृत्त होवेहै. याविषे कठक श्रुतिका संवादः—

"परांचि खानि०" मुण्डकश्रुतिः—(प्रथमम-१। २। १३)

"परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेद-मायान्नास्त्यकृतः कृतेन तद्विज्ञानार्थं स गुरु-मेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनि-ष्ठम्"

इत्यादि. इस प्रकारसे जो विरक्त होवे ताकूँभी प्रत्यगात्मविषयक विज्ञान तथा श्रवण, मनन, निदि-ध्यासनका सामर्थ्य प्राप्त होवेहै, अन्यथा नहीं. इस वाक्यसे ऐसा जाणे बाह्य विषयमें विक्षिप्तचित्त अवि

रक्त पुरुषकूं आत्मजिज्ञासाही न होवे, कदाचित् हुईभी सफल होवे नहीं; जैसे शूद्रकूं याग विषै इच्छाही न होवे, कदाचित् हुई तोभी सफल नहीं तैसे, और प्रत्यगभिन्न ब्रह्मके विज्ञानसे संसारका बीजभूत और काम्यकर्म प्रवृत्तिमें हेतुभूत अज्ञान निःशेष निवृत्त होवेहै. तामें श्रुतिः (ई-उ-७)

"तत्र को मोहः कः शोकऽ एकत्वमनुपश्यतः"

(छां-उ- ७ । १ । १)

"तरति शोकमात्मवित्[1]" और (मुं-उ-२।२।८)

"भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ।
क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे[2]॥ १॥"

याते बाह्य साधनसे साध्य ऐहिक आमुष्मिक, फलनसे विरक्त ऐसे पुरुषकूंही प्रत्यगभिन्न ब्रह्मविषयक जिज्ञासा होवे इसप्रकारसे "केनेषितम्" इत्यादि श्रुति प्रतिपादन करेहै. श्रुतिमें शिष्याचार्यनके प्रश्नोत्तर रूप करिके जो कथन सो सूक्ष्म, दुर्विज्ञेय, वस्तूका सुख

---

१ (द्वितीय प्रक्रियामें अर्थ कियाहै) २ (तृतीय प्रक्रियामें अर्थ लिखाहै

(तै. उ. २।९) "यतो वाचो निवर्तंते" या श्रुतिके प्रमाणसें और 'सकृद्विभातं' कहिये सर्वदाही प्रकाशरूप है, काहेते स्वरूपका अग्रहण तथा अन्यथाग्रहण, आविर्भाव तिरोभावादिकनसें रहित है, कहिये रात्रि-रूप अग्रहण तथा दिनरूप अन्यथाग्रहण और अवि-द्यातम यह सर्व सदा अप्रभातपनामें कारणहै,उन सर्वका अभाव होनेते नित्य चैतन्य भारूप है, याते सदाही प्रकाशमान कहा सो योग्य है. याते 'सर्वज्ञं' कहिये पूर्ण 'ज्ञ' स्वरूप ब्रह्मके विषैं उपचार कहिये समाध्यादि उपाय करने योग्य नहीं, जैसें अनात्मवेत्तृ पुरुषनकूं समाधानादि उपाय करनेयोग्य है तैसें विद्वानकूं नहीं; अविद्यादशामें ही ध्यान समाध्यादि सर्व व्यवहार है विद्यादशामें तो अविद्या नहीं याते ध्यानादि कोईभी व्यवहार होवे नहीं, बाधितानुवृत्तिसें (नष्टहुयेका प्रति-भासमात्र दग्ध पटकी न्याई) समाध्यादि व्यवहारा-भास सिद्ध होवेहैं ॥ १ ॥

रक्षणकर्तृत्व न देखिके और नित्य, शिव, अचल,अभय, वस्तूप्राप्तिकी इच्छावान होइके प्रश्न करेहै. हेगुरो कौन कर्ताने स्वेच्छया प्रेरित मन स्वकीय विषयविषे प्रवृत्त होवेहै?. (इस श्रुतिके प्रथम पादमें "ईषितम्" "प्रेषितम्"इन पदद्वयसें मन आदि इंद्रियनका प्रेरकत्व प्रसिद्ध कार्यकारण संघातरूप जीवके विषेहै. अथवा कोई संघातसे अतिरिक्त स्वतंत्र नियंताविषे स्वेच्छामात्रसे प्रेरकत्वहै ? या संदेहकूं जणावना यही श्रुतिका अभिप्रायहै)

शंकाः—मनही स्वतन्त्रतासे स्वकीय विषयनके विषे स्वयं प्रवृत्त होवेहै, ऐसा प्रसिद्धहै याते संदेहके अभावसे प्रश्न असंभवितहै.

समाधानः—जो कदाचित् मन प्रवृत्ति निवृत्तिके विषे स्वतन्त्र होवे तो कोईभी पुरुषकूं अनिष्टका चिंतन होना न चाहिये; परंतु जानकेभी अनर्थके विषै संकल्प करे है; और अतिउग्र दुःखदायी कार्यके विषै निवारण कियाभी मन प्रवृत्त होवे है. याते मनकूं स्वातंत्र्य असिद्ध जानिके संशय पामिके शिष्यने

क्रियाप्रश्नभी युक्तही है. और किसने प्रेरित किया प्रथम प्राणचलन क्रियाकूं करेहैं ? (इस जगे सर्व इंद्रियनका व्यापार प्राणव्यापारपूर्वकहै या अर्थकूं धारण करिके प्रथम पद दिया है) और किसने प्रेरित शब्दरूप वाणीकूं लौकिकजन उच्चारण करेहैं ? तथा चक्षुः श्रोत्र, इंद्रियनकूं कौनसा द्योतनात्मकदेव प्रेरणां करे है ॥ १ ॥

हे शिष्य ! तैंने पूछाहै कि, मन आदि इंद्रियनका स्वस्वविषयनके विषे प्रेरक देव कौनहै ? और किस रीतिसे प्रेरणा करे है ताका उत्तर कहूंहूं. श्रुतिः—

(केन उ० खं० १ मं० २)

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः- प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवंति ॥ २ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! तैनें जो प्रेरक पूछाहै ताका वस्तुस्वरूप "श्रोत्रस्य" कहिये शब्दके श्रवणका कारण भूत और शब्दका अभिव्यंजक जो श्रोत्र इंद्रिय ताका श्रोत्ररूपहै.

शंकाः—ईदृश व्यापारवाला श्रोत्रादि इंद्रियका प्रेरकहै ऐसा उत्तर कहना चाहिये, तहां "श्रोत्रका श्रोत्र" ऐसा उत्तर देना अयुक्तहै.

समाधानः—हे शिष्य ! तैंने जो दोष कहा, सो सम्भवे नहीं; काहेते तिस वस्तुविषे व्यापारादि किंचित्भी विशेष है नहीं, जो कदाचित् श्रोत्रादि इंद्रियनके व्यापारसे अतिरिक्त व्यापारयुक्त ऐसा श्रोत्रादिकनका प्रेरक होवे जैसेः—दात्रके व्यापारसे अतिरिक्त व्यापारवाला लविता कहिये छेदक होवेहै तैसे—तब तो "श्रोत्रस्य श्रोत्रम्" ऐसा उत्तर अघटित होवे. परंतु तैसा है नहीं; काहेते श्रोत्रादिकनका प्रेरक लविताकी न्याई स्वव्यापारयुक्त नहीं. किन्तु संघातरूप श्रोत्रादिकनका जो श्रवण, आलोचन, संकल्प, अध्यवसायादिरूप फलपर्यन्त व्यापारतारूप लिंग करिके केवल गम्यमान होवै है; किस रीतिसे श्रोत्रादिसंघात जिसके प्रयोजन अर्थ होवे है; सो प्रेरक तिस संघातसे अतिरिक्त असंहत है; जैसे जिसके प्रयोजन अर्थ गृहादि संघात होवे है. सो देवदत्त ता संघातसे पृथक् होवे है.

और संघातरूप श्रोत्रादि पदार्थ है, याते ताका प्रयोक्ता कोईभी गम्यमान होवे है, तातें जो उत्तर कहा सो युक्तही है. तब "श्रोत्रस्य श्रोत्रम्" या उत्तरका अभिप्राय क्या है? श्रोत्रकूं अन्य श्रोत्रकी आवश्यकता नहीं—जैसे, प्रकाशकूं प्रकाशांतरकी अपेक्षा नहीं; तैसे, हे शिष्य! "श्रोत्रस्य श्रोत्रम्" या उत्तरका अभिप्राय यहहै. श्रोत्रेंद्रियमें स्वविषय प्रकाशन सामर्थ्य देखनेमें आवे है. सो विषय प्रकाशका सामर्थ्य जड श्रोत्र इंद्रियके विषे स्वप्रकाश, नित्य, असंहत, सर्वांतर चैतन्य वस्तुसेही होवे है, अन्यथा नहीं यह भावार्थ है तामें श्रुतिप्रमाणः—

(बृ. उ. ६। ३। ६)

"आत्मनैवायं ज्योतिषास्ते तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" "येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः" स्मृतिः—
(भ.गी. १५। १२)

"यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्"
(भ. गी. १३। ३३) "क्षेत्रं क्षेत्री तथा

कृत्स्नं प्रकाशयति भारत" (क. उ. २ । २ । १३) " नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्"

विद्वान्कूंही स्वबुद्धिसे गम्य सर्वसे अंतरतम, कूटस्थ, अजर, अमर अभय, अज, और श्रोत्रादिकनकाभी श्रोत्रादिरूप ऐसी कोई एक स्वप्रकाश वस्तु है. जिससें श्रोत्रादिकनकूं स्वविषय प्रकाश सामर्थ्य प्राप्त होवेहै. ईदृश उत्तर करिके सर्वजन प्रसिद्ध जो श्रोत्रादिगत आत्मचैतन्य ताकी प्रसिद्धि सो निवर्तन करी; तथा जो वस्तुस्वरूप "मनसो मनः" कहिये जो आत्मचैतन्यसें प्रकाशित हुवाही मन संकल्प अध्यवसायादि व्यापार विषे समर्थ होवेहै, तथा "यद्वाचो ह वाचं" कहिये जो आत्मचैतन्यसें प्रकाशित हुवाही वाक् इंद्रिय स्वविषयविषे प्रवृत्त होवेहै; तथा "प्राणस्य प्राणः" कहिये जिस आत्माके अधिष्ठानतासेही प्राणमें प्राणन सामर्थ्य होवेहै; तहां श्रुतिः—(तै उ. २ । ७)

" को ह्येवान्यात् कःप्राण्यात् यदेष आकाश आनंदो न स्यात्" (क. उ. २ । २ । ३)

"ऊर्द्ध प्राणमुन्नमयत्यपानं प्रत्यगस्याति" तथा 'चक्षुषश्चक्षुः'

चक्षुरिंद्रियमें जो रूपका ग्रहण सामर्थ्य, सो अधिष्ठानरूप आत्मचैतन्यसेही होवेहै. ऊपरकी श्रुतिका तात्पर्य यह है:— सर्व करण वर्गकी जिस अधिष्ठानके सत्तास्फूर्त्तिसे प्रवृत्ति होवेहै, सो प्रत्यक् वस्तु ब्रह्मरूप हैइस रीतिसे प्रत्यगभिन्न ब्रह्मस्वरूपकूं ज्याणिके "धीराः" कहिये धीमान् पुरुष, श्रोत्रादिकनके विषे अविद्याकल्पित आत्मभावका त्याग करिके "प्रेत्यास्माल्लोकात" कहिये पुत्र, मित्र, कलत्रादिकनके विषे अहं ममताका त्यागसे सर्व एषणा रहित होइके अमृत होवेहै, कहिये अमरणधर्मा होवेहै. तहां श्रुतिः— (कै. उ. १ । २) "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः" (क. २ । १ । १) "परांचि खानि० आवृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्" (क. उ. २ । ३ । १४) "यदा सर्वे प्रमुच्यंते० अत्र ब्रह्म सश्नुमते"

"केनेषितं" या प्रथम मंत्र करिके मन आदिक इंद्रियनका स्वतंत्र प्रेरक कौन है ? ऐसे शिष्य प्रश्नकूं

उत्तररूप द्वितीय मंत्रसे "श्रोत्रस्य श्रोत्रम्" इस करिके श्रोत्रादि इंद्रियनकाभी श्रोत्रादिरूप कहिये संनिधानसेही स्वसत्तास्फूर्तिकूं देइके तिनका प्रवर्तक जो सर्वांतर जो प्रत्यगात्मस्वरूप सोहि ब्रह्महै. इस रीतिसे ब्रह्मात्मैकत्वका उपक्रम करिके द्वितीय खंडके पंचम मंत्रमें "भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः" ।

अर्थः—स्थावरजंगमात्मक सर्व प्राणियनके विषे आंतर साक्षी स्वरूपसे स्थित जो प्रत्यक् स्वरूप होवे सोही ब्रह्म. इस रीतिसे उपसंहारसे १ तथा प्रथम खंडका चतुर्थ मंत्रः--"यद्वाचानभ्युदितम्" पंचम मंत्र "यन्मनसा न मनुते" मंत्र ६ "यच्चक्षुषा न पश्यति" मंत्र ७ "यच्छ्रोत्रेण न शृणोति" मंत्र ८ "यत्प्राणेन न प्राणिति"

समुदायका अर्थः—जो प्रत्यक् वस्तु वागादिइंद्रियकरिके कथनादिक स्व स्वव्यापारका विषय होवे नहीं; और जिस करिके इंद्रिय प्रकाशमान होवेहैं, ताप्रत्यक् स्वरूपकंही ब्रह्म. तूं जाण, लोकमें जो सोपाधिक

तथा अनात्मभूत ईश्वरादिकनका उपासन करेहैं सो ब्रह्म नहीं, इस रीतिसे वारंवार कथनरूप अभ्याससे २ तथा प्रथम खण्डके तृतीय मन्त्रमें:–

"अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि"

अर्थः–जो प्रत्यगभिन्न ब्रह्म व्याकृतसे और अव्याकृतसे अन्यहै इस रीतिसे प्रत्यक्षादि प्रमाण करिके अगम्यत्वरूप अपूर्वताका कथनसे ॥ ३ ॥ तथा प्रथम खण्डके द्वितीय मंत्रमें:–"अतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्मा-ल्लोकादमृता भवन्ति"

अर्थः–श्रोत्रादि अनात्म वर्गके विषे अविद्याकृत अनर्थदायक आत्मभावका परित्याग करिके तिनका अधिष्ठानभत प्रत्यग्वस्तुसे अभिन्न ब्रह्मकूं ज्याणे, सो अमृतभावकं प्राप्त होवे है इस रीतिसे फलका कथन करनेसे ॥ ४ ॥ तथा तृतीय खण्डमें "ब्रह्म ह देवेभ्यः" इत्यादि द्वादश मंत्रनसे यक्षाख्यायिकाका वर्णन करिके ब्रह्मात्मैकत्वकी स्तुतिरूप अर्थवादका कथन करनेसे ॥ ५ ॥ तथा द्वितीयखण्डके चतुर्थ मंत्रमें "प्रतिबोध

विदितं मतम्" अर्थः—जो प्रत्यग्ब्रह्मबुद्धिके प्रत्ययन विषेही तिनका प्रकाशक और तिनसे अतिरिक्त परम-काष्ठारूप जाणनेमें आवे है. इस रीतिसे उपपत्तिके कथनसे ॥ ६ ॥ इन षड्विध लिंगसे तथा चतुर्थखंडमें मंदाधिकारिनकूं अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा सम्यग्बोधके अर्थ तपादिक साधनोंका तथा तृतीय खण्डमें आध्यात्मादि उपासनाका विधान किया है. याते, ऊपर कथित रीतिसे केनोपनिषद्के सर्व मंत्रनका, ब्रह्मात्मैकत्व प्रतिपादनमेंही तात्पर्य है तहां श्लोकः—

"स्वांतप्राणाक्षिवाणीप्रभृति च विषयाभासकं यस्य योगाद्यन्न प्राप्नोति चैनद्विदितमविदितं यद्भवेन्नात्मरूपम् ॥ इन्द्राद्या देवमुख्या अपि किल न विदुर्यस्य शक्तिं निगूढां तद्बुद्धं येन सोसौ भवति नरवरोनन्तसौख्यप्रतिष्ठः ॥ १ ॥"

अर्थः—मन, प्राण, चक्षु, वाक् इत्यादि इंद्रियकदंब जाकी सत्तास्फूर्ति बलसे विषयप्रकाशक होवे हैं; तथा मन आदि जाकूं विषय करने शक्त नहीं. तथा जो तत्त्व विदित कहिये जाग्रत स्वप्नऔर अविदितसे कहिये

नामरूपात्मक व्याकृत तथा अव्याकृतसे अन्यहै कहिये कूटस्थ साक्षी है; और इंद्रादि देवताभी जाकी निगूढ चिच्छक्ति जाणते नहीं; सो प्रत्यगभिन्न ब्रह्मत्व, जिसने साक्षातकृत किया होवे, सो पुरुष ब्रह्मरूप होई अपरिछिन्न सुखके विषे प्रतिष्ठा प्राप्त होवहै ॥ १ ॥

३ कठोपनिषद्के अनुसार विचार।

मंगलाचरण.

"ॐधर्माधर्माद्यसंसृष्टं कार्यकारणवर्जितम् ॥
कालादिभिरविच्छिन्नं ब्रह्म यत्तन्नमाम्यहम्॥२॥"

अर्थः—जो ब्रह्म पुण्यपापादि संबंधसे रहित है; तथा कार्यकारणसे कहिये अविद्या और तत्कार्यप्रपंच तिनसे रहित है. तथा काल, देश, और वस्तु इन तीनोंसे कृत परिच्छेद करिके रहितहै तिसकूं मैं नमूं हूं. कहिये अभेद रूपसे अनुसंधान करूंहूं. कठोपनिषदका व्याख्यान करणेच्छु श्रीभाष्यकार प्रथम "उपनिषद्" शब्दकी व्याख्या करे हैं. सद्धातुके शैथिल्य, गति अवसादन कहिये नाश ये तिन अर्थहैं;

ता धातुकूं "उप+नि" या उपसर्गद्वयकूं जोडनेसे और क्विप् प्रत्यय लगानेसे "उपनिषद्" यह शब्द ब्रह्मविद्याका वाचक सिद्ध होवेहै. किस रीतिसे "उप-निषदतीति उपनिषद्" कहिये दृष्ट श्रुत विषयनसे विरक्त होइके आत्मवस्तुका आश्रयण करि परिशीलन करनेहारे मुमुक्षुकी संसार बीजभूत अविद्या तथा कामादिक अनर्थनकूं नाश करे सो ब्रह्मविद्या उपनिषद् शब्द करिके वाच्य होवेहै. ताहां श्रुतिः–(क. उ. १। ३।१५)

"निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते"

इति; अथवा वैराग्यादि साधनसंपन्न मुमुक्षुकूंब्रह्मैक्यताकूं प्राप्त करनेहारी ब्रह्मविद्या उपनिषदकरिके वाच्य होवे है तहां श्रुतिः–(. उ. २ । ३ ।१८)

"ब्रह्मप्राप्तो विरजोभूद्विमृत्युरिति"

अथवा भरादि लोकनसे आदि कहिये प्रथमजन्य जो ब्रह्म तासे जन्य जो अग्नि, तद्विषयक जो विद्या सो स्वर्गादि फलप्राप्तिमें हेतुहोने ते,द्वितीयवर करिके प्रार्थना करी; सोभी लोकांतरके विषे प्रवृत्त होनेवाले पुरुषका

गर्भवास,जन्म, जरा इत्यादि उपद्रवनकूं शिथिल करने वाली होनेतें उपनिषद् कहिये है. तहां श्रुतिः—(क उ.१।१।१३)

"स्वर्गलोका अमृतत्त्वं भजंते"

इति ऊपर कथित रीतिसें उपनिषद्शब्द करिके वाच्य ब्रह्मविद्या और अग्निविद्या है यह वार्ता सिद्ध हुई. ग्रंथके विषे जो उपनिषद्शब्दकी प्रवृत्ति सो तो "आयुर्घृतं" (आयुष्य जनक जो घृत तामें आयुःशब्दकी जैसी प्रवृत्ति होवेहै तद्वत्) इसकी न्याई औपचारिक जाणणी. इस रीतिसे उपनिषदका निर्वचनकाही ब्रह्मविद्याका वैराग्यादि साधनसंपन्न अधिकारी तथा प्रत्यगभिन्न ब्रह्मरूप विषयका तथा संसाररूप अनर्थकी अत्यन्तनिवृत्ति और निरतिशय सुखप्राप्तिरूप प्रयोजन तथा साध्यसाधन भावसंबंध यह अनुबंध चतुष्टय सूचन किया. या रीतिसे अनुबंध चतुष्टयविशिष्ट ब्रह्मविद्याका करतलामलकवत् साक्षात्कार करावनेवाली कठोपनिषदका यथामति व्याख्यान करियेहैं. तहां प्रथम ब्रह्मविद्याकीस्तुति अर्थ आख्यायिका कहेहैं:—"वाजश्रवसे कहिये

उद्दालक ऋषिने विश्वजित यज्ञके विषे ब्राह्मणोंकूं दक्षिणामें जीर्ण, पयरहित, तृण खानेकूंभी असमर्थ ऐसी गय्यां दीथीं" तब वाजश्रवसका पुत्र नचिकेताने स्वपिताकूँ अधोगति प्राप्त होवेगी ऐसा जानिके तिसकूं यज्ञकी संपूर्ण फलप्राप्तिके अर्थ कहा केः—

"हे पिता ! तुम मेरेकूं किसको देगे ?" तब पिताने अनादर किया, तोभी यह रीतिसे बारंबार पुत्रने कहा तब पिताने कोप करिके कहाः—"हे पुत्र ! तेरेकूं मैंनें यमकूं दिया." तब नचिकेता स्वपिताका वचन सत्य करनेवास्ते यमराजाके तहां गया और सो यम अन्य स्थलके विषे गया था याते तहां तीनदिवस पर्यंत रहा. अनंतर यम आयके ताका विधिपूर्वक आतिथ्य करिके कहता भया—हे नचिकेता ! तूं तीनदिनपर्यंत ह्यांपर स्थितहै. याते तीन वरकूं याचनाकर "तब नचिकेताने पिताकूं आपने संबंधी क्लेशनिवृत्तिपूर्वक मेरे पीछे गमनसे "यहि मेरा पुत्रहै" ऐसी प्रतीति रहे. इस रीतिसे प्रथमवर मांग लिया.

तादइके फेरी यमनेकहाः—"द्वितीय वरकूं मांग" तब तिसने अग्निविद्याकूं मांगा तिसे प्रसन्न होईके सोभी दिया. ता अनन्तर अग्निविद्या कहिये विराटकी उपासना जाणने अनन्तर पुत्र राज्यादि सर्व विषयनसे वैराग्य दर्शायके नचिकेताने यमराजाप्रति प्रत्यक् ब्रह्म विषयक तृतीयप्रश्न किया तहां श्रुतिः—(क. उ. वल्ली १ मंत्र २०)

"येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नेयमस्तीति चैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वया ऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ १ ॥ "

अर्थः—यह देह मृत हुये अनंतर शरीरेंद्रियादिकसें अतिरिक्त और अन्य देहके संबंधकूं प्राप्त होनेवाला-काही आत्मा है ऐसा कितनेक कहतेहैं. तथा नहीं कहिये देह मरणके अनंतर कोई नहीं ऐसाभी कहते हैं. याते ताका निर्णय यथार्थ रीतिसे कहो. काहेते परमपुरुषार्थ आत्मज्ञानके आधीनहै. (इतनी वार्ता प्रथम वल्लीमें है) द्वितीय वल्लीमें यमराजानें विद्या

अविद्यारूप श्रेयप्रेयका कथन किया तहा श्रुतिः--(कठ० २ वल्ली मं० १)

"अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुष ँ सिनीतः। तयोः श्रेयो आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥ १ ॥"

अर्थः—श्रेय पृथक्है, और प्रेयभी पृथक्है. सो दोनूं आपने कर्तव्यतासे पुरुषकूं बांधेहैं, कहिये जबतक आपनेमें अकर्ता अभोक्तापनाकादृढनिश्चय हुवा नहीं, तबतक इन दोनोंके बीचमें केवल श्रेयका ग्रहण करनेहारे पुरुषकूं शुभ कहिये निश्रेयस होवैहै. और केवलप्रेमकूं ग्रहण करनेहारा पुरुष परमपुरुषार्थसें भ्रष्ट हुवेहै. ॥ १ ॥

इस रीतिसे प्रेयसे विरक्त होनेसे शिष्यकी प्रशंसा करिके यमने आत्मस्वरूपके उपदेशका उपक्रम किया तहां श्रुतिः—(कठ २ वल्ली मं १२)

"तन्दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितङ्गह्वरेष्ठम्पुराणम्। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥ २ ॥

अर्थः--हेशिष्य,तैंने पूछा जो आत्मा, सो "दुर्दर्श" कहिये अतिसूक्ष्म होनेते महान् प्रयत्न करिके जाणनेकूं शक्यहै; तथा "गूढ"है.काहेते 'अनुप्रविष्ट' कहिये मायिकविषय विकारनके विज्ञानकरिके आच्छादितहै. और "गुहाहित" कहिये बुद्धिमें स्थितहै.तहांही ताकी उपलब्धि होवेहै. और गह्वरेष्ट कहिये महाविषम अनर्थरूप संकटके विषे स्थितहै.तथा 'पुराण' कहिये पूर्वसेही नवा ही नवा है ता आत्माकूं कोई धीरपुरुष "अध्यात्मयोगाधिगमेन" कहिये चित्तकूं विषयनसें उपराम करिके आत्माके विषेही जो समाधानरूप योग, ता करिके 'मत्वा' कहिये निश्चय करीके हर्षशोकका त्याग करेहै. काहेते आत्माके विषे उत्कर्ष, अपकर्षका अभावहै. तृतीय वल्लीमें प्रथम फलसहित विद्या अविद्याका कथन मात्र किया ताकेही निर्णय अर्थ रथरूपककी कल्पना करिके स्वरूपज्ञानकी सुगमता वर्णन करीहै तहां श्रुतिः--(१-३-३)

"आत्मान ँ रथिनं विद्धि शरीर ँ रथमेव

तु । बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥" इत्यादि.

अर्थः—कर्मफलका भोक्ता जीवकूं तूं रथी कहिये रथस्वामी जाण, और शरीरकूं रथरूप करिके जाण, तथा निश्चयात्मक बुद्धिकूं सारथीरूपसें जाण, और मनकूं प्रग्रह कहियेरस्सीरूप जाण, तथाइंद्रियनकूंअश्वरूप जाण; तथा शब्दादि विषयनकूं मार्गरूप करिके जान. तात्पर्य यह है के, विवेक विशिष्ट बुद्धि है, सारथी जाका और निग्रहीत मन है रस्सी जाका ऐसा जो पुरुष सो इस संसारमार्गका पाररूप, और गंतव्य ऐसे विष्णुके (व्यापकब्रह्मके) पदकूं कहिये स्वरूपकूं प्राप्त होवे है. चतुर्थवल्लीमें आत्मज्ञानके प्रतिबंधकका वर्णन कियाहै. काहेते प्रतिबंध जानेही तिनकी निवृत्तिके अर्थ प्रयत्न करना शक्य होवे है. तहां श्रुति (कठउ. व. ४ । १) "परांचि खानि० १" (याश्रुतिका अर्थ द्वितीय प्रक्रियामें कथन कियाहै)

(कठवल्ली ४ मं. २)

"पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यंति

वितस्य पाशम् । अथ धीराऽअमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥"

अर्थः–प्रथम "परांचि खानि०" इस श्रुतिमें कथित रीतिसे जो पराक्रूप बाह्य देहादिक दर्शनरूप अविद्या सो आत्मदर्शनके प्रतिबंधमें कारणभूत है इस अविद्या तथा तिस करिके दृष्ट अदृष्ट भोगनके विषे जो तृष्णा ता दोनूंसे प्रतिबद्ध हुयाहै आत्मदर्शन जिनका, ऐसे पराग्दर्शी अल्पबुद्धि पुरुष बाह्य विषयनके विषे दौडते हैं. तिसते सो सर्वत्रव्याप्त अविद्या काम कर्मका समुदायरूप मृत्युके पाशमें बद्ध रहे हैं. कहिये देहेंद्रियादिकनका संयोग वियोगरूप जन्म मरण जरारोगादि अनर्थसमूहकूं प्राप्त होवेहै. याते जो विवेकी पुरुष सो नित्य प्रत्यग्ब्रह्मस्वरूपसें अवस्थानरूप अमृतत्वकूं जानिके अनित्य सांसारिक पदार्थनकी अर्थना करते नहीं; काहेते, वे प्रत्यगात्मदर्शनके विषे प्रतिकूल हैं अर्थात् पुत्रादि एषणात्रयसें रहित होते प्रत्यक्प्रवणनिष्ठ होवे हैं.

नामरूपात्मक व्याकृत तथा अव्याकृतसे अन्यहै कहिये कूटस्थ साक्षी है; और इंद्रादि देवताभी जाकी निगूढ चिच्छक्ति जाणते नहीं; सो प्रत्यगभिन्न ब्रह्मत्व, जिसने साक्षातकृत किया होवे, सो पुरुष ब्रह्मरूप होई अपरिच्छिन्न सुखके विषे प्रतिष्ठा प्राप्त होवेहै ॥ १ ॥

२ कठोपनिषद्के अनुसार विचार।

मंगलाचरण.

"ॐधर्माधर्माद्यसंसृष्टं कार्यकारणवर्जितम् ॥
कालादिभिरविच्छिन्नं ब्रह्म यत्तन्नमाम्यहम्॥२॥"

अर्थः—जो ब्रह्म पुण्यपापादि संबंधसे रहित है; तथा कार्यकारणसे कहिये अविद्या और तत्कार्यप्रपंच तिनसे रहित है. तथा काल, देश, और वस्तु इन तीनोंसे कृत परिच्छेद करिके रहितहै तिसकूं मैं नमूं हूं. कहिये अभेद रूपसे अनुसंधान करूंहूं. कठोपनिषदका व्याख्यान करणेच्छु श्रीभाष्यकार प्रथम "उपनिषद्" शब्दकी व्याख्या करे हैं. सद्धातुके शैथिल्य, गति अवसादन कहिये नाश ये तिन अर्थहैं;

कर्मबन्धनसे विमुक्त होवे है. और विमुक्त होइके मुक्त होवे है. अर्थात् पुनः शरीर ग्रहण करे नहीं.

षष्ठ वल्लीमें जैसे लोकमें शाल्मल्यादि वृक्षके तूलावधारणसे मूलका अवधारण होवे है. तैसे संसाररूप कार्य वृक्षके अवधारणासें मूलभूत ब्रह्मका अवधारण कराया है. तहां श्रुतिः—

(कठ. वल्ली ६ मंत्र १) (२ । ३ । १)

"ऊर्ध्वमूलोऽवाक्छाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥

अर्थः--"ऊर्ध्वमूलः" कहिये ऊर्ध्व है विष्णुका परमपदरूप मूल जाका, और "अवाक्छाखः" कहिये स्वर्ग,-नरक तिर्यक् प्रेत इत्यादि रूप नीचीहै शाखा जाकी ऐसा, तथा "सनातन" कहिये अनादि चिरकालसें प्रवृत्त हुवा संसाररूप अश्वत्थ वृक्षका मूल सोही शुद्ध और ब्रह्मरूप और सोही अमृतरूपहै;काहेते वाचारंभण

श्रुति करिके ब्रह्मातिरिक्त सर्वकूं मिथ्यात्व सिद्ध कहाहै; ता परमार्थ सत्य ब्रह्मस्वरूपकूंही गंधर्वनगर मरीचि जलसे तुल्य और परमार्थ दर्शनके अभावसे गम्यमान सर्व लोककी उत्पत्ति, स्थिति, लयके विषे आश्रय करिके स्थित है. ता ब्रह्मकूं कोईभी विकार अतिक्रमण करनेकेलिये समर्थ नहीं; सो यह कहिये जा ब्रह्म रूप मूलसे जगद्रूप वृक्ष उत्पन्न भया सो ब्रह्म;श्रुतिः—

(कठवल्ली ६ म. १४) (२ । ३ । १४)

"यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥ १॥"

अर्थः—जो परमार्थदर्शी पुरुषके जा कालकेविषे बुद्धिस्थ सर्व काम कामयितव्य कहिये इच्छा विषयका अभाव होनेते विशीर्ण कहिये गलित होंय, तिस काल विषे प्रबोधसे पूर्व मरण धर्म ऐसा सो पुरुष प्रबोधसे उत्तर अविद्या, काम, कर्मरूप, मृत्युका अभाव होनेते अमृत कहिये अमरणधर्मा होवेहैं; और इसी जन्म विषे सर्व बंधनके उपशमपूर्वक ब्रह्मकूं प्राप्त अर्थात् ब्रह्मीभूत होवेहै.

ऊपर कथित रीतिसे कठवल्लीके सर्वमंत्रनका ब्रह्मात्मैक्य प्रतिपादनके विषेही तात्पर्यहै; तहां श्लोकः—

"सूक्ष्मात्सूक्ष्मो महीयान्महत उत धिया साधनैर्यो न लभ्यो बुद्धिस्थो योऽशरीरो रविविधुदहना यस्य भासा विभांति । षड्भिर्भावैः स्वभावै रहित उपसदास्तीति रूपेण वेद्यस्तं साक्षात्कृत्य धीरो गुरुवचनबलाज्जायते नित्यशान्तः ॥ १ ॥"

अर्थः—जो प्रत्यगात्मा सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर महत्‌से महत्तरहै; तथा जो बुद्धिमें अंतर्यामी रूपसे स्थितभी बुद्धिसे ग्राह्य होवे नहीं; तथा विवेकादि साधनचतुष्टय तथा श्रवणादिकनके अभावते अलभ्यहै तथा जो त्रिविध शरीरसें रहितहै; तथा सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आदि तेजस्वी जाकी प्रभा करिकेही भासमान होवेहैं; तथा जो जन्मादि षड्भाव विकारसे रहितहै; तथा जो उपनिषद वाक्यसेंही अस्ति कहिये सन्मात्ररूप करिकेही वेद्य है. ता प्रत्यगभिन्न ब्रह्मका गुरुवचनसें साक्षात्कार करिके धीरपुरुष नित्य, शांत, ब्रह्मस्वरूप होवेहै. ॥ १ ॥

(४) मुण्डकोपनिषदके अनुसार विचार.

मंगलाचरण.

"ॐयदक्षरं परं ब्रह्म विद्यागम्यमितीरितम्।
यस्मिञ्ज्ञाते भवेज्ज्ञातं सर्व तस्यामसंशयम् १"

अर्थः—जो अक्षररूप परब्रह्मविद्या करिके गम्यमान होवे ऐसा महत् पुरुषोंने कहाहै. और जो ब्रह्मस्वरूप जानिके सर्व ज्ञान होवेहै. सोही ब्रह्ममेंहूं यामें संशय नहीं॥ १॥

इस मुंडकोपनिषदमें विद्यासंप्रदाय प्रवर्तकनकी परंपराका जो कथन किया सो ब्रह्मविद्याकी स्तुतिसे अधिकारीपुरुषनके प्ररोचनार्थ है के जिस करके ताविषे अधिकारी प्रवृत्त होवे;यह ब्रह्मविद्याका प्रयोजनके साथ साध्य साधनभाव संबंध (२-२-८) "भिद्यते हृदय-ग्रंथिः" इस स्थलकेविषे कहेंगे; और ऋग्वेदादिरूप अपरविद्याका जो कथन किया, सो विधिनिषेधात्मक अपरविद्या संसारकारणभूत अविद्यादि दोषनकी निवृत्ति करने शक्त नहीं. ऐसा जणावने अर्थहै; तथा परम-पदकी प्राप्तिमेंसाधनभूत ब्रह्मविद्या इतर सर्वसाधनसाध्य

विषय वैराग्यपूर्वक गुरुप्रसादसें प्राप्त होवेहै; या प्रकारसें (१-२-११)"परीक्ष्य लोकान्"इत्यादि मंत्र करिके कथन कियाहै; तथा (३ । २ । ९) "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" (३ । २ । ६)"परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे"इत्यादि वाक्यकरिके प्रयोजनभी वारंवार कथन किया है. यद्यपि सर्व आश्रमीयनका ज्ञानके विषे अधिकार है. तथापि संन्यासनिष्ठ ब्रह्मविद्या मोक्षका साधनहै. कर्मसहित नहीं. या रीतिसें (मु.-१ २-११) "भैक्षचर्याञ्चरन्तः" (मुंड. ३ । २ । ५) "संन्यासयोगात्" इत्यादि वाक्यनसें सूचित कियाहै. याप्रकारसें अनुबंधचतुष्टय विशिष्ट यह उपनिषद् व्याख्यान करने योग्यहै, शौनकऋषि शास्त्र विधिपूर्वक अंगिरामुनिके प्रति शरण जायके प्रश्न करतेभये हे भगवन् ! किस एक वस्तुके ज्ञानसें सर्ववस्तुका ज्ञान होवेहै ? ताके उत्तरमें अंगिराजीने प्रथम तो (मुं १ । १ । ४) "द्वे विद्ये वेदितव्ये" परा चापरा च इति" कहिये हे शौनक ! परविद्या और अपर विद्या दोनुं जाणने योग्यहें,ऐसा कहिके प्रथम ऋग्वेदादिरूप कहिये

कर्मउपासनारूप अपरविद्या चित्तशुद्धिके अर्थ कथन करी; अनंतर--(मुं. खं. १ मं. ५)

"अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥"

जिसकरिके ता अक्षरस्वरूपका साक्षात्कार होवेहै सो परविद्या कहिये वेद्य विषयक विज्ञान कहूहूं; ऐसी प्रतिज्ञा करिके, (मुं. १ । १ । ५)

"यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यंति धीराः"

अर्थः—जो अक्षर ब्रह्मस्वरूप 'अद्रेश्यं' कहिये सर्व ज्ञानेंद्रियोंसें अगम्यहै, तथा 'अग्राह्यं' कहिये कर्मेंद्रियनका अविषयहै; तथा 'अगोत्रं' कहिये वंशरहितहै अर्थात् इसका कोई मूल नहीं; जासें वंशवाला कहिये; तथा 'अवर्णं' कहिये स्थूलत्वादि और शुक्लत्वादि द्रव्यधर्मनसें रहितहै; तथा 'अचक्षुः श्रोत्रं' कहिये नामरूप विषयवाले श्रोत्र और चक्षुइंद्रियनसें रहितहै; तथा 'अपाणिपादं' कहिये हस्तपादादि कर्मेंद्रियनसें

रहितहै; और 'नित्यं' कहिये अविनाशीहै तथा 'विभुं' कहिये ब्रह्मादिस्तंबपर्यंत प्राणिभेदकरिके विविधप्रकारसें होनेवाला; तथा 'सर्वगतं' कहिये सर्वत्रव्यापक; तथा 'सुसूक्ष्मं' कहिये अत्यंत सूक्ष्महै; और 'अव्ययं' कहिये अवयवनका अपचयरूप अपक्षयसें रहित अर्थात निरवयव होनेतें शरीरकी न्याई अपक्षयवाला नहीं; तथा निर्गुण होनेतें गुणद्वारा भी अपक्षयवाला नहीं; तथा 'भूतयोनिं' कहिये सर्वभूतनका कारणभूत; तथा सर्वका आत्मारूप ऐसें अक्षरस्वरूपकूं 'धीराः' कहिये विवेकबुद्धिवाले पुरुषही 'परिपश्यंति' कहिये अपरोक्ष करते हैं, इसरीतिसें उपक्रम करिके.

(मुंडक ३ खण्ड १ मंत्र ७)

"बृहच्च तद्दिव्यमचिंत्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति । दूरात्सुदूरे तदिहांतिके च पश्य त्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥ १ ॥"

अर्थः--सो ब्रह्मस्वरूप 'बृहत्' कहिये अतिमहत्है तथा 'दिव्यं' कहिये स्वयंप्रकाश अर्थात इंद्रियोंका

अगोचर और इसी हेतुसेंही 'अचिंत्यं' कहिये जाका स्वरूप चिंतवनमें महत्प्रयत्नसें आवे, तथा 'सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं' कहिये सूक्ष्म ऐसें आकाशादिकनसेंभी अतिसूक्ष्महै, तथा विभाति कहिये आदित्य चन्द्रादि विविधरूप करिके देदीप्यमान् है. और 'दूरात्सुदूरे' कहिये दूरदेशसेंभी अत्यंत दूर है; काहेते अविद्वानोंको अत्यंत अगम्यहै; और 'इहांतिकेच' कहिये यादेहके विषैं तथा समीपके विषैंभी है; काहेते विद्वानोंकूं आत्मारूप है, और सर्वसें आंतरहै, तथा 'पश्यत्सु इहैव निहितं गुहायां' कहिये साक्षात्कार करनेवाले योगी पुरुषनको इसी शरीरके विषैं बुद्धिरूप गुफामें निगूढस्थित अनुभवमें आवे है इसप्रकारसें उपसंहार किया है. ॥ १ ॥

तथा (मुंडक २ खंड १ मंत्र २)

"दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यंतरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥१॥"

अर्थः—जो प्रत्यगभिन्नब्रह्म 'दिव्यः' कहिये स्वप्रकाशरूपहै; तथा 'अमूर्तः' कहिये सर्वमूर्तिसें रहित, अर्थात्

निराकारहै; तथा 'पुरुषः' कहिये पूर्णस्वरूप अथवा शरीररूपी पुरकेविषैं रहनेवालाहै तथा 'सबाह्याभ्यंतरः' कहिये बाह्याभ्यंतर सर्वदृश्य सहित अर्थात अध्यस्त सर्वदृश्यनका अधिष्ठानरूपहै,तथा 'अजः' कहिये जन्म-रहितहै काहेते जैसें जलबुद्बुदादिकनके उत्पत्तिमें वायुआदि निमित्तहै और आकाशके छिद्रभेदनमें घटादिनिमित्तभूतहै, तैसें आत्माकेविषैं कोईभी जन्मरूप निमित्त नहीं, काहेते आत्मा सर्वका आद्यहै (जन्मरूप विकारके निषेधसे षड्भाव विकारनका निषेध जाणना) तथा "अप्राणः" कहिये यद्यपि मूढजनोकूं अविद्या-वशसें देहतादात्म्य करिके सप्राणकीन्याई आत्मा भासेहै; जैसे आकाशकेविषे मालिन्यहीनहोते भासमान होवेहै तैसे. तथापि परमार्थदृष्टिसे क्रियाशक्तिमान चलनात्मक प्राणसें रहितहै. तथा "अमनाः" कहिये मनसे रहितहै. (प्राण और मनके निषेधसें अपानादि सर्ववायुभेदनका, तथा कर्मेंद्रियनका, तिनके गमनादि विषयनका,तथा ज्ञानेंद्रियं और तिनके विषयशब्दादिक तिनसेभी रहितहै ऐसे जानना) उस रीतिसे उपाधिका

अभाव होनेते अद्वयरूपहै. याते 'शुभ्रः' कहिये शुद्धहै. तथा 'परतः अक्षरात् परः' कहिये आपने कार्यरूप विकारकी अपेक्षासें पर ऐसा जो नामरूपका बीजभूत जो अव्याकृततासेभी परहै. कहिये निरुपाधिकहै. इत्यादि मंत्रनसे वारंवार स्वरूप कथनरूप अभ्यास प्रदर्शन कियाहै (मुण्डक तृतीय ३, खंड प्रथम अष्टक मंत्र ८:-)

"न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ॥"

अर्थः—जो प्रत्यक्‌ब्रह्म अरूपहै याते चक्षुरिंद्रियसें ग्रहण करने योग्य नहीं तथा अवाच्यहै. याते वाक्‌इं-द्रियकरिके भी कथनकरनेकूं शक्य नहीं. तथा श्रोत्रादि इतर इंद्रियनकाभी विषय नहीं; तथा सर्वके प्राप्तिमें साधनीभूत तपस्या करिकेभी ग्रहण करनेकूं शक्य नहीं; तथा वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म करिकेभी ग्रहण करनेकूं शक्य नहीं; इस रीतिसें प्रत्यक्षादि प्रमाण और इतर प्रमाणकरिके अगम्यतारूप अपूर्वता कथन करीहै

३ तथा मुण्डक २ खंड २ मंत्र ९ "भिद्यते हृदयग्रंथिः" (या श्रुतिका अर्थ तृतीय प्रक्रियामें लिखित है) इस रीतिसेनिःशेष अनर्थकी निवृत्ति और परमानदकी प्राप्ति-रूप फल कथन कियाहै ४ (मुण्डक १ खंड ५ मंत्र ७)

"प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरांमृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥"

अर्थः—अग्निष्टोमादि यज्ञ 'अदृढाः' कहिये शिथिल नौकरूप हैं; तिनकूं चलावनेहारे १६ (षोडश) ऋत्विज पत्नी और यजमान ये अष्टादश नाविक हैं; तामें यज्ञरूप नौका विनाशवाली होनेते तामें स्थित नाविकभी स्वर्गादि फलके साथ विनाशकूं प्राप्त होवेहैं; जैसे.कुण्डके नाशसे क्षीरदध्यादिकनकाभी नाश होवेहै तैसे. ऐसा होतेभी जो अविवेकीमूढपुरुष केवल कर्म कूंही श्रेयरूप मानीके आनन्दकूं प्राप्त होवेहै. ता पुरुष किंचित् काल पर्यंत स्वर्गमें रहिके पीछे वारंवार जन्म मरण, जरादिकनकूं प्राप्त होवेहै; इत्यादि मन्त्रनकरिके

अज्ञानी जनकी निंदाद्वारा ब्रह्मात्मैक्य स्तुतिरूप अर्थ-
वाद कथन कियाहै ५ तथा मुण्डक २ खंड २ मन्त्र १
"आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रैत-
त्समर्पितम् । एजत्प्राणन्निमिषच्च ॥"

अर्थः—जो प्रत्यगभिन्न ब्रह्म 'आविः' कहिये श्रवण,
मनन, विज्ञान इत्यादि उपाधिरूप इंद्रियनके धर्म
करिके सर्वप्राणियनके हृदयमें आविर्भूत ऐसा जाणियेहै;
ते आविर्भूत ब्रह्म 'सन्निहितम्' कहिये हृदयमें सम्यक्
स्थितहै; और 'गुहाचरं' कहिये दर्शन श्रवणादिरूप
प्रकार करिके हृदयगुहामें गमन करनेवाला इसरीतिसे
प्रसिद्धहै; और सर्वसें महतहै; तथा बुद्धयादि सर्व पदा-
र्थनका अधिष्ठान होनेते 'पद' कहियेहै—जा ब्रह्म विषे
'एजत्' कहिये चंचल पक्षी आदि; तथा 'प्राणत्'
कहिये प्राणापानादिमान् मनुष्य पशु आदि; तथा
'निमिषत्' कहिये उन्मेषनिमेषादि क्रियावाला तथा
'अनिमिषत्' कहिये स्थिर ऐसा जो सर्व दृश्य सो 'सम-
र्पितम्' कहिये अधिष्ठानकेविषे अध्यासभावसे स्थितहै.
या रीतिसे उपपत्ति कथन करीहै. ६

ऊपर कथित षडविधलिंगनसे या मुण्डकोपनिषदके सर्व मन्त्रनका ब्रह्मात्मैक्य प्रतिपादनविषेही तात्पर्य है तहां श्लोकः—

जायन्ते विस्फुलिंगा अनलत इव यद्वत्प्रदीप्तात्स्वरूपास्तद्वत्सर्वेपि भावाः खलु यत उदिता यांति यस्मिँल्लयंते । "अप्राणः सर्ववित्प्रणववरधनुः स्वात्मबाणैकलक्ष्यस्तं जानन्नामरूपे त्यजति स भवति ब्रह्मरूपो विशोकः ॥ १ ॥"

अर्थः—जैसे देदीप्यमान् अग्निसे विस्फुलिंग उत्पन्न होवे हैं; और अग्निमेंही लीन होवे हैं, तैसेही आकाशादि सर्व पदार्थ जिससे उत्पन्न होइके और जाविषेही पीछे लीन होवे हैं; तथा जो प्राणरहित और सर्व वेत्ता है; तथा जो ॐकाररूप धनुषके विषय संधान किये स्वस्वरूपभूत आत्मारूप बाणका एकलक्ष्य है ता प्रत्यगभिन्न ब्रह्मकूं अपरोक्ष करनेवाला पुरुष नामरूपका त्याग करिके ब्रह्मरूप हुवा शोकरहित होवे है १.

(५) प्रश्नोपनिषद्के[1] अनुसार विचार।

मुण्डकोपनिषद्में प्रतिपादित अर्थकेही विस्तार करनेके लिये यह प्रश्नोपनिषद्रूप ब्राह्मण है. ऋषियोंके प्रश्नोत्तररूपसे जो आख्याइका सो संवत्सरपर्यंत ब्रह्मचर्य पालन, इत्यादि नियमयुक्त जो शिष्य ताकूंही ब्रह्मविद्या ग्रहण करने योग्य है.और पिप्पलादमुनिके सदृश सर्वज्ञ आचार्यसेही उपदिष्ट होणा योग्यहै. अन्यकूं नहीं. इस रीतिसे ब्रह्मविद्याके स्तुति अर्थ है.इस उपनिषद्में प्रथम तीन ऋषिओंका तीन प्रश्नमें जो अपर विद्याका विषय प्रदर्शन किया है. सो तो वैराग्यद्वारा पराविद्या विषे अधिकार प्राप्ति अर्थ है.

(१) भारद्वाज सुकेशा (२) शैब्य सत्यकाम (३) सौर्यायणि गार्ग्य (४) आश्वलायन कौशल्य (५) भार्गव वैदर्भी (६) कात्यायन कबंधि इत्यादि ऋषिवर्ग ब्रह्मके विषे परमनिष्ठा परायण होतेभी अपर

---

१ उपनिषदोंका क्रमतो ऐसाहै"ईश, केन,कठ, प्रश्न, मुण्ड, मांडूक्य, तित्तिरिः। ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश ॥" परन्तु यहां अर्थ सौलभ्यार्थ यह क्रम रखा है. ऐसा समझना.

ब्रह्मके विषेही परब्रह्मता जाणनेसे अपरविद्याकाही अनुष्ठान करतेहुये. और परमार्थ सत्यब्रह्मकूं शोधन करतेहुये विधिपूर्वक पिप्पलादक मुनिकूं शरणगये तब पिप्पलादजीने कहा कि, श्रद्धा, तप, ब्रह्मचर्य इत्यादि नियमयुक्त एक संवत्सर पर्यंत यहांही पासमें रहो तब पीछे जो हम जानते होंगे, ता वस्तुकूं कथन करेंगे. इस रीतिसे करनेके अनन्तर प्रथम कात्यायन कबंधिने प्रश्न कियाः—हे भगवन् ! यह सर्वप्रजा किससे उत्पन्न होवे है ? " उत्तरः—हे कबंधि ! पूर्वकल्पमें कर्म उपासना का अनुष्ठान करनेवाला कोई एक जीव तिसने इस कल्पमें हिरण्यगर्भ होईके सृष्टि करनेकी इच्छासे "मैं प्रथम आदित्य, और चन्द्रकं उत्पादन करीके तद्भाव पायके पीछे चन्द्रादित्य साध्यसंवत्सर भाव पायके, अनन्तर, ताका अवयवरूप उत्तर दक्षिण दो अयन, मास, पक्ष, दिन, रात्री या भावकूं प्राप्त होईके, पीछे तिसते साध्य व्रीहि आदि अन्नभावद्वारा रेतसभावकूं पायके तद्द्वारा सर्व प्रजाकूं उत्पादन करू"- इस रीतिसे चिंतवन करीके प्रथम अत्ता प्राणरूप

कहने लगे कि, मैं शरीरका धारण करूं हूं तब श्रेष्ठ प्राणनेंकहाः—"तुमने शरीरके धारणका अभिमान करना नहीं; मैंही पंचप्रकारसे विभक्त होइके शरीरका विधारण करताहूं." इस रीतिसे प्राणके वचन ऊपर इतर देवनकूं विश्वास न हुवा, यातें प्राणने अभिमानसें उत्क्रमणके सदृश किया. तब उसी कालमें इतर देव व्याकुल हो गये. और प्राण पीछे प्रतिष्ठित होनेसे तुरतही अन्यदेव प्रतिष्ठित होगये. और प्राणकी स्तुति करनेलगेः—"हे प्राण! तूंही श्रेष्ठ है; तेरे आधारसेही सूर्य, चंद्र, पर्जन्यादि सर्व जगत् रहा है. और सूर्य, चंद्र, इंद्रादि रूपभी तूंही है, याते हमारी रक्षा कर" इत्यादि वार्ता द्वितीय प्रश्नके उत्तरमें निरूपण करी है. २

कौशल्य आश्वलायननें तृतीय प्रश्न किया के—"हे भगवन्! यह प्राण किससे उत्पन्न होवेहै? और इस शरीरमें किस रीतिसे प्रवेश करे है? तथा पंच प्रकारसें विभक्त होइके किस रीतिसे रहेहै?और ताका उत्क्रमण किस रीतिसे होवे? और अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवकूं किस प्रकारसे धारण करै है?" उत्तरः—" जैसे

शरीरसे असच्छाया (प्रतिच्छाया) उत्पन्न होवेहै.तैसेही आत्मारूप अक्षर पुरुषसे अनृतरूप प्राण उत्पन्न होवेहै; और कर्मरूप निमित्त करिके शरीरमें प्रविष्ट होवेहै.तथा राजाकी न्याई सर्व इंद्रियनकूं पृथक्पृथक् स्थानकेविषे पृथक् पृथक् व्यापारमें अधिकार देवेहै;तथा यह प्राण पंच प्रकार वृत्तिभेद करिके शरीरमें रहाहै.और यह प्राण हृदयगत सुषुम्णानाडीद्वारासे पुण्यवानकूं पुण्य लोकमें और पापीयनकूं अधोलोकमें प्राप्त करावे है और यही प्राण बाह्यआदित्यरूपसे अधिदैवत होया हुवा चक्षुरादि रूप अध्यात्मभावकूं तथा अधिभूत कहिये स्थूल शरीर और विषय इनको अनुग्रह करे है. तथा मरण कालके विषे जीवका चित्त जिस शरीरविषे जाने सो जीव संकल्पात्मक चित्त और इंद्रियनके सह मुख्य प्राणमें आवे. तात्पर्य यह है, मरण समयके विषे क्षीण हुई है इंद्रियवृत्ति जाकी, ऐसा होइके प्राणवृत्ति करिकेही स्थित होवे है जिसको ज्ञातिजन श्वासमात्र चालता है; ऐसा कहेहै सो प्राण उदानवृत्ति करिके उत्क्रमण करता हुवा भोक्ता जीवकू पुण्य पाप वशतासे संकल्पानुसार

लोककूं प्राप्त करावे है. इस रीतिसे जो पुरुष प्राणकूं जाणीके उपासना करे, तिसकी पुत्र पौत्रादिरूप प्रजा अविच्छिन्न होवे; और शरीरपातके अनंतर प्राणके सायुज्यतासे सापेक्ष अमृतभावकूं प्राप्त होवे है. ऊपर कथित अर्थका संग्राहक श्लोकरूप मंत्रः—

(तृतीयप्रश्न मं० १२)

"उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पंचधा ।
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते ॥
विज्ञायामृतमश्नुत ॥ १ ॥"

अर्थः—पूर्वोक्त प्राणकी परमात्मासे उत्पत्ति तथा 'आयतिं' कहिये शुभाशुभ कर्मवशतासें शरीरमें आवागमन तथा 'स्थानं' कहिये स्थिति,तथा 'विभुत्वं' कहिये सम्राट की न्याई सर्व इंद्रियनकूं पायु उपस्थादि तत्तत्स्थानके विषे अधिकार प्रदानरूप स्वामीभाव इन सर्वकूं तथा प्राणादि वृत्तियनका पंच प्रकारसे स्थापन, तथा बाह्य आदित्यादि अधिदैवतरूपसे अवस्थान तथा चक्षुरादि अध्यात्मरूप करिके अवस्थान जो जाने

सो अमृतभावकूं कहिये सापेक्ष अमृतत्त्वकूं प्राप्त : है! इत्यादिवार्ता तृतीय प्रश्नके उत्तरमें [illegible] करी है. ॥ ३ ॥

प्रथम प्रश्नत्रयोंका उत्तर करिके [illegible] परविद्याके विषे अधिकार प्राप्तिके अर्थ अपरविद्याविषयक साध्यसाधनरूप नामरूपात्मक व्याकृतांतर्गत और अनित्य ऐसें संसारकी समाप्ति करी; अब असाध्यसाधनरूप तथा प्राणका अविषय यातेही क्रियात्मक कर्मेंद्रियनकाभी अविषय, तथा मनकाभी अविषय, यातेहीं ज्ञानेंद्रियकाभी अविषय, तातेही सुखरूप, निर्विकार, सत्य, और परविद्या करिकेही गम्य, तथा कल्पित सर्व प्रपंचका अधिष्ठानभूतपुरुपाख्य"जो प्रत्यगभिन्नब्रह्म ताके निरूपण अर्थ उत्तर लिखित तीन प्रश्न हैं.

सौर्यायणि गार्ग्यने प्रश्न किया "हे भगवन्! शिरःपाणिआदि अवयववान् पुरुपके विषैं कोन से कारण स्वाप करे है कहिये स्वव्यापारसे उपरामकूं प्राप्त होवे है? १ तथा कौनसे कारण जागरूक रहते हैं,

कहिये स्वव्यापारसे उपरामकूं प्राप्त होते नहीं. ? २-तथा कौनसा देव स्वप्नकूं देखेहै ? ३.तथा जाग्रत् स्वप्न-का उपराम हुये अनंतर श्रमरहित सुख किसकूं होवेहै? ४.तथा सुषुप्ति प्रलयके विषें करणादिसंघात किस विषें एकीभूत होईके सम्यक् प्रतिष्ठित होवे है ? तात्पर्य यह है कि सुषुप्ति और प्रलयके विषें कार्यकरणका संघात जाके विषें लीन होवे सो कौन है ? " उत्तरः—
हे गार्ग्य ! जैसें अस्तकूं प्राप्त होते सूर्यके किरण सूर्य-मण्डलमें एकीभूत होवेहैं और सूर्य उदय हुये फिर प्रसा-रकूं प्राप्त होवेहैं; तैसेंही सर्वविषयेंद्रियनका समुदाय स्वप्नकालके विषें द्योतनात्मक (चित्प्रकाशकरिके प्रका-शित)मनके विषें एकीभावकूं प्राप्त होवेहै, अर्थात् अविशेषपनाकूं प्राप्त होवेहै; और मन जागरूक हुऐ फिर प्रसारकूं प्राप्त होवेहै, तिसतें सर्वभी देवदत्तादि पुरुष स्वापकालविषें चक्षुरादिज्ञानेंद्रियोंकरिके बाह्य शब्दादि-विषयनका ग्रहणकरनेकूं शक्त होवेनहीं; तथा कर्मेंद्रि-यकरिकेभी भाषणादिव्यापार करनेकूं समर्थ होवेनहीं, किंतु शयन करेहै ऐसें तिसकूं कहेहै-१-इस शरीररूपी

पुर (नगर) में पंचप्राणरूपी ओज (तेज । शुद्ध ब्रह्मके
तामें अपान गार्हपत्यहै, और व्यान अन्व हेहै;सो शोधित
है कहिये दक्षिणाग्नि है, जाके लिये ित तथा नाम-
अपानसें प्राणका प्रणयन कहिये ऊर्ध्वगमन धर्मनसे रहित,
प्राण आहवनीयरूपहै; जिसकारणते उच्छ्व आदिकनका
रूप दो आहुतिकूं सम्यक् करिके शरीरस्थि नरूप शान्त
प्राप्त करावेहै,याते तिसवायुकूं समान कहिये ह रहित और
(होतारूप समानकी पंचाग्निमें जो गणना इस रीतिसे
छत्रीन्याय (समुदायमें अग्रेसर एक दो छत्र करे सो
सर्वसमुदाय छत्री कहावेहै करिके जाणनं असर्वज्ञ था
मन यजमानरूप है, और इष्टफलके प्राप्तिमें सर्वज्ञहोवे है
होनेते उदानवायु इष्टफलरूप है; सो उदान म श्लोकरूप
मानकूं स्वमवृत्तिसेंभी प्रच्युत करिके सुषुप्तिकि
दिनदिनप्रति ब्रह्मरूपस्वर्गकूं प्राप्त करेहैं, (
अग्निहोत्रके रूपकसें विद्वान् पुरुषका स्वापभी भूतानि
त्ररूपजाणना.) और ऊपर कथितरीतिसे प्रा० यस्तु
सना कथनकरीहै ऐसा नहीं समझना. किंतु इ ति ॥
रामहुये प्राणही जाग्रत् रहेहै ऐसा अर्थ दि

कहिये स्वव्या लिखित वर्णनकरीके त्वंपदार्थके शोधन
तथा कौनसा स्तुति करीहै यह तात्पर्य अर्थ है.) तथा
का उपराम रामहुये आर प्राण देहरक्षाके अर्थ जाग-
४.तथा सुपु प्तिके उत्पत्तिसें पूर्व अन्तराल अवस्थाविषैं
एकीभत होवे सर्वइंद्रिय ताके विषै एकीभावकूं प्राप्तहुये
है कि सुपु यितारूप महिमाका आपनेविषैं अनुभव
जाके विषैं ये जाग्रत्कालके विषैं दृष्टपदार्थनकूं देखैहै
हे गार्ग्य ! दार्थनका श्रवण करेहै, तथा देशकालादि-
मण्डलमें ए भव करेहै; तथा दृष्ट, अदृष्ट, श्रुत, अश्रुत,
रकूं प्राप्त अननुभूत इत्यादिसर्वनकूं देखेहै; इसरीतिसें
स्वप्नकाले गधिवाला आत्मा स्वप्नकूं देखेहै ३ सो मनदेव
शित)मनदे चिंताख्यसूर्य तेजकरिके और ब्रह्मतेज-
अविशेषप यांके विषैं अभिभूत कहिये तिरस्कृत
प्रसारकूं गारूपद्वार जाका ऐसा होवेहै, तिसकालके-
स्वापकाल नके सह मनोवृत्तिरूप किरण हृदयमें उपसं-
विषयनक्त होवेहै,तिसते सो मन चेतनाशब्दवाच्यसामा
यकरिके रूपकारिकेसर्वशरीरमें व्यापिके रहेहै, इस
किंतु श मनदेव स्वप्नकूं देखेनही, काहेते वासनारूप

द्वारका तिरस्कार हुवाहै तिसते अनन्तर॰। शुद्ध ब्रह्मके
विज्ञानरूप निरवधिऔर;अविशेषकरिके सहैहै;सो शोधित
पक ऐसा जो सुप्रसन्नस्वरूप सुख तद्रूप है जैत तथा नाम-
सुपुप्तिमें, यहहोताहै. ४ (इतने ग्रंथका धर्मनसे रहित,
मयशब्द वाच्य और अनभिव्यक्त और म आदिकनका
नावाला जो ज्ञानस्वरूप सो सुपुप्तिका धर्म
वार्ता कथनकरी) अब गार्ग्यके पंचमप्रश्न ानरूप शान्त
जो ;तुर्यस्वरूप ताकूं विवेचनापूर्वक इ ारहित और
दर्शावेहै, हेशिष्य सुपुप्तिकालविषैं अवि इस रीतिसे
कर्महेतुक कार्यकरण उपशांत होवेहै, अ करे सो
उपशांतिसें प्रथम उपाधिकरिके अन्यथा असर्वज्ञ था
आत्मस्वरूप सो अद्वय, एक, शांत, शिवरू सर्वज्ञहोवे है
याहि अर्थका दृष्टांतपूर्वक प्रतिपादन करेहै. क श्लोकरूप
जैसे पक्षी भ्रमण करिकरिके निवास अर्थ
जावे है, तैसेही पृथ्वी, तथा तन्मात्रा गंध, भूतानि
तन्मात्रा स्पर्श, आकाश तथा तन्मात्रा श यस्तु
स्थूल सूक्ष्म भूत तथा चक्षुरिंद्रिय और द्रष्ट इति ॥
और श्रोतव्य घ्राण और घ्रातव्य, रसना अ

कहिये स्वव्य॑ार स्पर्शयितव्य;वाक् और वक्तव्य,हस्त तथा कौनसा ाय,उपस्थ और आनंदयितव्य, पायु और का उपराम ; पाद और गंतव्य; अर्थात बुद्धि कर्म- ४.तथा सुपु नके विषय मन और ताका विषय मंतव्य, एकीभत हो द्धव्य, अहंकार और अहंकर्तव्य; चित्त है कि सुपुि तव्य, अर्थात अंतःकरणचतुष्टय और जाके विषैं ;,तेज और द्योतयितव्य, प्राण और विधार- हे गार्ग्य ! सर्व नामरूपात्मक अक्षर परमात्माके विषे मण्डलमें है. ५ पूर्वोक्त सर्व उपाधिसें पर और रकूं प्राप्त वेषे कर्तृत्व भोक्तृत्व रूपसे प्रविष्ट जो स्वप्नकालमें सो द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, शित)म न्ता, बोद्धा प्रतिबिंब कर्ता और विज्ञानमय अविशेष माता आत्मा जैसे जलमें सूर्य जल प्रसारकूं ! प्रतिबिंबभूत सूर्यके विषें लयकूं प्राप्त होवेहै स्वापका ि अक्षर स्वरूपके विषे कहिये बिंबभूत साक्षि विषयन विषे लयकूं प्राप्त होवेहै.अभिप्राय यह है,उपा- यकरिके ासे आत्मा उपहित हुवा सो उपाधिके लयसे किंतु श ि रहित स्वरूपही होवेहै यही लय शब्दका अर्थ

है. इस रीतिसे शोधित तुरीय स्वरूपका शुद्ध ब्रह्मके साथ ऐक्य, और ऐक्यज्ञानका फल कहेहे;सो शोधित तुरीय आत्मा अच्छाय कहिये तमोवर्जित तथा नाम-रूपात्मक शरीरोपाधिसे रहित तथा सर्व धर्मनसे रहित, शुद्ध, सत्य, निर्विकार, प्राण, मन आदिकनका अविषय कल्पित सर्व प्रपंचका अधिष्ठानरूप शान्त ऐसा शिवस्वरूप होवेहै. सर्व एषणारहित और सर्व त्यागी ऐसा जो अधिकारी पुरुष इस रीतिसे ब्रह्मात्मैकत्वका गुरुमुखमे साक्षात्कार करे सो सर्वज्ञ होवेहै. कहिये प्रथम अविद्यासे असर्वज्ञ था सो अविद्याका ऐक्यज्ञानसे नाशहुये सर्वज्ञहोवे है और सर्वरूप होवेहै. पूर्वोक्त अर्थका संग्राहक श्लोकरूप मंत्रः–(प्रश्न ४ मंत्र ११)

"विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्व्वैःप्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेश ॥" इति ॥

अर्थः—'विज्ञानात्मा' कहिये प्रमाता तथा अग्न्यादि देवता सहित सर्वेंद्रिय तथा पृथिव्यादि सर्व भत जा अक्षरके विषे लीन होवेहै ता अक्षर ब्रह्मस्वरूपकूं हे सौम्य! जो जाणे सो सर्वज्ञ होवेहै और सर्व कहिये पूर्ण होवेहै इतनी वार्ता चतुर्थप्रश्नके उत्तरमें निरूपण करीहै।

अब पर, अपर ब्रह्मप्राप्तिके साधनत्व करिके ॐकारकी उपासनाके विधान अर्थ या पंचम प्रश्नका आरंभ है. शैब्य सत्यकामने प्रश्न कियाः—"हे भगवन्! मनुष्यनके विषे जो पुरुष, सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अपरिग्रह, त्याग, संन्यास, शौच, संतोष, अमायित्व इत्यादि यम नियमयुक्त होइके, और बाह्यविषयनसे इंद्रियवर्गका उपसंहार करिके यावज्जीव ॐकारका अभिध्यान करे कहिये आभिमुख्य करिके चिंतवन करे सो यावज्जीव व्रतधारी ज्ञानकर्मनसे प्राप्त जो अनेक लोक हैं कहिये चंद्रसूर्यादिस्थान हैं, तिनमध्यसे ॐकार उपासनासे किस लोककूं जीते है? ॐकारोपासन अपर ब्रह्मके अवलंबसे किया होवे तो अपर

ब्रह्मप्राप्तिका साधन है. और परब्रह्मका अवलंबन करीके कियाहोवे तो परब्रह्मके प्राप्तिका साधन है. ऐसे अभिप्रायसे उत्तर देवे है—हे सत्यकाम ! सत्य, अक्षर, पुरुषाख्य जो परब्रह्म तथा प्रथम जन्य प्राणाख्य हिरण्यगर्भरूप जो अपरब्रह्म ता दोनूंभी ॐकारात्मकही हैं. याते, शंकाः—ब्रह्मदृष्टि करिके ॐकारकी उपासना उपदिष्ट करी है. उसकी अपेक्षा साक्षात् परब्रह्मकी उपासना उपदिष्ट काहेते करी नहीं ? समाधानः—ब्रह्म, आत्मा, सत्य इत्यादिक शब्दनका अविषय तथा सर्वधर्मरहित इंद्रियातीत शुद्धब्रह्म केवल मन करिके चिन्तवन करनेकूं शक्य नहीं. याते प्रतिमा स्थानीय ॐकारके विषे भक्तिसे ब्रह्मदृष्टिका आवेश करिके जो ध्यान करे ता पुरुषकूं तो ब्रह्म स्वयं प्रसन्न होवे है. इस प्रकारसें शास्त्रप्रमाणसे जानिये है, याते ॐकारकी उपासना करी है. यातेही जो पर अपर ब्रह्म सोही उपचारसे ॐकाररूप कहा है; इस रीतिसे जाननेवाला पुरुष आत्मप्राप्तिमें साधनभूत ॐकार करिके पर अथवा अपर जाका ध्यान करे ताकूं पावे है. याते ॐकार

ब्रह्मप्राप्तिमें अत्यन्त समीप साधन है. कदापि उपासक पुरुष ॐकारके मात्रा विभागकूं नहीं जानता होवे तोभी तिसकूं विशेष गति प्राप्त होवेहै. जो कोई पुरुष ॐकारकी एकमात्राका ध्यान करे, ता पुरुषकूं ऋग्वेदरूप ॐकारकी प्रथममात्रा पृथ्वीमें साधक मनुष्यलोककूं प्राप्त करावे है. सो पुरुष श्रेष्ठ द्विजजन्म प्राप्त होइके तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धासम्पन्न होइके ऐश्वर्यका अनुभव करे है. यथेष्टाचारी होवे नहीं, योगभ्रष्टकूं कोईभी कालविषे दुर्गतिकी प्राप्ति होवे नहीं. यह वार्ता भगवद्गीतामेंभी कही है. द्विमात्राका विभागज्ञ जो पुरुष द्विमात्राविशिष्ट ॐकारका ध्यान करे सो पुरुष स्वप्नात्मक यजुर्मय और सोमदैवत्य ऐसे मनकूं प्राप्त होवेहै. कहिये एकाग्रता करिके मनके विषे आत्मभावकूं प्राप्त करेहै. तथा ता पुरुषकूं द्वितीयमात्रारूप यजुर्वेद अंतरिक्ष है आधार जिसका ऐसे सोमलोककूं प्राप्त करावेहै. सो पुरुष तहां विभूतिका अनुभव करिके मनुष्यलोकके विषे पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवेहै. जो पुरुष त्रिमात्रक ॐकाररूप प्रतीक करिके सूर्य-

मण्डलमें अंतर्गत परपुरुषका ध्यान करे सो पुरुष सूर्यके विषे सम्पन्न होवे कहिये तदात्मभावकूं प्राप्त होवेहै. सो पुरुष सोमलोककी न्याई, पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होवे नहीं. किंतु जैसे सर्प त्वचानिर्मुक्त होवे तैसे पुण्यपापसे निर्मुक्त ता पुरुषकूं तृतीयमात्रारूप सामवेद हिरण्यगर्भलोककूं प्राप्त कहिये जीवघनकूं प्राप्त करेहै; (जीवो लिंगात्मक हिरण्यगर्भ जीवघन कहिये है.) हिरण्यगर्भभावकूं प्राप्तहुवा पुरुष ध्यान करते जीवघन शेषी पर परमात्मपुरुषका साक्षात्कार करेहै.

पूर्वोक्त अर्थके संग्राहक मंत्ररूप श्लोकद्वय २:–

(प्रश्न ५ मंत्र ६-७)

"तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्य सक्ता अनुविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तर मध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पतेज्ञः ॥१॥ ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्य-त्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्च ॥२॥" इति॥

पंचमवल्लीमें आत्मतत्त्व अतिदुर्विज्ञेय होनेते शरीरके विषे पुरके रूपकसें तथा आत्माके विषे पुरस्वामीके रूपकसे स्वरूप निर्धारण कराया है तहां श्रुतिः—

(कठ ५ वल्ली मं. १) २ । २ । १

"पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः । अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते एतद्वै तत् ॥"

अर्थः—जैसे अनेक द्वारयुक्त और सर्वउपकरण सहित संघातरूप नगर कोई स्वतंत्र स्वामीके अर्थ होवे है, ऐसा दर्शनमें आवे है, तैसेही एकादशेंद्रिय द्वारवाला संघातरूप शरीर असंहत राजस्थानीय आत्माके अर्थ होनेकूं योग्य है. ता नगरका स्वामी जन्मादि विक्रियासें रहित और नित्यप्रकाशरूप जो प्रत्यगभिन्न ब्रह्म ताका सम्यक्प्रकारसें ध्यान करिके कहिये कै. उ. "सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि०" ॥ इस रीतिसे जानिके शोक करे नहीं; काहेते प्रत्यक्ब्रह्मके विज्ञानसें अभय प्राप्तहुये शोकका अवसरही नहीं, कहिये, यही देहके विषे अविद्याकृत काम

स्वयं होनेतें अतिरिक्त चलनके हेतुका अभाव है. १. प्रथम मात्राका उपासक मेधावी पुरुष ऋग्वेदरूप अकार मात्राकारिके मनुष्यलोककूं प्राप्त होवेहै; और द्वितीय मात्राका उपासक यजुर्वेदरूप उकारमात्रा करिकें सोम लोककूं प्राप्त होवेहै;तथा तृतीय मात्राका उपासक साम-वेद रूप मकारमात्रा करिकें ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवेहैं; मेधारहित पुरुष प्राप्त होवे नहीं, ता त्रिविध लोकरूप अपर ब्रह्मकूं ॐकाररूप साधन करिकें प्राप्त होवेहै. और जो अक्षर, सत्य, पुरुषाख्य, शान्त तथा जाग्रत्स्वप्न सुषुप्त्यादिवर्जित, अजर,अमृत, निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्म ताकूंभी प्राप्त होवेहै. २ इतनी वार्ता पंचम प्रश्नके उत्तरमें निरूपण करी है.-

प्रथम कार्यकारणात्मक सर्वजगत् विज्ञानात्माके साथ सुषुप्तिकालमें पर अक्षर स्वरूपके विषे लयको प्राप्त होवेहै, ऐसा कहा, तिसने प्रलयकालमेंभी ताही अक्षर स्वरूपके विषे सर्व जगत्का लय होवे और तापर अक्षरसें फेरी उत्पन्न होवे यह वार्ताभी अर्थात् सिद्ध भई.कारण भिन्नमें कार्यका लय होवे नहीं, यातें आत्मासेही

प्राण उत्पन्न होवेहै. इस प्रकारसें आत्माकूं कारणत्व प्रथम कहाहै; और जगत्का जो सत्यस्वरूप मूल ताके परिज्ञान सेंही परम श्रेय प्राप्त होवेहै. इस-प्रकारका सर्व उपनिषदोंका सिद्धान्त है; और " स सर्वज्ञः सर्वो भवति " (जो पुरुष सर्वका लयस्थान अक्षरस्वरूपकूं जाने सो सर्वज्ञ और सर्वरूप होवेहै) इस रीतिसे अभी ऊपर कथन कियाहै. याते वेद्य कहिये जाननेयोग्य पुरुषाख्य और सत्य जो अक्षर स्वरूप कहां स्थित है, सो कथन किया चाहिये याते इस छट्ठा प्रश्नका आरंभ है.

सुकेशा भारद्वाजनें प्रश्न किया है:—"हे भगवन् ! कौसला नगरीके राजाका पुत्र हिरण्यनाभनें मेरे पास आयके पूछा "हे भारद्वाज ! षोडश कल (सो-लहकलावान्) पुरुषकूं तुम जानतेहौ, याते मेरेकूं ताका उपदेश करो." तब मैंने तिसकों कहा, " हे हिरण्यनाभ ! षोडशकल पुरुषकूं मैं जानता नहीं हूं. जो जानता होता तौ तेरेकूं, काहेते न कहूं ? जो कोई वास्तवस्वरूप आत्माके जानेविना अन्यथा कथनकरे

सो अनृतवादी पुरुष उभयलोकसे भ्रष्ट होवेहै.याते विना जाने अनृतकहना योग्य नहीं! पीछे सो राजपुत्र तूष्णीं होके रथमें स्थित होयके गया. याते तुमकूं पूछताहूं के, सो षोडशकल पुरुष कहां है?" उत्तरः—हे सौम्य, सो षोडशकल पुरुष यही शरीरमें अन्तःस्थित है, देशान्तरकेविषे जानने योग्य नहीं. जाके विषे आगे कथनीय प्राणादिषोडशकला-निवर्तरूपसे उत्पन्न होवेहैं; ता षोडशकलारूप उपाधिसें कलारहित होतेभी कलासहितकी न्यांई प्रतीत होवेहै; वस्तुतः विद्याकरिके कलारहित लक्षित होवेहै. अध्या-रोपित कलाका अपनयन (अपवाद) से विद्याकरिके निष्कलपुरुषका साक्षात्कार करावना है. यातेप्रथम तो पुरुषसे कलाका उद्भव कहे है. हे शिष्य! सो पुरुष सृष्टिक्रमके विषे ईक्षण करताभया. किस रीतिसे "कौन कर्ता विशेष देहसे उत्क्रांत हुये मेरा उत्क्रमण होये. और शरीमें किसके प्रतिष्ठानतेमें प्रतिष्ठित होऊं?" इस रीतिसे ईक्षण करिके सो पुरुष सर्वप्राणियनके कर-णनका आधारभूत और जा उपाधि करिकें हिरण्यगर्भ

इस नामकूं प्राप्त होवे ता लिंगात्मा समष्टिप्राणकूं उत्पन्न करताभया १. अनंतर सर्वप्राणियनकी शुभाशुभकर्मके विषे प्रवृत्ति होनेमें हेतुभूत श्रद्धाकूं सर्जन करता भया २. पीछे कर्मफलके उपभोग साधन इंद्रियादिकनके अधिष्ठानभूत यातेंही कारणभूत महाभूतनकूं उत्पन्न करताभया. तिन महाभूतनके विषे प्रथम शब्दगुण विशिष्ट आकाश किया ३ तिसते अनन्तर शब्दस्पर्श द्विगुणविशिष्ट वायु किया. ४. पिछे शब्द, स्पर्श,रूप-त्रिगुणविशिष्ट तेजकूं उत्पन्न करताभया५. अनन्तर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, इन चार गुणविशिष्ट जलकूं उत्पन्न करता भया. ६. पीछे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पंच गुणविशिष्ट पृथ्वीकूं उत्पन्न करताभया.७ अनन्तर इन भूतोंसेही आरब्ध ज्ञान क्रियाके साधनभूत दश इंद्रियनकूं पैदा करताभया८. इसते अनन्तर इंद्रियका नियामक संशय—संकल्पादिरूप मनकूं उत्पन्न करताभया.९ इस रीतिसे प्राणियनसे कार्यकारणकूं उत्पन्न करिके पीछे प्राणियोंकी स्थितिके अर्थ व्रीहियवादिरूप अन्नकूं उत्पन्न करताभया. १०. अनन्तर

भक्ष्यमाण अन्नसे सर्वकर्मविषे प्रवृत्तिका हेतुभूत वीर्य (बल) कूं उत्पन्न करता भया. ११ इसतेभी अनन्तर मलिन सत्वसे आचरणकिये पापनसे संकीर्ण प्राणियनके पापनका क्षालन करिके चित्तशुद्धिमें साधनभूत तपकूं उत्पन्न करताभया. १२. और ता तपकरिके शुद्ध हुये हैं आंतर बाह्य करण जिनके ऐसे प्राणियनके अर्थ मन्त्रात्मक ऋगादि चार वेदनकूं सृजताभया. १३. तातें अनन्तर अग्निहोत्रादिकर्मनकूं सृजताभया. १४. तिसते अनन्तर कर्मके फलभत लोकनको सृजताभया १५. और तिन लोकनमें उत्पन्न किये प्राणियनके देवदत्त यज्ञदत्त इत्यादिनामनकूं सृजता भया. १६. इस रीतिसे जैसे तिमिरांधदृष्टिवाला पुरुष द्विचंद्रकेशोडकादिकनकू सजे है, और जैसे स्वमद्रष्टा स्वामिक सर्वपदार्थनकं सृजे हैं तैसेही प्राणियनके अविद्यादि दोषरूप बीजसे पूर्वोक्त सर्व कला सृजी हैं; जैसे लोकमें समुद्रायण कहिये समुद्र है प्राप्यस्थान जिनका ऐसी बेहती नदी समुद्रकूं प्राप्त होई के अस्त होवे है अनन्तर तिनके नाम और रूप दोनूं

नष्ट होवे हैं. केवल समुद्र ऐसेही कहिये है, तैसे द्रष्टा ता षोडशकल पुरुषकी पुरुषायणा कहिये अक्षर पुरुष है गति जिनोंकी ऐसी पूर्वोक्त प्राणादि कलाओंका नाम-रूपनका त्याग करे है और केवल अविनाशी पुरुष ब्रह्मवेत्ता कहे है. इसप्रकारसे गुरुने उपदिष्ट करी है कलाओंकी उत्पत्ति और प्रलय जिसकूं ऐसा होइके जो अधिकारी जाने ताकी अविद्या काम कर्म-जनित प्राणादिकलाका विद्या करिके नाश हुये अनं-तर सो विद्वान् अकल कहिये प्राणादि कलारहित होइके अमृत कहिये प्राणादि निमित्त मरणरहित होवे है या विषे श्लोकरूप श्रुतिः—

(प्रश्न ६ मंत्र ६)

"अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मावो मृत्युः परिव्यथा॥
इति॥"

अर्थः—जैसे रथनाभिके विषे अरा प्रतिष्ठित हैं तैसेही षोडशकला जाके विषे प्रतिष्ठित हैं, ऐसे वेद्य पूर्ण पुरुषकूं जानना. हे शिष्य! जासे तुमकूं मृत्यु

व्यथा होवे नहीं, तिन शिष्यनकूं या प्रकारसें उपदेश करि पिप्पलादमुनि कहे हैं हे शिष्यों ! तुमारेकूं मैंने जो उपदेश किया इतनाही मैं जानताहूं; याते अधिक अन्य जानता नहीं हूँ. शिष्यनकी अवशिष्ट वेद्यविषयक शंकाकी निवृत्ति अर्थ इस रीतिसे पिप्पलादिमुनीने कहा है. गुरुजीने शिक्षित किये कृतार्थहुये छः शिष्य गुरुके प्रत्युपकारार्थ कुछभी न देखतेहुये गुरुचरणकी पुष्पांजलि करिके पूजन करते भये; और शिरोनमन करतेहुये बोले "हे श्रीगुरो ! तुमही हमारे पितारूप हो. काहेते विद्याकरिके नित्य, अजर, अमर, अभय, ब्रह्मस्वरूप शरीर उत्पादन किया. हे गुरो ! तुमनेही हमकं विद्यारूप नौका करिके विपरीत ज्ञानरूप अविद्यासागरसे मोक्षाख्य परपारकूं उतारतेभये याते प्रत्युपकारके अर्थ तुमकूं केवल नमस्कार करते हैं ! ब्रह्मविद्याके सम्प्रदायकूं प्रवर्तन करनेहारे परमऋषियनकूं नमस्कार करते हैं ! ब्रह्मविद्याके संप्रदाय करनेहारे परमऋषियनकूं नमस्कार, करते हैं !!! इस उपनिषदके तात्पर्यार्थका श्लोकः—

नाश अर्थ सर्व उपाधिविशेषनसे निर्मुक्त आत्मस्वरूपका अविद्यानाशमें कारण अपरोक्षज्ञान होनेवास्ते उत्तर- ग्रंथका आरंभ है.

या ब्रह्मविद्याका प्रयोजन अविद्याके निवृत्तिसे आत्यंतिक संसारकी निवृत्ति तथा निरतिशयसु- खकी प्राप्तिरूप है.इस रीतिसे स्वयं श्रुति प्रारंभके विषे कहेहैः—(तै० उ०२-१)

"ब्रह्मविदाप्नोति परम् ॥" (ब्रह्मानंदवल्ली अनु- वाक १.)

अर्थः—वक्ष्यमाण लक्षण ब्रह्मकूं आत्मासें अभिन्नता करिके जो जाने कहिये अपरोक्ष करे, सो ब्रह्मकं प्राप्त होवे. अर्थात् ब्रह्मीभूत होवेहै. ता ब्रह्मका लक्षण क्याहै ? ताके कथन अर्थ अन्य श्रुतिः—

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥"

(ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाक १)

अर्थः— सत्य, ज्ञान, अनन्त ये तीन ब्रह्मके विशे- पण हैं.कहिये इतर पदार्थनसे ब्रह्मकूं पृथक् करनेवालेहैं

प्राप्ति हुई; और मृत्तिका दृष्टान्त करि जडताभी प्राप्त होतीहै.इस शंकासे प्राप्त सर्वदोषनके परिहारार्थ "ज्ञानं" यह विशेषण दिया है. "ज्ञानं ब्रह्म" (जो ज्ञप्तिमात्र सो ब्रह्म) या करिके ब्रह्मके विषे कुलालादिकनकी न्याई निमित्तकारणता होतीहै; काहेते जो कुलालादि निमित्तकारण सो तो ज्ञाता होवेहै और ब्रह्म तो ज्ञाता नहीं, किंतु ज्ञप्तिमात्र है; तथा ज्ञप्ति होनेते मृत्तिकाई न्याई जडताभी व्यावृत्त होती है "ज्ञानं ब्रह्म" या कहनेसे ब्रह्मके विषे विनाशित्व प्राप्त हुवा; काहेते घट ज्ञानसे पटज्ञान निवृत्ति होवेहै; तैसे या शंकाते प्राप्त दोषके निराकरणके अर्थ "अनन्तं" यह विशेषण दियाहै "अनंतं ब्रह्म" कहिये जो त्रिविध परिच्छेदरहित सो ब्रह्म–शंकाः–सत्यादि विशेषणत्रयसे ब्रह्मके विषे यद्यपि अनृतादिक धर्मनकी व्यावृत्ति हुई, तथापि जैसे "नीलमुत्पलं" या स्थलमें नीलादि विशेषणविशिष्ट उत्पलरूप विशेष्य प्रसिद्ध है. तैसे ब्रह्मरूप विशेष्य प्रसिद्ध नहीं, याते "मृगतृष्णाके जलमें स्नात और खपुष्पके शिरोभूषणसे मंडित और शशशृंगके

श्रुतिः—(ब्रह्मानंद. अनु. १)

"यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्सो-श्नुते सर्व्वान्कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चि ता ॥ १ ॥" इति ॥

अर्थः—सत्य, ज्ञान, अनन्तस्वरूप जो ब्रह्म सोही बुद्धिरूप गुहाके विषे प्रत्यगात्मस्वरूपसे रहाहै. या रीतिसे प्रत्यगभिन्न ब्रह्मकूं जो जाणे कहिये श्रवणा दिक करिके अपरोक्ष करे, सो पुरुष सर्वज्ञ ब्रह्मरूप होयके सर्व कामनकूं भोगे है ॥ १ ॥

इस उपनिषद्में आनन्द वल्लीके प्रारम्भमें (तै. उ. २. १) "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म यो वेद निहितं-गुहायाम्" या वाक्य करिके जो सत्य, ज्ञान, अनंत-स्वरूप ब्रह्म सोही बुद्धिरूप गुहामें प्रत्यक्स्वरूपसें स्थित है या रीतिसें ब्रह्मात्मैकत्वका उपक्रम करिके भृगुवल्लीके छट्टे अनुवाकका अंतिम मंत्र.

(तै उ. ३-६)

"सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन्प्र-तिष्ठिता ॥"

अर्थः-जो वरुण पिताजीने उपदेश करी है और भृगुपुत्रने सम्यक्प्रकारसे ग्रहण करी ऐसी जो विद्या सो हृदयाकाश गुहामें प्रत्यक्स्वरूपसे स्थित परमानन्द स्वरूप ब्रह्मके विषे प्रतिष्ठित भई, कहिये पर्यवसानकूं प्राप्त भइ. इस रीतिसे ब्रह्मात्मैकत्वका उपसंहार कियाहै ॥ १ ॥ तथा

(आनन्दवल्ली श्रुति २.)

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" इत्यादि-(२.१)

अर्थः-"ता प्रत्यग्ब्रह्मसे आकाश उत्पन्न भया" इत्यादि अनेक श्रुतिसे आकाशादिक कार्यकी सृष्टिके कथनद्वारा ताही मूलभत प्रत्यग् ब्रह्मका वारंवार कथनरूप अभ्यास कहाहै ॥ २ ॥ तथा आनन्दवल्लीके चतुर्थ अनुवाककी श्रुतिः-(तै. उ. २ । ४) यतो वाचो निवर्त्तते अप्राप्य मनसा सह ॥

अर्थः-मनके साथ वाणीभी जा प्रत्यग् ब्रह्मकूं अप्राप्त हुई निवृत्त होवेहै. कहिये शक्तिवृत्ति कारिके

वोधन करनेकूं समर्थ होती नहीं. इस रीतिसे प्रत्यक्षादि
प्रमाण करिके अगम्यतारूप अपूर्वता प्रत्यग्ब्रह्मके विषे
कथन कियीहै ॥ ३ ॥ तथा आनन्दवल्लीके सप्तम
अनुवाकका अंतिम मंत्रः—(२. ७.)

"यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयम्प्रतिष्ठां विन्दते अथ सोऽभयं गतो भवति ॥"

अर्थः—"अदृश्य" कहिये सर्व विकाररहित तथा "अनात्म्य" कहिये त्रिविध शरीरनसे रहित तथा "अनिरुक्त" कहिये निर्वचनकूं अयोग्य जो सविशेष पदार्थ होवेहै, ताका निर्वचन बने; ब्रह्म तो निर्विशेषहै. यातें निर्वचनके योग्य नहीं. तथा "अनिलयने" कहिये अनाधार ऐसे ब्रह्मके विषे जो साधक पुरुष प्रतिष्ठित होवे कहियें आत्मभावकूं प्राप्त होवे अर्थात् ब्रह्मात्मैकत्वका साक्षात्कार करे सो पुरुष अभयकूं प्राप्त होवे कहिये भयहेतु अविद्या और तत्कार्य इनका नाश होनेते भूमानन्द स्वरूप होवेहै. या रीतिसे अविद्या

अर्थः—जो सच्चिदानंदस्वरूप आकाशसे आरंभिके देहपर्यंत सर्व जगत्‌कूं सृजके, ताके भीतर प्रविष्ट होया हुवा सर्वनकूं नियममें राखे है, ता प्रत्यक्‌स्वरूपकी गुरुवचनके बलसे अन्नादि पंचकोशनसे पर है ऐसी विवेचना कारिके, ब्रह्मसे अभेद कारिके जो साक्षात्कार करे सो पुरुष संसारभयसे रहित होया हुवा नित्यतृप्त होइ पूर्ण ब्रह्मरूप होवे है ॥ १ ॥

(८) ऐतरेयोपनिषदके अनुसार विचार.

मंगलाचरण.

"आसीत्प्रागेक एवेदमखिलमपि यो यश्च खादिक्रमेणेक्षित्वासाक्षीद्विराजं तदनु सकरणं व्यष्टिदेहं सदेवम् । तत्राथाविश्य जीवांशत उरुभयमापन्न आप्तोपदेशाद्यो ज्ञानं प्राप्य मुक्तस्तमखिलतनुगं केवलात्मानमीडे॥१॥ "

अर्थः—सृष्टिसे पूर्व यह सर्व जगत् जो एक आत्मरूपही था और उसके पीछे जो आत्मा सृष्टिविषय ईक्षण कारिके आकाशादि क्रमसे विराटकूं उत्पन्न

करता भया; अनंतर ता विराटके अवयवन करिके वागादिक करणसहित और अग्न्यादि अधिदेवतासहित व्यष्टि देहकूं पैदा करता भया;तदनंतर जो आत्मा ता व्यष्टि देहके विषे जीवरूपसे प्रवेश करिके अविद्यावशतासे अर्थात् तादात्म्याध्यास करिके उरुभयकूं कहिये जन्ममरणादि संसाररूप अनर्थकूं प्राप्त हुवा; तदनंतर ओई आप्त गुरुके उपदेशसे स्वरूपज्ञानकूं प्राप्त होयके अविद्या नाशपूर्वक मुक्त हुवा कहिये ब्रह्मभावकूं प्राप्त भया. ता सर्व शरीरमें अनुस्यूत केवल आत्मस्वरूपकी में स्तुति करूं हूं ॥ १ ॥

इस उपनिषद् भागसें पूर्व अपर ब्रह्मविषयक उपासनासहित कर्म चित्तशुद्धिके अर्थ कथन किया; और कर्म सहित उपासना करिके प्राप्य प्राणाख्य सत्यब्रह्मरूप फलभी कथन किया; तहां जो प्राणाख्य सत्यब्रह्मकी प्राप्ति, सोही मोक्ष है और सोभी ज्ञानकर्म समुच्चयरूप साधनसेही प्राप्य है. इससे पर अन्य प्राप्य नहीं ऐसा कित्येक वादी कथन करेहैं याते तिनके मतनका निराकरणके अर्थ और कर्मो

पासनारहित केवल ब्रह्मात्मज्ञानके निरूपणअर्थ यह उपनिषद् है ।

(ऐ. उ. १. १. १.)

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् ॥"

अर्थः—यह सर्व जगत् सृष्टिसे पूर्व सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, क्षुत्पिपासादि सर्व संसार धर्मनसे रहित, नित्यशुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, अजर, अमर, अभय, अद्वैत ऐसा जो आत्मा तद्रूपही था, आत्मासें अतिरिक्त सव्यापार अथवा निर्व्यापार कोईभी या नहीं.

(ऐ. उ. खं. मं. १-१-१)

"स ईक्षत लोकान्नुसृजा इति" ॥

अर्थः—सो आत्मा प्राणिनके कर्मफलभोगका अधिष्ठानभूत ऐसे लोकनकूं मैं सृजूं हूं;या रीतिसे ईक्षण करताभया ।

अनंतर आकाशादि क्रमसे अंडका उत्पादन करिके अंभआदिक लोकनकूं सृजता भया; इस

पीछे समष्टि विराट् शरीरकूं स्रजता भया; तिसके पीछे विराट्के अवयवनसें इंद्रिय तथा तिनके अधिष्ठाता लोकपालनकूं स्रजता भया; अनंतर तिन देवताओंके भोग अर्थ अल्प ऐसे व्यष्टि मनुष्यादि शरीरनकूं स्रजता भया; अनंतर अग्न्यादि देवता, वागादि इंद्रियरूप होयके मुखादि गोलकनमें प्रविष्ट भई; अनन्तर सो ईश्वर अशना या पिपासा संयोजन करता भया; अनंतर अन्नकूं पैदाकरता भया. पीछे ता ईश्वरने विचार किया कि "यह सर्व कार्यकारणसंघात पदार्थ स्रजा तो है; परंतु पुरस्वामी भोक्तारूप मेरे प्रवेश विना निरर्थक है. इस रीतिसे ईक्षण करिके पीछे मूर्ध सीमाका विदारण करि भोक्ता जीवरूपसे स्वयं प्रकाश किया तहां श्रुतिः—(ऐ० उ० खं० ३ मं० १२)

"तस्य त्रय आवसथास्त्रयाः स्वप्नाः ।"

ता जीवके तीन आवसथ कहिये क्रीडास्थान कहेहैं; जो के (१) जागरित कालके विषे चक्षुर्गोलक (२) स्वप्न कालकेविषे मन कहिये मनका अधि-

करण कंठस्थान; तथा (३) सुषुप्ति कालके विषे हृदयाकाश. ये तीनों अवस्था स्वप्नरूपही हैं. अथवा वक्ष्यमाण (१) पितृशरीर (२) मातृगर्भाशय, और (३) स्वशरीर यह तीन स्थान जानिये. यह जीव पूर्वोक्त तीन स्थानोंके विषे अनुक्रम करिके आत्मभावकूं प्राप्त होयाहुवा और स्वाभाविक अविद्या करिके गाढ सुषुप्तिमें रहा वा नहीं जागता भया; सो जीव किसभी परम दयालु आचार्यजीने वेदांतरूपी दुंदुभी नाद करिके जागृत कराया हुवा, भ्रांतिसिद्धकर्ता भोक्तारूप स्वआत्माकूं पूर्णब्रह्मस्वरूप देखता भया. कहिये अभेद करिके अपरोक्ष करता भया. इतनी वार्ता प्रथम अध्यायमें निरूपण करीहै. संपूर्ण अध्यायका तात्पर्यार्थ यह है.सर्व जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलयका करनेहारा असंसारी सर्वज्ञ जो ईश्वर, सो कारण सामग्रीके विनाही आकाशादि क्रमसें सर्व जगतकूं सृजिके जीवरूप करिके आपही प्रविष्ट भया, अनंतर 'मैंही ब्रह्महुं' इस रीतिसे स्वस्वरूपका साक्षात्कार,

करिके मुक्त हुवा; यातें सर्वशरीरमें एकही ईश्वररूपही आत्माहै अन्य नहीं,

सो पूर्ववर्णित जीव अविद्याके वश होनेसें यज्ञादिकर्म करिके धूमादिमार्गद्वारा चंद्रलोककूं पायके पुण्यक्षय अनंतर पीछे मृत्युलोकमें व्रीहि यवादिभावकूं प्राप्त होया हुवा भक्षित ता व्रीहि यवादि अन्नसें पुरुषके शरीरमें रेतसभावकं प्राप्त होवेहै. अनंतर ता पुरुषने स्त्रीयोनि के विषें सिंचित रूप जो रेतसका निर्गमन सो जीवका प्रथमजन्म कहिये प्रथम अवस्था कहियेहै । अनंतर माताके उदरसें कुमार रूप करिके जो निर्गमन सो द्वितीय जन्म कहिये द्वितीय अवस्था कहियेहै । अनंतरा आयुष्यक्षय हुये वर्तमान देहकात्याग करिके अन्य देहका जो ग्रहण सो तृतीय जन्म कहिये तृतीय अवस्था कहियेहै,इस रीतिसें सर्वभी जीव तीनों अवस्था करिके जन्म मरणके प्रबन्धकूं प्राप्त हुये संसार समुद्रमें पतित हुयेहैं याते जो जीव तीनअवस्थाके बीचमें किसीभी अवस्थाके विषें प्रत्युक्त आत्मस्वरूपका साक्षात्कार करे, सो जीव संसारबन्धनसे मुक्त होया हुवा कृतकृत्य

होवैहै, जैसें वामदेव ऋषि माताके गर्भाशयमेंही आत्म-ज्ञानकूं प्राप्त होया हुवां कृतार्थ हुवाहै, तैसें, इतनी वार्ता द्वितीयाध्यायके विषैं निरूपण करीहै, (या अध्यायमें तीनों अवस्थाका जो वर्णन किया सो वैराग्य हुये ज्ञानोत्पत्तिके अर्थ है,) पूर्वाध्यायमें जन्मत्रयका निरूपण करिके ज्ञानोत्पत्तिके अर्थ वैराग्य निरूपण किया, तोभी पदार्थशोधन विना वैराग्यमात्रसें ज्ञानोत्पत्ति होवे नहीं, यातें पदार्थशोधनपूर्वक अखंड वाक्यार्थके बोधन अर्थ यह तृतीयाध्यायहै ।

सनकादिक और वामदेवादिक आचार्यकी परंपराकरिके बोधन करी तथा ब्रह्मवेत्ताके सभामें अत्यंत प्रसिद्ध ऐसी और ब्रह्मविद्यारूप साधन करिके प्राप्य ऐसी सर्वात्मभावरूप फलकी प्राप्ति तिसकूं श्रवण करते हुये अधिकारी ब्राह्मण वैराग्यादि साधनसंपत्ति प्राप्तिके अनंतर ब्रह्म जाणनेकी इच्छा करते हुये जीवभावपर्यंत दुःखरूप संसारसें मुक्त होनेकूं इच्छते हुये विचारपूर्वक

अन्योन्यकूं प्रश्न करतेहैं, तहां श्रुतिः–(ऐ० उ० खं० ५० मं० १)

"कोयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा येन वा पश्यति येन वा शृणोति येन वा गंधा- नाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥"

अर्थः–वामदेव ऋषि जिस आत्माका साक्षात्कार करिके अमृतरूप हुवां, सो आत्मा कैसाहै ? कि जाकी अपनेभी उपासन करिये,

(या स्थानके विषें अभेद करिके जो अनुसंधान सो निर्गुण उपासना जाननीं) इस रीतिसें जिज्ञासापूर्वक अन्योन्यप्रश्न करतेंहुये ब्राह्मणनकूं पूर्वश्रवण किये श्रुति द्वयसें ऐसी स्मृति हुई. किस रीतिसें (पूर्वोक्त श्रुतिः–)

"तं प्रपदाभ्यां प्रापद्यत ब्रह्मेमं पुरुषम् ॥"

अर्थः–सो यह पुरुष शरीरके विषें अपर ब्रह्मरूप प्राण प्रवेशकरता भया; तथा अन्य श्रुतिः–

(ऐ. उ. खं. ३ मं. १२)

"सःएतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत"

अर्थः—सो आत्मा मूर्ध सीमाका विदारण करिके तद्द्वारा पुरुषशरीरमें प्रवेश करता भया. इस रीतिसें दोनों श्रुतिके प्रामाण्यसें प्राण और जीव इन दोनोंके विषैं आत्मतत्त्वकी कहिये आत्मा किसको कहना? ऐसी शंका प्राप्त भई. काहेतें तिन दोनों विनाभी शरीरकी स्थिति होना शक्य नहीं ऐसी शंका हुये अनंतर विचार किया. (उपनिषद्के आरंभकी श्रुतिः—)

(ऐ. १। १। १)

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्॥"

इस श्रुतिने विज्ञेयस्वरूप अद्वितीय आत्माके प्रतिपादनका उपक्रम किया है, याते उपास्य आत्मा एकही हुवा चाहिये. इस रीतिसें विचार करिके फिर प्रश्न किया कि सो उपास्य आत्मा कौनसा है? पीछे पुनः विचारकरनेसें विशेषबुद्धि उत्पन्न हुई. किस रीतिसें इस शरीरमें उपलब्धा (द्रष्टा) चक्षुरादि करणसंघात करिके रूपादि विषयनकी उपलब्धि करे है,

तामें जो प्राणाख्य मन यही चक्षुरादि संघातरूप करीके रहा है याते करणसंघातरूप प्राणाख्य मनकूं करणरूपत्व कहिये परार्थता होनेते सो उपास्य आत्मा नहीं, किंतु मूर्धसीमाद्वारा प्रविष्ट हुयां जो आत्मा सोही उपलब्धा होनेते उपास्य है इस रीतिसें निश्चय करते भये. मनरूप उपाधिमें स्थितिसो उपलब्धा प्रज्ञानस्वरूप ब्रह्मकी उपलब्धिके अर्थ वक्ष्यमाण ऐसी अंतःकरणकी वृत्तियां जाणनी. तात्पर्य यह है यद्यपि ब्रह्मसें अभिन्न साक्षी चैतन्यकूं अविषयत्व होनेतें ताका ज्ञान साक्षात् इदंता करिके होणा शक्य नहीं; तोभी अन्तःकरणकी संज्ञानादि वृत्तियोंका प्रकाशक होनेते तिन वृत्तिद्वारा ताका ज्ञान संभवे है—

तिन वृत्तियोंका नामः—

'संज्ञान'—कहिये संज्ञप्ति अर्थात् चेतनभाव जा करिके प्राणी चेतन कहावे है.

आज्ञान—कहिये आज्ञप्ति अर्थात् ईश्वरभाव ।

विज्ञान—कहिये लौकिक चतुःषष्टि कलादिकनका परिज्ञान ।

'प्रज्ञान'—प्रज्ञप्ति अर्थात् तात्कालिक ज्ञान ।

'मेधा'—ग्रंथ कि धारणाका सामर्थ्य ।

'दृष्टि'—कहिये इंद्रियद्वारा सर्वविषयनकी उपलब्धि ।

'धृति'—कहिये धारण अर्थात् जावृत्ति कारिके खिन्न इंद्रियकुं स्तंभित करसके सो.

'मति'—कहिये मनन.

'मनीषा'—कहिये मननके विषे स्वतंत्रता.

'जूति'—कहिये रोगादिकनके चिंतनसें दुःखी होणा चित्तमें.

'स्मृति'—स्मरण.

'संकल्प'—कहिये रूपादिकनका नीलपीतादिभाव कारिके संकल्पकरना सो.

'क्रतु'—कहिये अध्यवसाय—(निश्चय.)

'असु'—कहिये प्राणन, अपाननादिरूप जीवनक्रियानिमित्त जो वृत्ति सो.

'काम'—कहिये दूरस्थित विपयनकी आकांक्षारूप तृष्णा.

'वश'—कहिये स्त्रीसंपर्कादिकनका अभिलाप.

ज्ञप्तिमात्र उपलब्धा साक्षीस्वरूप ब्रह्मचैतन्यकी उपाधिभूत ऐसा जो पूर्वोक्त सर्ववृत्तियां सो ज्ञापक कहिये जणावनेवाली होनेते साक्षी चैतन्यकी नामरूपहैं, कहिये बोधक हैं; यही ब्रह्मस्वरूप आत्मा प्राणादि उपाधिमें प्रतिबिंबसे प्रविष्ट होया हुवा हिरण्यगर्भ, वैराज इंद्र, अग्नि, इत्यादि रूप कहियेहै, तथा सर्वशरीरनका उपादनरूप पृथिव्यादि पंचभूत और स्थावर जंगमात्मक अंडजादि चतुर्विध प्राणीविशिष्ट ऐसा सर्वजगत प्रज्ञानेत्रहै, कहिये साक्षीचैतन्यकी सत्ता स्फूर्तिसेंहीं स्फूर्तिवालाहै; तथा उत्पत्ति, स्थिति, लय कालके विषैं प्रज्ञप्ति स्वरूपके विषैंभी प्रतिष्ठितहै, कहिये प्रज्ञप्तिका आश्रयण करिके रहा है, और सो प्रज्ञप्ति स्वरूपही सर्वका अधिष्ठानभूत है याते "प्रज्ञानं ब्रह्म" कहिये प्रज्ञानस्वरूप साक्षचैतन्य सर्व उपाधिसें विनिर्मुक्त होया हुवा एकब्रह्म रूपही है, इस रीतिसें कोई पुरुष प्रज्ञानस्वरूप प्रत्यगात्मासें अभिन्न ब्रह्मका साक्षात्कार करे सो अमृतरूप होवे है.

या उपनिषद्में "आत्मा वा." या वाक्य करिके यह जगत् सृष्टिसे पूर्व एक निर्विशेष आत्मस्वरूपही था. इस रीतिसें उपक्रम करिके अध्यारोपापवाद न्याय करिके "प्रज्ञानं ब्रह्म" या अंतिम (महा) वाक्य करिके जो निर्विशेष साक्षी चैतन्यस्वरूप सो ब्रह्म रूपही है. इस प्रकारसें प्रत्यक्स्वरूप और ब्रह्मकी एकताका निरूपण करिके उपसंहार कियाहै, याते इस उपनिषद्के सर्व मंत्रनका ब्रह्मात्मैकत्व प्रतिपादनमें तात्पर्य है. तहां श्लोक,

"यो लोकाल्लोकपालान्सकलमपि पुरा भोग्य जातं हि तेषां सृष्ट्वांतः संप्रविश्य स्थिरचरम-खिलं प्रेरयत्यांतरस्थः ॥ दृष्ट्वा नात्रैपदन्यत्सकलजगदधिष्ठानरूपात्मेकः प्रज्ञानं ब्रह्म येनाधिगतमिति स नावाप्तकामोऽमृतः स्यात् ॥ १ ॥

अर्थः—जो लोकनकूं तथा लोकपालनकूं तथा सर्व भोग्यजातकूं सृजिके ताके अंदर प्रवेश करिकें

स्थिरचरात्मक सर्वकूं प्रेरे है कहिये व्यापारवाला करे है सो प्रत्यगात्मस्वरूप मैं हूं और सर्वजगत्का अधिष्ठान ब्रह्मरूप मैं हूं, मेरे स्वरूपसें किंचिन्मात्रभी अन्यस्वरूप वस्तु नहीं इसरीतिसें "प्रज्ञानं ब्रह्म" कहिये प्रत्यगभिन्न ब्रह्म जिसने साक्षात् किया होवे और प्राप्त हुयेहैं सर्वकाम जिनको अर्थात् परिपूर्णकाम होइके अमृतरूप होवेहै. ॥ १ ॥

(१) छांदोग्य उपनिषद्के अनुसार विचारः—

मंगलाचरण. (भाष्यका)

"नमो जन्मादिसंबंधबंधविध्वंसहेतवे ॥
हरये परमानंदवपुषे परमात्मने ॥ १ ॥"

अर्थः—जन्ममरणादि संबंधरूप बंधके विध्वंसकरनेमें हेतुभूत और परमानंदस्वरूप परमात्मारूप श्रीहरिकूं नमस्कार ॥ १ ॥

या छांदोग्य उपनिषद्में प्रथम पंचाध्याय करिके अंतःकरणशुद्धताके संपादक इसतेही वस्तुतत्त्वके अवभासक ऐसे ॐकार, साम, अग्नि आदिक तिनकी उपासना करीहै; तिनके बीचमें तृतीयाध्यायमें

(छां. ३ । १४ । १)

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान्' (यह सर्व जगत् ब्रह्ममात्रही है काहेते तज्ज, तल्ल, तदन्हे कहिये ब्रह्मसेंही उत्पत्ति, स्थिति, लयकूं प्राप्त होवेहै वास्ते इस रीतिसे कथन कियाहै इस जगतके उत्पत्ति, स्थिति, लय ब्रह्मसें किस रीतिसे होवेहैं ताका विस्तारसें कथन अर्थ या छट्ठे अध्यायका आरंभहै. उद्दालक श्वेतकेतुके संवादद्वारा तहां श्रुतिः—

(छां. उ. प्र. ५ मं. १ । २)

"उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति"

अर्थः—हे श्वेतकतो ! शास्त्रद्वारा श्रुत जो एकवस्तु तिसकरिके अन्यअश्रुतभी श्रुत होवेहै, तर्कसें जा वस्तुका मनन करनेसें अन्य सर्व अमृतभी मृत होवेहै, तथा जा एक वस्तुके विज्ञान करिके अन्य अविज्ञातभी विज्ञात होवे है तिस आदेशकूं कहिये शास्त्र, आचार्य उक्तिसे गम्य ऐसी वस्तु तेने आचार्यकूं पूछी रही ?

तब शिष्यने कहा कि हे भगवन् ! यह वार्ता कैसी संभवे ? ऐसी शिष्यकूं आशंका होनेतें गुरूनें कहा. तहां श्रुतिः—

(छां. ६ । १ । ४-५-६)

"यथा सोम्यैकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात् वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् । यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्याद्वाचारंभणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् । यथा सोम्यैकेन नखनिकृंतनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातं स्याद्वाचारंभणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येवं सत्यम्."

अर्थः—हे सोम्य ! जैसें एकमृत्तिकाका पिंड जाणनेसें घटशरावादि सर्वभी मृन्मय ज्ञात होवैहै, तैसें वाणी करिके आरभ्यमाण नाम सो विकारमात्र है,वास्तव तो मृत्तिकाही सत्य है और हे सोम्य ! जैसें सुवर्णका पिंड जाणनेसें कटककुंडलादि सर्वभी कार्य सुवर्णमय

ज्ञात होवेहै, तामें जो वाणीकरिके आरभ्यमाण कटक कुंडलादि नाम सो तो विकारमात्र है, किंतु सुवर्णही सत्यहै और हेसोम्य! जैसें एक लोहखंड जाणनेसें क्षुर असि इत्यादि सर्वकार्य लोहमय ज्ञात होवेहै, तामें जो वाणी करिके आरभ्यमाण क्षुर असि इत्यादि नाम सो तो विकारहै, किंतु लोहही सत्यहै. इत्यादि दृष्टान्तनसें एकविज्ञानसें सर्वविज्ञानका उपपादन करिके दार्ष्टांतमें निरूपण करनेवास्ते (छां. उ. ६।२।१)

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्"

अर्थः—हेसोम्य! यह सर्वजगत् सृष्टिसें पूर्व सजातीय, विजातीय स्वगत भेदरहित, और सूक्ष्मनिर्विशेष सर्वगत, एक, निरंजन, निरवयव, विज्ञानस्वरूप सर्ववेदांतगम्य जो सन्मात्र सत्स्वरूपही था"

इस रीतिसें सर्वभेदरहित, सद्वस्तुका उपक्रम करके अनंतर 'तदैक आहुः' इस वाक्यकरके असद्वादकी-शंका करिके पीछे "कथमसतः सज्जायेत" इस वाक्यसे ता असद्वादका निराकरण करिके पीछे सद्रूप ब्रह्मके विषे विजातीय जडके भेदका अभाव प्रतिपादन करने

रंभण विकाररूप नाममात्र अग्न्यादितत्व निवृत्त होवेहै किन्तु तीनहीरूप सत्य है

अब इन तीनों रूपकूंभी असत् जणावने अर्थ तथा तीन तीनोंका मूल सत्स्वरूप दर्शावने अर्थ श्रुति

(छां. ६–८–४)

"तस्य क्व मूलं स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेनापोमूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गे न तेजो मूलमन्विच्छतेजसा सोम्य शुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाःसत्प्रतिष्ठाः"

अर्थः—श्वेतकेतूने प्रश्न किया कि हे गुरो ! शरीर रूप शुंगका कहिये कार्यका मूल कौन है ? ताके उत्तरमें अन्न कहिये पृथिवी ताका मूलहै; और अन्न-रूप शुंग कहिये ताकामूल जल जाण, तथा जलरूप शुंग करिके ताकामूल तेज जाण, तेजरूप शुंग करिके एकमेवाद्वितीय परमार्थ सत्य सदात्मरूप मूलको जाण, हे सौम्य ! यह स्थावरजंगमात्मक सर्व प्रजा

"सन्मूलाः" कहिये सत्स्वरूपहै मूलकारण जाका ऐसीं और स्थितिकालके विषेभी "सदायतनाः" कहिये सत्स्वरूपके आश्रयवाली ऐसी और अंतके विषेभी "सत्प्रतिष्ठाः" कहिये सत्स्वरूपमें लीन होनेवाली ऐसीहै. इस रीतिसें आकाशादि सर्वजगत्का मिथ्यात्व कथन करिके पीछे देह, वाक्, प्राण और मन इन चारोंकूं अन्नादिकनका कार्य होनेते अनात्मभाव कथन करिके, श्रुतिः—

(छां. ६ । ८ । ७)

"सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि"

अर्थः—सो ब्रह्मस्वरूप सूक्ष्मतमहै और यह जगत् ब्रह्मात्मकही है और सो ब्रह्मस्वरूपही सत्यहै. तथा सोही साक्षी आत्मारूप है और हे श्वेतकेतो ! सो साक्षी आत्मासें अभिन्न सद्ब्रह्मस्वरूपही तूं है इत्यादि वाक्यनसे श्वेतकेतुकूं द्वारभूत करिके मुमुक्षु जनकी तत्तदाशंकाका निराकरण पूर्वक सूक्ष्मसर्वात्मक अद्वितीय परमार्थ सत्य आत्मासें अभिन्न ब्रह्मका नव वखत

ऐसा क्यों जाणता नहीं ? ऐसी आशंकाते (छां·६ । १० । १) "इमाः सोम्य नद्यः" इत्यादि वाक्यकरिके जैसें मेघोंने समुद्रसे आकर्षण करिके विसर्जित नदियोंका रस (जल) एक होनेते समुद्रसें आगागमन दुर्विज्ञेयहै; तैसेंही ब्रह्मतें उत्थित हुये संसारीयनको हम सत्संपन्न होईके उत्थित भयेहैं ऐसा ज्ञान होता नहीं" इस रीतिसें शंकाका परिहार करिके (३) पीछे सुषुप्तिके विषैं जीवकूं करणका अभाव हुयेते समुद्र तरंगादिकनकी न्याई नाशकी शंका होनेते (छां. ६। ११ । १)

"अस्य सोम्यमहतो वृक्षस्य"

इत्यादि वाक्य करिके "जैसें वृक्षका कुठारादिकनसें छेदन कियेतेभी रसस्राव होवेहै ताते सजीवनताहै तैसेंही सुषुप्तिके विषैंभी देहमें रुधिर दर्शनतें जीवका नाश होता नहीं" इस रीतिसें शंकाका परिहार करिके पूर्वोक्त अर्थकाही स्थापन करनेते (४) पीछे "अतिसूक्ष्म ब्रह्मसें स्थूलजगत्की उत्पत्ति कैसी होवेहै ? ऐसी शंका उत्पन्न होनेते (छां. ६ । १२ । १)

"न्यग्रोधफलमतः"

इत्यादि वाक्य करिके जैसें वटधानामें अन्तर्गत सूक्ष्मबीज रूपसें महावटकी उत्पत्ति होवे है, तैसेही सत् सूक्ष्म ब्रह्म स्वरूपसें जगत्‌कीभी उत्पत्ति सम्भवे ॥ या रीतिसें शंकाका निराकरण करिके फिरभी पूर्वोक्त अर्थ स्थापन करनेते (५) अनंतर जगतका मूलकारण सद्ब्रह्म उपलभ्यमान क्यों होता नहीं ? ऐसी शंका होनेते (छां. ६।१३।१) "लवणमेतदुदकेवधाय" इत्यादि वाक्य करिके जैसें जलमें प्रक्षित लवणखंडका नेत्रसें नेत्र करिके अनुपलंभ होवे है अर्थात् अदर्शन होवे तोभी जलका पान करनेसें लवणका सद्भाव निश्चय होवे है, तैसें चक्षुरादि इंद्रियन करिके अदृश्य ऐसें ब्रह्मका कार्यरूप लिंग करिके सद्भाव निश्चय होवे है, या रीतिसे शंकाका समाधान करिके पूर्वोक्त अर्थकाही उपदेश किया (६) तदनंतर 'ब्रह्मके साक्षात्कार विषैं उपाय कौन है, ऐसी आशंका होनेते (छां. ८६।१४।१)

"यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्यः" इत्यादि वाक्य करिके 'गंधारदेशसें चौरने कोई पुरुषकूं बांधके अरण्यमें रखा, और आखोंमें पट्टा बांधनते आक्रोश करता हुवा श्रवण करिके किसी दयालु पुरुषने तिसका पट्टा छोडके 'इस दिशातरफ गांधार देशहै, तहां तू जा' ऐसा उपदेश करनेते सो पुरुष तहां जावेहै. तैसेही आचार्यकृत उपदेशसें अविद्याकी निवृत्ति और ब्रह्मका साक्षात्कार होवेहै, ऐसा कहिके तत्त्वविद्याका उपदेश किया (७) तदनंतर सो विद्वान्पुरुष किसप्रकारसें ब्रह्मरूपकूं संपन्न होवेहै ? ऐसी अपेक्षा होनेते (छां. ६।१५।१) "पुरुषं सोम्योपतापिनं" इत्यादि वाक्यकरिके 'ज्वरादि उपद्रवसें पीडित और मुमूर्षु पुरुषका जहांतक वाक्मनके विषैं, मन, प्राणके विषैं प्राण तेजके विषैं तथा तेज परदेवताके विषैं संपन्न हुवा नहीं, तहांतक तिसकूं भान होवेहै पीछे जाणता नहीं तैसेही विद्वान् पुरुषभी पूर्वोक्त वागादिकर्म करिके परदेवताविषैं संपन्न होवेहै; तामें विशेष यहहै जो अविद्वान् सो पूर्वोक्त रीतिसें सत्संपन्नहुवाभी उत्थान पायके

पीछे व्याघ्रादिरूप होवेहै, और विद्वान तो सत्संपन्न होईके पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होता नहीं, ऐसा कहिके उसीतत्त्वका उपदेश किया (८) तदनंतर मरिष्यमाण और मोक्ष्यमाण ये दोनोंभी सत्संपन्न होवे तब अविद्वान्की न्याई विद्वान्भी पुनरावृत्तिकूं क्यों प्राप्त होता नहीं ? ऐसी शंका हुये (छां. ६। १६। १) "पुरुषं सोम्योत हस्तगृहीतमानयति" इत्यादि वाक्यकरिके जैसें जो चोरी किया हुवा ताकूं तथा न कियी होवे ताकूंभी हात बांधिके राजपुरुष राजाके पास लेगये और कहा कि ये दोनोंही चोरहैं, तब दोनोही बोले हमने चोरी करी नहीं, पीछे उनका न्यायकरनेके लिये राजाने दोनोंके हाथमें तप्त परशु दिये तिनमें मिथ्याभाषी था सो दग्ध भया, और सत्यभाषी दग्ध हुवा नहीं तैसेंही अनात्म देहादिकनके विषैं आत्मताका अभिमानी अनृताभिसंधी जो अविद्वान्पुरुष सो पुनरावृत्तिकूं पावेहै और देहादिक अनात्माके विषैं सत्यत्वाभिमान रहित सत्य ब्रह्माभिसंधी जो विद्वान्पुरुष सो पुनरावृत्तिकूं पावे नहीं. (९) जिस सत्स्वरूप आत्माके विषैं अभि-

संधानसें मोक्ष और अनभिसंधानसें बंधहै, तथा जो सदात्मस्वरूपजगत्‌का मूलहै,तथा सर्वभी जगत् यदात्मक कहिये सत्स्वरूपहै; और जो सत्स्वरूप अमृतहै अभय-शिव, अद्वितीयहै; सोही सत्यहै, और हे श्वेतकेतो ! सो सदात्मस्वरूप तूंही है, इसरीतिसे उद्दालक मुनि श्वेतकेतु पुत्रकूं सर्व मुमुक्षुके हितार्थ तत्त्वोपदेश करते भये इतनी वार्ता छट्ठे अध्यायमें है, इस छट्ठें अध्यायमें मूलभूत परमतत्त्वका उपदेश किया, तोभी अर्वा-चीन कहिये पीछेके जो विकार तिनका तत्त्वोंका निर्देश किया नहीं, कहिये प्रदर्शित किये नहीं; याते नामसे आरंभीके प्राणपर्यंत विकारनका तत्त्वक्रमसें निर्देश कारिके तद्द्वाराभी शाखा चन्द्रन्यायसें भूमाख्य निरति-शयतत्त्वका साक्षात्कार करावने अर्थ सप्तमाध्यायका प्रारंभ है.

नारदमुनि चारोंवेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व,) षट्शास्त्र (वेदांत, न्याय, मीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक) इतिहास, पुराणादि सर्वविद्याका अध्ययन करनेंसेंभी शोकातुर हुये, याते शोकनिवृत्त्यर्थ भगवान्

सनत्कुमारजीके पास शरण आये और प्रश्न किया, तहां श्रुतिः—(छां. ७ । १ । ३.)

"सोहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मवित् श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यः । तरतिशोकमात्मविदिति सोहं भगवः शोचामि तं मा भगवान् शोकस्य पारं तारयत्विति ॥"

संक्षेपार्थ—हे भगवन् ! पूर्वोक्त सर्वविद्याका अध्ययन कियेभी मेरा शोकनिवृत्त हुवांनहीं. याते शोकके पार करों, ताके उत्तरमें सनत्कुमारजीने कहा तहां श्रुतिः—(छां. ७ । १ । ४)

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थः"

इत्यादिसें अध्ययनकिया जो ऋग्वेदादि नाम ताकूंही ब्रह्मरूप जाणके उपासनाकर ! प्रतिमाके विषे विष्णुके न्याईं, फिर नारदने कहा किः—नामसेंभी जो अधिक होवे ताकूं कहो ? ताके उत्तरमें सनत्कुमारजीने वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न,

आप,तेज, आकाश, स्मर, आशा, प्राण इसरीतिसे प्राणांत सर्व विकारनका तत्तत्फलसहित निर्देश किया, तिसते अनंतर नारद प्राणकूंही सर्वसें श्रेष्ठ और आत्म-स्वरूप जाणिके आपने विषैं कृतार्थता मानताहुवा प्रश्नसें विराम पाया तदनंतर अनृत ब्रह्मके विज्ञानसें संतुष्ट ऐसें शिष्य नादरकूं प्राणके विषैं आत्मतत्त्वके आग्रहसें छुडावते हुये सनत्कुमारजीने कहा कि हे शिष्य ! प्राण तो नामादिकनकी अपेक्षासे श्रेष्ठहैं, परंतु प्राणसेंभी अधिक सत्यहै याते सो जाणना चाहिये, तब नारदनें कहा किः—ता सत्यका उपदेश करो ! पीछे सनत्कुमारने कहा कि जो विज्ञानवान् सो ही सत्यकहियेहै यातें विज्ञान जाणनेयोग्य है, इस रीतिसें प्रश्नोत्तररूप करिके 'विज्ञान' सें अधिक 'मनन' और तासे अधिक 'श्रद्धा' तासे अधिक 'निष्ठा' तासें अधिक 'कृति' (इंद्रियका संयमन और चित्तकी एकाग्रता.) तासेभी अधिक सुखहै काहेते निरातिशय सुख मेरेकूं जरूर होना चाहिये ऐसा जब माने तबही ताकृतिके विषें प्रवृत्त होवेहै; तब नारदने प्रश्न किया कि 'इस निरतिशय सुखका उपदेश

करो.' ताके उत्तरमें गुरुजीने कहा कि (छा. ७ । २३ । १)

"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति"

(जो भूमा (व्यापक) सोही निरतिशय सुखरूपहै और अल्पके विषैं सुख नहीं) याते भूमाका स्वरूप जाणनां जापीछे ताका प्रश्नकरनेतें उत्तरमें सनत्कुमारजीने कहा तहां, श्रुतिः—(छां. ७ । २४ । १)

"यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यं स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥ १ ॥"

अर्थः—जा स्वारूप तत्त्वके विषैं अन्य द्रष्टा, अन्य करण कारिके अन्य द्रष्टव्यकूं देखता नहीं, तथा अन्य श्रोता अन्य श्रोतव्यकूं श्रवण करता नहीं; तथा अन्य विज्ञाता अन्यकरण कारिके अन्य विज्ञेयकूं जानता नहीं

सो भूमा; अर्थात् लोकप्रसिद्धदर्शन, श्रवणादिकनका जो अविषयव्यापक, आनन्दरूप सो भूमा तात्पर्य कि जिस तत्त्वके विषे सांसारिक कोईभी व्यवहार नहीं सो भूमा और जो अविद्याविषयके विषैं अन्यकूं अन्यकरिके देखेहै श्रवण करेहै, तथा जाणेहै; सो अल्प, (अविद्याकालके विषैं होनेवाला.) याते जो भूमा सोही अमृतस्वरूप है;और जो अल्प सो मर्त्यरूप है;और सो भूमस्वरूपही तेरा आत्माहै इस रीतिसें आत्मासे अभिन्न ब्रह्मका उपदेश करनेते नारदका शोक दूरकारिके विराम प्राप्त होते भये.

यद्यपि दिक्, देश, काल आदि भेदरहित ब्रह्म "सदेवसौम्येदम्" "एकमेवाद्वितीयं" "आत्मैवेदं सर्वम्" इत्यादि वाक्यनकरिके छट्टे और सातमें अध्यायके विषैं दर्शायके निश्चय कराया, तथापि मंदबुद्धियनकी देशकालादि भेदविशिष्टबुद्धि सहसा परमार्थस्वरूपकूं विषय करनेके लिये समर्थ होती नहीं और ता स्वरूपकूं जाणे विना परपुरुषार्थकी सिद्धि होवे नहीं, याते ताका निश्चय करावने अर्थ हृदयपुंडरीक (कमल)

प्रदेशके विषै सदात्माका उपदेश करनेके लिये, तथा आत्मतत्त्व यद्यपि निर्गुणहै तोभी मंदबुद्धि पुरुषनकूं सगुण कहना युक्तहै याते सत्यकामादिगुणवत्व कथन अर्थ और ब्रह्मचर्यादि साधनके विधानअर्थ आठमें अध्यायका प्रारंभ है.

यह विकारी शुंग कहिये कार्यरूप देहके विषैं नामरूपके व्याकरण अर्थ जो सदाख्य ब्रह्मतत्त्व जो जीवात्मरूपकरिके प्रविष्ट हुवाहै, इस रीतिसें छट्टे अध्यायमें कहाहै, याते उपसंहार कियेहैं करण जिनोंने और बाह्य विषयनसें विरक्त तथा विशेष करिके ब्रह्मचर्यादि साधनयुक्त ऐसे, और सत्यकामादिगुणयुक्त ब्रह्मका ध्यान करनेवाले अधिकारीयनके हृदयपुंडरीकके विषैंहीं सदात्मस्वरूप उपलभ्यमान होवेहै. इसरीतिसे (छां. ८ । १ । १)

"अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं"

इत्यादि श्रुतिवाक्यसें बोध किया,ताकेंही दृढीकरण अर्थ इंद्र विरोचनकी आख्यायिकाः—(छां.८।१।५)

"एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युवि-शोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः"

अर्थः—'अपहतपाप्मा' कहिये धर्माधर्माख्य पापनसे रहित, और 'विजरः' जरारहित, तथा 'विमृत्युः' कहिये मृत्युरहित, तथा 'विशोकः' कहिये इष्टके वियोगजन्य मनःसंतापसें रहित, तथा 'विजिघत्सः' कहिये अशनकी इच्छासें रहित, तथा 'अपिपासः' कहिये पानकी इच्छासे रहित, तथा 'सत्यकामः' कहिये सत्यहै काम जाके, तथा 'सत्यसंकल्पः' कहिये सत्यहै संकल्प जाका, ऐसे आत्माका स्वरूप इंद्र और विरोचनके अनुचर दो ब्रह्मसभामें थे तिनोंने ब्रह्माके मुखसें श्रवण करिके इंद्रकी सभामें और विरोचनकी सभामें कथन किया; ताकूं परोक्षतासें श्रवण करिके इंद्र और विरोचनने ता आत्मस्वरूपके अपरोक्षज्ञानार्थ प्रजापतिकूं शरणजायके आत्मवस्तुका प्रश्न किया; अनंतर प्रजापतिने दोनूंकूं बत्तीसवर्षपर्यंत ब्रह्मचर्य रखनेकूं कहा तैसा

करनेसें अनंतर आत्माका उपदेश किया तहां श्रुति-(छां. ८।७।४)

"य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्म ॥ इति ॥"

अर्थः—जो आक्षिके विषैं पुरुष दीखताहै, सोही आत्माहै, और अमृत अभय ब्रह्म यही है. या उपदेशसें दोनोंने विचार करिके छायापुरुषही आत्मा जाणिके ताके दृढीकरणार्थ प्रश्न किया किः—अक्षिमें, जल शरावमें आदर्शमें जो छायापुरुष दीखताहै तामें आत्मा कौनहै ? ताके उत्तरमें कहा किः—वस्त्रालंकार धारिके पीछे जल शरावादिकमें देखो, किस रीतिसें दीखताहै ? पीछे ताप्रकारसें देखा, और कहा कि वस्त्रालंकार सहित छायापुरुष दीखेहै; तब प्रजापतिने कहा कि यही तुमारा आत्माहै ऐसा सुनके देहकूं आत्मा जानके गये, तामें विरोचनने दूसरा विचार न करके अपनी सभामें जायके सर्व असुरनकूं देहही आत्माहै, ऐसा उपदेश किया.

इंद्रने मार्गमेंही विचार किया कि बिंबरूप देहके विषें वस्त्रालंकारादि धारणकरनेते छायापुरुषमेंभी सोही दीखताहै, तथा बिंबके विषें आंधत्व, काणत्व, खंजत्वादि होते प्रतिबिंबमेंभी दिखताहै; याते ऐसा देह अमृत, अजर, अभयरूप आत्मा किसरीतिसें होवे, ऐसा जाणिके ब्रह्माके पास फिर आयके प्रश्न किया, तब फिर बत्तीसवर्षतक ब्रह्मचर्यपालन करिके आना. उक्त रीतिसे ब्रह्मचर्य धारणकरिके इंद्र आया, तब ब्रह्माजीने कहा कि, जो स्वप्नमें पुरुषहै ताकूंही आत्मा जान पीछे ता ऊपरभी विचार करिके तामेंभी दोष देखा कि रोदन, तथा दुःखित्वादि स्वप्न पुरुषमेंभी होवेहै, याते सो भी आत्मा संभव नहीं. पीछे फिरसे बत्तीसवर्ष ब्रह्मचर्य रखायके ब्रह्माजीनें कहा कि सुषुप्तिमें स्वप्नकूं जाने नहीं, सो आत्मा जान, ता ऊपरभी विचार करिके दोष देखाके सुषुप्तपुरुष तिस अवस्थाके विषें मैं हूं ऐसा जाने नहीं, याते सुषुप्ति पुरुषभी आत्मा संभवे नहीं अनंतर पंचवर्ष ब्रह्मचर्यधरवायके ब्रह्माजीने कहा कि

हे इंद्र जो मृत्युग्रस्त शरीर सो आत्मा नहीं किंतु आत्माका भोगायतन है और आत्मा तो अमृतरूप है, ताकूं प्रियअप्रियादिकनका स्पर्शभी नहीं सो आत्मा कोई सद्गुरुने बोधित कियाहुवा इस शरीसे समुत्थान पायके कहिये देहसें आपना स्वरूप विलक्षण जाणिके देहात्मभावनाका त्याग करिके स्वयंज्योतिस्वरूपसें अभिनिष्पन्न होवेहै यही आत्मा चक्षुरादि सर्वइंद्रियनके विषैंभी द्रष्टारूप है, और चक्षुरादि इंद्रिय इसके करणरूपहै, और रूपादि सर्व विषयरूप है कहिये दृश्य है, इस रीतिसे द्रष्टा दृश्य दर्शनरूप त्रिपुटी करिके विलक्षण शुद्ध सदात्मस्वरूप लक्षित करायके ब्रह्माजी उपरामकं प्राप्त होते भये, या उपनिषदके तात्पर्यार्थका श्लोकः—

"मृद्रूपे ज्ञात, एतद्घटमुखमखिलं तज्जमस्मान्न भिन्नं तद्वच्छ्रीदेशिकेनानुभवति सततं तत्त्वमस्येवमुक्तः ॥ यस्मादाकाशमुख्यं भवति जग-

स्वयं होनेते अतिरिक्त चलनके हेतुका अभाव है. १. प्रथम मात्राका उपासक मेधावी पुरुष ऋग्वेदरूप अकार मात्राकारिके मनुष्यलोककूं प्राप्त होवेहै; और द्वितीय मात्राका उपासक यजुर्वेदरूप उकारमात्रा कारिके सोम लोककूं प्राप्त होवेहै;तथा तृतीय मात्राका उपासक साम-वेद रूप मकारमात्रा करिके ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवेहै; मेधारहित पुरुष प्राप्त होवे नहीं, ता त्रिविध लोकरूप अपर ब्रह्मकूं ॐकाररूप साधन कारिके प्राप्त होवेहै. और जो अक्षर, सत्य, पुरुषाख्य, शान्त तथा जाग्रत्स्वप्न सुषुप्त्यादिवर्जित, अजर,अमृत, निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्म ताकूंभी प्राप्त होवेहै. २ इतनी वार्ता पंचम प्रश्नके उत्तरमें निरूपण करी है.-

प्रथम कार्यकारणात्मक सर्वजगत् विज्ञानात्माके साथ सुषुप्तिकालमें पर अक्षर स्वरूपके विषे लयको प्राप्त होवेहै, ऐसा कहा, तिसने प्रलयकालमेंभी ताही अक्षर स्वरूपके विषे सर्व जगत्का लय होवे और तापर अक्षरसें फेरि उत्पन्न होवे यह वार्ताभी अर्थात् सिद्ध भई.कारण भिन्नमें कार्यका लय होवे नहीं, याते आत्मासेही

अर्थः—जाके अज्ञानवशसे रज्जुकेविषैं सर्पकी न्याईं यह विश्व सत्य सदृश दीखेहै; और जाके ज्ञानसें भ्रमात्मक विश्वकी हानि होयहै ता पुरुषोत्तमपरमात्मा-कूं मैं वंदनकरूंहूं ॥ १ ॥

वेदांतवाक्यनका समूहरूप जो कमल ताके विका-सकरनेमें सूर्यरूप और वादियनके पक्षरूप जो अंध-कारसमूहके ध्वंसकरनेमें अत्यंत समर्थ ऐसे श्रीगुरुजीकूं नमस्कार करूंहूं ॥ २ ॥

यह वाजसनेयी ब्राह्मणोपनिषद् संसारसें मुक्त होनेकूं इच्छते मुमुक्षुजनकूं संसारकी हेतुभूत अविद्या और तत्कार्यके निरासमें मुख्य साधनभूत ऐसी ब्रह्मा-त्मैकत्वविद्याकी प्रतिपत्ति कहिये ज्ञान ताके अर्थ है, भाष्यकार कहेहै श्रुति (बृ. ४ । ४ । १९) "एकधै-वानुद्रष्टव्यम्" (बृ. ४ । ४ । २० ।) "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" इत्यादिवा-क्यनकरिके सर्व उपनिषदनमें विद्या और अविद्याके पृथक् पृथक् विषय दर्शायेहैं, कहिये अखंडैक्यस्वरूप

दिदं ब्रह्म तच्चाहमस्मीत्येतन्मत्तो न भिन्नं स
भवति मनुजो ब्रह्म न ब्रह्मवेत्ता॥ १ ॥"

अर्थः—जैसें मृत्तिकारूप जाणनेते तासे उत्पन्न घटशरावादिसर्वपदार्थ मृद्रूपतासें जाण्याजावेहै; भिन्न-रूप नहीं; तैसेही श्रीआचर्यजीने "तत्त्वमसि" (सो शुद्ध ईश्वरही त है.) इसप्रकारसे उपदेशकरनेते जिस्से आकाशादिक सर्व जगत् उत्पन्न होवेहै, सो ब्रह्म मैंही हूं, और कार्यरूप सर्व जगत्भी मैंहीहूं मेरेसें भिन्न किंचिन्मात्रभी नहीं. इसरीतिसें प्रत्यगभिन्नब्रह्मस्वरूप रूपका जो साक्षात्कार करे सोही ब्रह्मरूप कहियेहै, ब्रह्मवेत्ता नहीं. ॥ १ ॥

(१०) बृहदारण्यकोपानिषद्के अनुसार विचारः—

भाष्यका मंगलाचरण.

"यदविद्यावशाद्विश्वं दृश्यते रशनाहिवत्।
यद्विद्यया च तद्धानिस्तं वंदे पुरुषोत्तमम्॥१॥
नमस्त्रय्यंतसंदोहसरसीरुहभानवे।
गुरवे परपक्षौघध्वांतध्वंसपटीयसे ॥ २ ॥"

अर्थ है प्राणाख्य अपरब्रह्मका जाननेवाला दृप्त(गर्विष्ठ) बालाकी नामक ब्राह्मणनें अजातशत्रुनामक काशी-राजाके पास जायके ब्रह्मोपदेशकी प्रतिज्ञा करिके सूर्यादिनके विषैंही अपरब्रह्मका कथन किया; तब अजातशत्रुराजाने कहा के "तैंने ब्रह्मका मुख्य-स्वरूप जाना नहीं है, ताते शरमायके तिसने राजाकूं कहा के तुम मेरेकूं मुख्य ब्रह्मका उपदेश करो, तब राजाने दानतरीके सुपुप्तपुरुष दर्शायके ताके विषैं प्राणात्माकूं भोग्यता प्रतिपादन करिके विज्ञानमय, स्वय ज्योति, प्राणादिसर्वके उत्पत्ति, स्थिति, लयका अधिष्ठानभूत याते सत्य, प्राणादिकनसेंभी सत्यरूप ऐसे आनन्दात्माका ब्रह्मसे अभेद करिके उपदेश किया, अब ब्रह्मज्ञानमें अंगभूत संन्यासविधि कहना है, याते मैत्रयी की आख्यायिकाः—याज्ञवल्क्यमुनि पारिव्राज्य (संन्यास) कूं इच्छतेहुये आपनी भार्याकूं कहते भये हे मैत्रेयि ! मैं गृहस्थाश्रमका त्याग करिके संन्यासकूं इच्छताहूं, याते तूं और कात्यायनी इन दोनोके साथ

दांपत्यभाव संबंध तोडना है, याते तुम दोनोंने अवश्य अनुमति देणी; पीछे मैं तुम दोनूंकूं द्रव्यका विभाग देके जाउंगा. तब मैत्रेयीने कहा केः—आप मेरेकूं द्रव्यसे पूर्ण अखिल पृथ्वी देंगे तोभी तिसकरिके अमृतभावकूं मैं प्राप्त होनेवाली नहीं; याते मेरेकूं द्रव्य अपेक्षित नहीं. कात्यायनीकूंही सर्व द्रव्य देणा मेरेकूं तो आप अमृतत्त्वका साधन जो जाणतेहो ताकाही उपदेश करो जाकरिके मैं अमृतरूप हो जाउं तब याज्ञवल्क्यजीने प्रसन्न होयके कहा के हे प्रिय स्त्री ! यहां आयके लज्जाका त्याग करिके सन्मुख स्थित हो, और मैं व्याख्यान करूहुं ताकूं एकाग्रचित्तकरिके श्रवण करिके निश्चय करनां अमृतत्त्वके साधनभूत वैराग्यके उपदेश अर्थ मुनिने कहा; हे मैत्रेयि ! पति, जाया, पुत्रादिक सर्वभी पत्यादिकनकी कामनाके अर्थ प्रिय नहीं. किंतु आत्माके अर्थ प्रिय सर्व है, यह वार्ता लोकमेंभी प्रसिद्ध है कि सर्वकूंभी आत्मा अति प्रियहै, याते (श्रुतिः—) बृहदा. उ. २ । ४ । ५)

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्श-नेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्"

अर्थः—हे मैत्रेयि ! पतिपुत्रादिक सर्वभी गौण प्रियहै, याते ताका त्याग करिके मुख्यप्रीतिका आश्रय ऐसें आनंदस्वरूप आत्माकाही दर्शन कहिये अपरोक्ष जाणनां, और आचार्य तथा श्रुतिसें ताका श्रवण करनां; तदनन्तर युक्तिसें कहिये दृष्टांतपूर्वक ताका मनन करनां; पीछे ताकाही निदिध्यासन कहिये ध्यान करना, श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये तीनों अंतरंगसाधन वारंवार (अभ्यासकरिके) सम्यक्प्रकारसें अनुष्ठान किया होवे तो ही ब्रह्मात्मैकत्वका सम्यक् दर्शन (साक्षात्कार) होवे; अन्यथा श्रवणमात्रकरिकेनहीं अव रज्जुके विषैं सर्पकी न्याई अविद्याकरिके आत्माके विषैं अध्यस्त ऐसा जो धर्म, अधर्म, तत्फलादिक तिन सर्वके अपवा-दके अर्थ कहेहैः—हे मैत्रेयि ! श्रवणादिसाधनत्रयसे एक आत्मस्वरूप जाणनेतें सर्वभी विदित होवेहै; काहेते आत्मासे अतिरिक्त ऐसा कोईभी पदार्थ नहीं; किंतु

नामरूपक्रियात्मक सर्वभी आत्मरूपही है, याते एक आत्माके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान होवेहै जो कोई पुरुष 'यह ब्राह्मणजाति है' यह क्षत्रियहै इसरीतिसे ब्राह्मणजात्यादिक सर्वकूं आत्मासे अतिरिक्त रूपकरिके जो जाणे सो भेददर्शी अपराधीपुरुष ताकूं ब्राह्मणजात्यादिक सर्वभी अपकार करेहै, (अनात्मारूप करे है.) याते ब्राह्मणजात्यादिक सर्वकूं भी आत्मासें उत्पन्न होनेतें, तथा स्थितिकालके विषैं आत्मासत्तासेंही स्थितहोनेतें तथा आत्माके विषैंही लय होनेतें सर्वभी आत्मरूपही है. इसरीतिसे श्रवणादिसाधनकरिके सर्वात्मभावसें आत्माका साक्षात्कार करणां, सर्वात्मभावकरिके आत्मदर्शमें दृष्टांत कहेहैः—जैसे दुंदुभि, शंखादि बजानेसें बाह्य इतर शब्दका विशेषकरिके ग्रहण होता नहीं किंतु शब्द सामान्यकरिकेही ग्रहण होवेहै;तैसेही सर्वकाभी सन्मात्र सामान्य रूपसेही ग्रहण करनां.जैसें धूमादिकनकी उत्पत्तिके पूर्व एक अग्निही है, ऐसा ग्रहण होवेहै; तैसेंही सर्व जगत्के उत्पत्तिसें पूर्व प्रज्ञानघन एक आत्मस्वरूपही है, इस अभिप्रायकरिके

कहेहैं कि जैसे आर्द्र कहिये भीने इंधनकरिके देदीप्य-
मान अग्निसें पृथक्‌रूप धूम, विस्फुलिंगादिक निकल-
तेहैं; तैसेही सत् आत्मस्वरूपसें पुरुषके निश्वासकी
न्याई अप्रयत्न करिकेही ऋक्, यजुष्, साम, अथर्वा-
गिरस, ये चारों वेद तथा शास्त्र, पुराण, इतिहास,
विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान इत्यादि सर्व
निकलताहै. और जैसें वापी, कूप, तडागादि जलोंका
एक अयन समुद्र है, और सर्व स्पर्शोंका एक अयन
त्वगिंद्रिय है, तथा सर्व रसोंका एक अयन जिह्वाहै,
तथा सर्व गंधोंका एक अयन नासिका है, तथा सर्व
रूपोंका एक अयन चक्षु है, तथा सर्वशब्दोंका एक
अयन श्रोत्र है, तथा सर्व संकल्पाकों एक अयन मन है,
तथा सर्व विद्याओंका एक अयन हृदय (बुद्धि) है,
तथा सर्व कर्मोंका एक अयन हस्त है,तथा सर्व आनं-
दोंका एक अयन उपस्थ है, तथा सर्व विसर्गोंका
एक अयन पायु है, तथा सर्व मार्गका एक अयन
कहिये गमनागमनका अयन पाद है तथा सर्व वेदोंका
एक अयन वाक् है, तैसेंही सर्व जगतका एक अयन

आत्मा है, ब्रह्मही आत्मा है. आत्माही जगत् इसरीतिसें प्रतिज्ञात अर्थकूं युक्तिसें सिद्ध किया, अब ब्रह्मविद्याकरिके अविद्याके निरोधसें जो जगत्का आत्यंतिक प्रलय ताकूं दृष्टांतपूर्वक कहेहै, जैसें भूमिकें संसर्गसें कठिनभावकूं प्राप्त जलकाही विकार सैंधवखंड जलमेंही रखनेसें विलीन होयके जलरूप होवेहै, किसीसेही जलसें पीछे निकालके पूर्वकी न्याई ग्रहण कियाजावे नहीं; तैसेही हे मैत्रेयि ! जा परमात्मास्वरूपसे अविद्याकरिके तूं परिच्छिन्न होयके कार्यकारणरूप उपाधिसंबंधसें खिल्य (खंड) भावकूं अर्थात् संघातभावकूं प्राप्त भईहै,और नाम,रूप,क्रियात्मकताकूं प्राप्त हुई मैं अमुक नामवाली, अमुक रूपवाली, अमुक गोत्रवाली हूं, इत्यादिभावकूं प्राप्तहुईहै;और मर्त्या कहिये जन्ममरणा क्षुधा, पिपासादिक संसारधर्मवाली हुई है; सो तेरा मिथ्याभ्रम जनित खंडभाव कहिये नामरूपक्रियात्मक संघातभाव अपना कारणीभूत समुद्रस्थानीय अजर, अमर शुद्ध एक रस प्रज्ञानघन अनंत अपार अविद्या जनित भ्रांति भेदरहित ऐसे आत्मस्वरूपके विषैं

विद्योपदेशते अविद्याका बाधकरिके मैंने प्रवेश कराया, और ता अविद्याकृत खंडभावकूं स्वयोनिस्वरूप ब्रह्मस्वरूपकरिके ग्रास करनेते त्रिकालाबाध्य पारमार्थिक सन्मात्र जो वस्तुस्वरूप सोही परिशिष्ट रहा, ता स्वरूपके विषैं कोईभी जात्यंतर है नहीं. जो कदाचित् आत्मस्वरूप सत्य और संसारधर्मसें रहित है, तब ताके विषैं 'मैं सुखीहूं' 'मैं दुःखी हूं' ये गृहादिक मेरे हैं, इत्यादि संसारधर्मरूप उपद्रवसें पूर्ण खंड (परिच्छिन्न) भाव किसनिमित्तसें हुवा, ऐसी मैत्रेयीकूं शंका होनेतें ताका निमित्त कहेहै, स्वच्छ परमात्माके विषैं जल बुद्बुदकी न्याईं नामरूपात्मक कार्य कारणाकार परिणामकूं प्राप्तहुये जो भूतविषयपर्यंत, जिनका परमार्थविज्ञान करिके ब्रह्मके विषैं प्रविलापन पूर्वश्रुतिमें कहाहै, ता उपाधिरूप भूतनिमित्तसें, जलरूप निमित्त सें सूर्यादिकनके प्रतिबिंबकी न्याईं इस परमात्माके विषैं परिच्छिन्नभाव प्राप्त होनेते 'मैं सुखी 'मैं दुखी हूं' इत्यादिरूप उपद्रव प्राप्त होवे है, सो निमित्तरूप भूतगण, जब श्रुति आचार्यके उपदेशसे जनितब्रह्म-

विद्याकरिके समुद्रमें नद्यादिकनकी न्याई ब्रह्मस्वरूप परमात्माके विषैं प्रविलापन करनेतें विनष्ट होवे हैं, तिसतें पीछे परमात्माके विषैं प्राप्तहुवां परिच्छिन्नभाव भी निवृत्त होवे है, जैसें जलरूप निमित्तके अभावतें सूर्यादिकनके प्रतिबिंबनका विलय होयके बिंबमात्र रहे है. तैसें तिसतें अनंतर स्वच्छ, अनंत, अपार, विज्ञानघन ऐसा परमात्मस्वरूपही अवशिष्ट रहे, ता परमात्माके विषैं कोईभी विशेषसंज्ञा रहे नहीं. हे मैत्रेयि ! मैं सुखी दुःखी हूं, मेरा पुत्र धनादि है "इत्यादि सर्व उपद्रवभी अविद्याकृत होनेतें, ता अविद्याका विद्यासें विनाश होनेतें. यद्यपि अविद्यादशामें शरीर स्थित आत्माकूं वस्तुतः संसारभाव नहीं; तब विद्याकरिके अविद्या तत्कार्यका बाध होनेतें अनन्तर ब्रह्मवेत्ताकूं परिच्छिन्न भावरूप संसार होवे नहीं यामें क्या कहेना. इस रीतिसें याज्ञवल्क्यमुनि अपनी भार्या मैत्रेयीकूं परमार्थज्ञानका उपदेश करतेभये. इसप्रकारसें बोधकूं प्राप्तहुई मैत्रेयी कहे हैः—हे स्वामिन् ! पूज्य ऐसे तुम क्यों मोहक वाक्य करिके मोह उत्पन्न करते हो

काहेते तुमारा वाक्य विरुद्धधर्मवाला है (ता विरुद्ध-धर्मकूंही कहे है.) तुमने प्रथम तौ आत्मा विज्ञानघन है, ऐसी प्रतिज्ञा करी फिरसें कहते हो कि "न प्रेत्य संज्ञास्ति" (बृ. २ । ४ । १२) ता आत्मा के विषें विशेष संज्ञा नहीं. प्रथम आप आत्माके विषें विज्ञानघनरूपत्व प्रतिज्ञात किया, और पीछे विनाशा-नंतर विशेषसंज्ञाका राहित्य कथन किया. याते एक आत्माके विषें विज्ञानघनता तथा विनाशके अनंतर विशेष संज्ञाका राहित्य यह विरुद्धधर्मद्वय कैसा घटे; जैसे एक अग्निमें शीतता और उष्णता दोनों धर्म घटे नहीं तैसे तब मुनिने कहा केः—हमने तो कोई विरुद्ध धर्मवाला वाक्य कहा नहीं जिसते मोह होवे, परन्तु तेनेंही भ्रांतिसे आत्माके विषें विरुद्धधर्मद्वय ग्रहण किये हैं मैंने तो ऐसा कहा कि अविद्यासे जनित आत्मा के विषें परिच्छिन्नभावताका विद्याकरिके नाश होनेते ता परिच्छिन्नभावनिमित्त विशेषसंज्ञा रहे नहीं; जैसे गंगा यमुनादि नदियां समुद्रमें एकीभाव होनेतें विशेष संज्ञायुक्त होती नहीं तैसें सो आत्मा भूत भौतिक

सर्वका नाश हुयेभी वास्तवसें नष्ट: होता नहीं किंतु वाचारंभणश्रुतिके प्रामाण्यसें अविद्याकृत खंडभावही नष्ट होवे है, याते मैंने उपदेश किया सो निर्दोष है जब विज्ञानघन स्वरूप तुम प्रामाणिक मानतेंहो तब (बृ. २ । ४ । १२) 'न प्रेत्य संज्ञास्ति' यह निषेध अयुक्त है कहिये विशेष विज्ञानका निषेध अयुक्त है, ऐसी मैत्रेयीकूं आशंका होनेते अविद्याकृत जो विशेष जो विज्ञानताके खंडनाभिप्रायसे निषेध युक्त ही है, या रीतिसे मुनि उत्तर देवे है अविद्याकरिके कल्पित, और कार्यकरणसंघातरूप उपाधिकरिके जनित ऐसा विशेपात्मक खिल्यभाव होनेते वास्तवता करिके अद्वैतस्वरूप ब्रह्मके विषें द्वैतकी न्याईं अर्थात वस्त्वंतरकी न्याई प्रतीत होवे है, तिस अविद्यादशाके विषें बिंबसें अन्य प्रतिबिंबकी न्याई परमात्मासे इतर खंडभूत आत्मारूप द्रष्टा कहिये प्रमाता इतरसदृश चक्षु-रादि करणकरिके इतरसदृश रूपादिविषयनका दर्शन श्रवणादिरूप विशेष ज्ञान पावें है, यह अविद्या जब जिस पुरुषने ब्रह्मविद्या करिके नाशित

करीहै, और इस ब्रह्मवेत्ताने नामरूपीक्रियात्मक सर्वभी ब्रह्मके विषैं विलीन किया तब ब्रह्मरूपही संपन्न हुवा, ता विद्यावस्थाके विद्याके कौन द्रष्टा किसकारण- कारिके किस विषयका ग्रहण करे ? अर्थात् द्रष्टा दर्शन, दृश्य, इत्यादि त्रिपुटीका अभाव होनेतें केवल विज्ञानघनहीं परिशिष्ट रहेहै, या वार्ता कहिके यह सिद्ध भया कि, अविद्यादशामेंहीं क्रियाकारकफलादिक सर्वव्यवहार है और विद्या प्राप्त होनेते तो आत्मासें इतरकाही अभाव होवेहै, याते कोईभी व्यवहार होवे नहीं, हे मैत्रेयि ! अविद्यादशामें लोक जा साक्षी आत्मासें प्रकाशित चक्षुरादिकरणकरिके बाह्यविषयनकूं जानतेहैं, तिन करणकी बाह्यविषयक प्रवृत्ति उपक्षीण होवेहै तिसतें विज्ञाता (प्रकाशक) ऐसे आत्माकूं किसरीतिसे जाने अर्थात् जाने नहीं यातें श्रवणादि अतरंगसाधनोंका अभ्यास करिके अभ्यास कियाहोवे तोही ब्रह्मात्मैकत्वज्ञान होवें, अन्यथा नहीं,इतनी वार्ता चौथे ब्राह्मणमें निरूपण करीहै; ।

लोकमें परस्पर उपकार्य उपकारक वस्तु सर्वभी, एक कारणपूर्वक और एक विषैंही उत्पत्ति, स्थिति, लयवाली देखनेमें आवेहै, याते यह सर्वजगतभी परस्पर उपकार्यउपकारक भावसें एकात्मकारणपूर्वक और एकात्माके विषैंही उत्पत्ति स्थिति लयवाला हुवा चाहिये,इसरीतिसें हेत्वसिद्धि (पक्षमें हेतुका न रहेना सो हेतुकी असिद्धि तिसकूंही स्वरूपासिद्धि कहेहै.) की आशंकाके निराकरण अर्थ मधुब्राह्मण है, अथवा आत्माही सर्व है, या रीतिसे प्रतिज्ञात अर्थमें उत्पत्ति स्थिति लयरूप हेतु कहिके इसी अर्थके उपसंहारार्थ यह आगम प्रधान मधुब्राह्मण है.

यह प्रसिद्ध पृथिवी उपकारकरूपसें ब्रह्मादिस्तंबपर्यंत सर्वप्राणियनकूं मधुरुप है, तथा सर्वप्राणी उपकार्यत्वकरिके पृथ्वीके मधुरूप है, और पृथ्वीमें तेजोमय (चिन्मात्रप्रकाशमय) और अमृत मय (अमरणधर्मा) ऐसा जो पुरुष सो तथा शरीरमें स्थित तेजोमय और अमृतमय ऐसा जो लिंगात्मा पुरुष सो उपकार्यत्वसें सर्वभूतनका मधुरूप है, तथा सर्वभूतउपकारकसे पुरुषके

मधुरूप है, इसरीतिसे पूर्वोक्त चारों परस्पर उपकार्य उपकारक होनेते कार्यरूप हैं, और एककारण कहिये एक ब्रह्मस्वरूप है कारण जिनोंका ऐसें हैं तथा एकही ब्रह्मपरमार्थ सत्य है और इतर सर्वकार्य तो वाचारंभणश्रुतिके प्रामाण्यसे नाममात्र है; या कहनेते जो पूर्व प्रतिज्ञा करी थी कि सर्व जगत् आत्मरूप है सो सिद्धभई. और मुनिने मैत्रेयीकूं जा आत्मतत्त्वके प्राप्त्यर्थ श्रवणादिसाधन कथन किये सो अमृतत्वस्वरूप ब्रह्मभी यही है, तिसप्रकारसें मधुपर्यायकी चतुर्दशश्रुतियनका तात्पर्यार्थ है. ।

इसरीतिसे अविद्याकृत पृथ्वीसें आरंभिके विज्ञानमयपर्यंत सर्वभी कार्यकारणसंघात ब्रह्मविद्याकरिके जाके विषें प्रवेशकरावनेंते जो परिशिष्ट रहा सो अनंतर अबाह्य पूर्ण प्रज्ञानघनभूत ऐसा सर्वभूतोंका आत्माहै,और सर्वकूं उपासनाकरनेयोग्य है, तथा सर्वभूतनका अधिपति और सर्वनका राजा है इसरीतिसे मधुब्राह्मणोक्तप्रकारसे आचार्यद्वारा तथा श्रुतियनसे सर्वात्मभावकरिके आत्माका श्रवणकरिके तथा तर्कसें मननकरिके

तथा निदिध्यासनकरिके साक्षात्कारकरनेते प्रथमभी वस्तुतः ब्रह्मरूप होयाभी जा अविद्याकरिके अब्रह्मकी न्याई हुवाथा, और सर्वरूपभी अविद्यासें असर्वकी न्याई हुवा था, ता अविद्याकूं पूर्वोक्त ब्रह्मविद्या करिके तिरस्कार करनेते सो ब्रह्मवेत्तापुरुष ब्रह्मीभूत होयाहुवा सर्वीभूत होवेहै, जैसें रथनाभिके विषें आरा समार्पित है, तैसेंही ब्रह्मादिस्तंबपर्यंत सर्व प्राणि तथा अग्न्यादिक सर्व देवता तथा भूरादि सर्व लोक तथा वागादि सर्व प्राण, तथा सर्व चिदाभास ब्रह्मभूत ब्रह्मवेत्तापुरुषके विषें समर्पितहै, पूर्वही कहाथा कि,

ब्रह्मवेत्ता वामदेवगर्भमेंही "मैं मनुहूं" 'मैं सूर्यहूं' इत्यादि सर्वात्मभावका साक्षात्कार करताभया, यह सर्व व्याख्यान किया; सो विद्वान् ब्रह्मवेत्ता विवेकी पुरुष सर्वोपाधिसहित हुवा सर्वरूप होवेहै; तथा निरुपाधिक हुवा अनंतर, अबाह्य, पूर्ण प्रज्ञानघन, अजर, अमर, अभय, अचल तथा (ब्र. उ. ३ । ८ । ८)

"अस्थूलमनणवह्रस्वम्"

इस श्रुत्युक्तप्रकारसें सर्वनिषेधका परमावधिरूप (भूत) होवैहै.

(ईशा.उ.म. ४) इशावास्यमंत्र-(४)"अनेजदेकं मनसो जवीयः" "तदेजति तन्नैजति" "तद्धावतोन्यान्." (तैत्ति.) (श्वे. ३।९) "यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित्" (छां. ८ । १२ । ३) "जक्षत्क्रीडन्नममाणः"

आथवर्ण-(३ । ११७) "दूरात्सुदूरे तदिहांतिके च" काठकः-(१ । २।२०) "अणोरणीयान्महतो महीयान्"भगवद्गीता (१ । १५) "अहं क्रतुरहं यज्ञः" (गी. ९ । १७) "पिताहमस्य जगतः"(गी. ५ । १५) नादत्ते कस्यचित्पापम्" (गी. १३ । २७) "समं सर्वेषु भूतेषु"(गी. १३ । १६) "अविभक्तं च भूतेषु," "ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥"

इत्यादि आगमप्रतिपादित अर्थकूं न जाननेवाले अज्ञानी, पंडिताभिमानी तार्किक "अस्ति आत्मा नास्ति आत्मा,कर्ता,अकर्ता,मुक्त, बद्ध, क्षणिकविज्ञान-मात्र;शून्य"इत्यादि विकल्प करतेहुये अविद्याके पारकूं प्राप्त होते नहीं, याते जो पुरुप आचार्य श्रुति प्रदर्शित मार्गकूं अनुसरे है सोही अविद्याके पारकूं प्राप्त होवेहै; और सोही मोहसमुद्रसें तरैहै, अन्यस्वबुद्धिके कुश-लतासें नहीं.

जो ब्रह्मविद्या मैत्रैयीने याज्ञवल्क्यकूं पूछीरही सो समाप्त भई, याही मधुविद्या (ब्रह्मविद्या) कूं दध्यङ्ङा-थर्वणमुनिने अश्विनीकुमारकूं दोमंत्रकरि स्तुतिपूर्वक चतुर्थ अध्यायके पंचमब्राह्मणमें उपदेश करीहै—पंचम-अध्यायमें याज्ञवल्कीय कांडका आरंभहैः—विदेह देश-का राजा जनक तिसनें बहुतदक्षिणावाला यज्ञ किया, तहां देशदेशके ब्राह्मण आयेथे, तिनके मध्यमें ब्रह्मनिष्ठ-तम कौन है ? ऐसी जिज्ञासासे सालंकृत सहस्रगोका राजाने पण किया,और कहा के जो कोई ब्रह्मनिष्ठतम होवे सो इस गोसहस्रकूं ग्रहण करे तब कोईभी बोले

नहीं. पीछे याज्ञवल्क्यमुनिने आपनो ब्रह्मनिष्ठत्व जणावनेकेलिये आपने सामश्रवाशिष्यतें गोसहस्र स्व आश्रममें पहुचादिया, ता समयमें अन्य ब्राह्मण क्रोध-युक्त कहतेभये. तूंही एक ब्रह्मवेत्ता है ? ऐसा कहि तिरस्कार किया, तिसतें पीछे, (१) आश्वल, (२) आर्तभाग, (३) भुज्यु, (४) उषस्त, (५) कहोळ, (६) गार्गी, (७) उद्दालक, (८) शाकल्य इन अष्ट पृच्छकोंने जिस जिस युक्तिसें प्रश्नकिये, तिनेके युक्तिसेंही अनुक्रमसेही याज्ञवल्क्यमुनिने उत्तर दिये. तिसतें अनंतर क्षुत्पिपासादिरहित साक्षात्सर्वांतर ऐसे ब्रह्मके कथन अर्थ यह गार्गी ब्राह्मणहै. पूर्व याज्ञवल्क्यजीने देहके परास्त किई गार्गी फिर प्रश्न करनेवास्ते ब्राह्मणोंके आज्ञाकूं याचती भई, हे ब्राह्मण ! मैं याज्ञवल्क्यकूं दो प्रश्न करने चाहतीहूं, परंतु तुमारी आज्ञा होवे तो पूछूं. जो कदाचित् उत्तरदिया तो फिर किसीसेभी जीतनेकूं शक्य नहीं ऐसा जानना, पीछे ब्राह्मणोंने आज्ञा देनेसे पूछती भई कि, हे याज्ञ-वल्क्य ! जैसे काशीराजा अथवा जनक धनुष्य सज्ज

करिके शत्रुकूं विंधन करनेवाले दो बाणसंधान करिके शत्रुके सन्मुख स्थित होवे, तैसें मैंभी बाणरूप दो प्रश्न कूं सज्जकरिके तेरे सन्मुख स्थित हूं. तब मुनिने कहा कि, प्रश्न कर, तब गार्गीने प्रथम प्रश्न ऐसा किया कि, जो ऊर्ध्व ब्रह्मांडकपालसें ऊपर है और अधः कपालसे नीचे है तथा दोनोंके मध्यमें भूत, भविष्य वर्तमानरूप सर्व जगत् जामें एकीभूत है सो पूर्वोक्त सूत्रात्मा किसके विषें ओतप्रोत रहा है ? ताके उत्तर में मुनिने कहा कि, सो सूत्रात्मा अव्याकृत आकाशमें ओतप्रोत है. तब गार्गीने प्रसन्नतापूर्वक नमस्कार करिके पीछे, 'जो कदाचित् अवाच्य वस्तु-स्वरूपकं ना कहे. तो अप्रतिपत्ति (अज्ञान) और कदाचित् कहे तो विरुद्ध प्रत्तिप्रति इसरीतिसे उभयतः दोषके अभिप्रायसे द्वितीय प्रश्न किया कि, हे मुने ! सो अव्याकृत आकाश किसके विषें ओतप्रोत है ? ताके उत्तरमें मुनिने कहा कि, जाके विषै अव्याकृत आकाश ओतप्रोत है सो वस्तु स्वरूप, अक्षर (अवि-नाशी) अस्थल, अनणु, अह्रस्व, अदीर्घ, अलोहित,

अस्नेह, अच्छाय, अतम, अवायु, अनाकाश, असंग अरस, अगंध, अचक्षु, अश्रोत्र, अवाक्, अमन, अतेज, अप्राण, अमुख, अमात्र, अनंतर, अबाह्य, अभोक्ता, अभोग्य एकही अद्वितीय स्वरूप है, इस रीतिसे, तेरे और मेरेकूं महत्तम ब्राह्मण कहिये ब्रह्मवेत्ता कहे है, मैं कहता नहीं हूं. तथापि ता वस्तुकूं मैं जानता हूं. (इसकरिके अवाच्यका वचनरूप विप्रतिपत्ति और अग्रहणरूप अप्रतिपत्ति इन दोनों दोषोंका परिहार किया.) हे गार्गि ! सूर्य, चन्द्र, काल, देव, पितर आदि सर्वभी इसी अक्षरस्वरूपके आज्ञामें नियम करिके रहते हैं, या अक्षरस्वरूपके ज्ञानविना जो होम, जप, तप आदि करे, सो सर्व विनाशी है. या स्वरूपके ज्ञानविना मरे है. सो कृपण कहिये जन्ममरण प्रबन्धमें ही आरूढ होवे है वे, जो अक्षरस्वरूप जानिके देहका त्याग करे सोही ब्राह्मण इस संसारबंधनसे मुक्त होवेहै यही अक्षरस्वरूप अदृष्ट हुयाभी द्रष्टृ, अश्रुत हुया श्रोतृ इत्यादि, इस्से अन्य कोई द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाता है नहीं, ता स्वरूपके विषैं अव्याकृत आकाश

ओतप्रोत है. पीछे, गार्गीने कहा कि, हे ब्राह्मण ! तुम कोईभी याज्ञवल्क्यकूं जीतो ऐसा नहीं, याते नमस्कार करिके क्षमा करलों, ऐसा कहिके सो उपरामकूं प्राप्त होतीभई. ८

पृथिव्यादि सर्वभूत तिनके सूक्ष्मतातारतम्य करिके उत्तरोत्तरमें ओतप्रोतभाव कथन करिके सर्वांतर ऐसा ब्रह्म कथन किया, ता ब्रह्मकूं नाम रूपात्मक पृथिव्यादिकनका नियंतृत्वभी कथन किया, अब नियम्य ऐसी सर्व देवताके संकोच विकासद्वारा सो नियंतृत्व ब्रह्मके साक्षादपरोक्षत्व बोधनके अर्थ शाकल्यब्राह्मणहै.

शाकल्यऋषिने तर्क और कुतर्कसें अनेक प्रश्न किये, तिनके उत्तर याज्ञवल्क्यमुनिने युक्तिसे यथार्थ दिये, अनंतर (बृ. ३ । ९ । २६)

"तं त्वौपनिदं पुरुषं पृच्छामि"

या वाक्यकरिके केवल श्रुत्येकगम्य आत्माका स्वरूप याज्ञवल्क्यने पूछा, तिसका उत्तर शाकल्य देसका नहीं. और यद्वा तद्वा बोला, तिसतें अनंतर ताका मस्तक पतन हुवा.

पूर्वब्राह्मणमें शारीरादिक अष्टपुरुष, (१ पृथ्वी, २ काम, ३ रूप, ४ आकाश, ५ तम, ६ रूप, ७ अप्, ८ रेतस्.) नका विस्तारपूर्वक व्यवहार हृदयमें कथन करिके पीछे अन्योन्यप्रतिष्ठ ऐसे शरीरनकूं, हृदयकूं प्राणादिपंचवृत्त्यात्मक समानाख्यसूत्रके विषैं उपसंहार करिके पीछे सूत्रको अव्याकृतमें उपसंहार करिके तां अव्याकृतसें अतिक्रांत ऐसा जो उपनिषद् प्रमाण करिके गम्यमान पुरुष "नेतिनेति" वाक्यकरिके उपदिष्ट कियां, तिस पुरुषकूं (बृ. ३ । ९ । २८)

"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"

या वाक्यकरिके साक्षाद्रूपसे और उपादानरूपसे याज्ञवल्क्यमुनिने प्रदर्शित किया, इसी पुरुषका वागादिदेवताद्वारा प्रदर्शनरूप उपायांतरके अर्थ छट्टे अध्यायमें दो ब्राह्मणोंका आरंभ है. जनकराजाकी जो आख्यायिका सो तो जे अधिकारी पुरुष श्रद्धादिसंपन्न होइके शास्त्रोक्त विधिसें गुरूकूं शरण होवे ताकूंही गुरुनें ब्रह्मविद्याका उपदेश करना, ऐसा आचारके प्रदर्शन अर्थ है.

तृतीयब्राह्मणमें याज्ञवल्क्यमुनिने जनकराजाकूं आत्माके विषें शुद्धत्व, स्वयंज्योतिष्ट्व, अलुप्तशक्तिस्वरूपत्व, निरतिशयानन्दस्वभावत्वं, अद्वैतत्व इनोंके अनुभव करायेहै, तामें स्वप्नावस्थामें स्वयंज्योतिष्ट्वका अनुभव जो स्पष्टकराया ताका श्रुत्यनुसार विस्ताररूपतें अर्थ चतुर्थ प्रक्रियामें दर्शायाहै.

ऊपरके तृतीयब्राह्मणमें संसारवर्णनका प्रस्ताव कियाथा, और (बृ. ४। ३। ३६)

"तत्रायं पुरुष एभ्योंगेभ्यः संप्रमुच्य"

(यह पुरुष इन अंगोसें संप्रमुक्त होइके) इसरीतिसे भी कहाथा, तहां संप्रमोक्षण किसकालके विषें और किसप्रकारसे होवेहै? ताके कथन अर्थ सविस्तर संसारका वर्णन् चतुर्थब्राह्मणमें कियाहै.

समस्त आरण्यकका अंतिम एक कंडिकामें दर्शाया है. (कंडिका) (बृ. ४। ४। २६)

"स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं वै हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद"

अर्थः—सो यह आत्मा महान् कहिये व्यापक तथा 'अज' कहिये अजन्मा तथा 'अजर' कहिये विपरिणामसें रहित, तथा 'अमर' कहिये अपक्षयरहित, यातेही 'अमृत' कहिये अविनाशी, तथा जन्मानन्तर अस्तित्व और वृद्धिसें रहित, यातेही काम, कर्म, मोहादिविकारसे रहित है, और तातेही 'अभय' भयरहित है (जो भय सो अविद्याकार्य है, ताके निषेध करिके तथा षड्भावविकारके निषेधकरिके ताका मूल अविद्याकाभी निषेध अर्थात् अभाव जानना)ऐसा जो आत्मा सोही निरतिशयसुखरूप अभय ब्रह्मरूप है, इसरीतिसे आत्माकूं ब्रह्मसे अभिन्नताकरिके जाने कहिये अपरोक्षकरे. सो अभय ब्रह्म रूप होवे है इसी अर्थका कहिये ब्रह्मात्मैकत्वका सम्यक् बोध होनेअर्थ उत्पत्ति स्थिति लय आदिकनकी कल्पना तथा क्रिया, कारक, फलादिकनका अध्यारोप आत्माके विषैं किया और ताका अपवाद करिके ब्रह्मात्मैकत्वरूप तत्त्व अपरोक्ष कराया, जैसें एकसे आरंभिके परार्धपर्यंत संख्याके विषैं रेखाका अध्यारोप

करिके केवलसंख्यास्वरूपका बोध करावे है, परंतु एकसे १ नव ९ तक रेखा कोई संख्याका स्वरूप नहीं और अकारादि अक्षरनके प्रबोधनअर्थ शाही की रेखारूप अध्यारोप करिके अकारादि वर्णोंके तत्त्व-रूपका अनुभव करावे है, परंतु सो रेखा वर्णका स्वरूप तत्त्व नहीं. इसी रीतिसें उत्पत्ति स्थिति लया-दिकरूप उपायोंका अवलंब करिके ब्रह्मात्मैकत्वका ज्ञान कराय.. फिर "नेतिनेति" या वाक्य करिके कल्पित सर्वका अपवाद करिके केवल ब्रह्मात्मैकत्वका साक्षात्कार कराया. इस रीतिसें समस्त अरण्यकका अर्थ एक कंडिकामें दर्शायाहै. पूर्वकथित ब्रह्मविद्याके उपसंहारार्थ प्रथम कह्या जो मैत्रेयी ब्राह्मण सोही फिरसें छट्ठे अध्यायमें पंचम ब्राह्मणरूप करिके कथन किया.

ब्रह्मविद्या समाप्ता.

इस उपनिषद्के तात्पर्यार्थ श्लोकः—

"यस्यानंदस्य मात्रा विविधसुखमिदं येन सर्वोंपि जीवाः । प्राणंत्यव्याकृतं प्राग्जगदि-

दमखिलं व्याकरोन्नामरूपैः ॥ अन्तर्यामी हृषीकाधिप इति विदितं व्यापकं ब्रह्म तत्राहं ब्रह्मास्मीति ये नैव विलयमसवस्तस्य नैवोच्छलंति ॥ १ ॥"

अर्थः—सार्वभौमआनन्दसें आरंभिके हिरण्यगर्भपर्यन्त उत्तरोत्तर शतगुणित ऐसे आनंद तिसकेही अंशरूप हैं. तथा सर्वजीव जाके सत्तासेही प्राणन करे है. तथा पूर्व अव्याकृत ऐसें जगत्कूं नामरूप करिके जो व्याकरण करताभया. तथा जो अंतर्यामीरूप करिके मनआदि इंद्रियनका अधिपति कहिये प्रेरक है, सो प्रत्यक्स्वरूप, ब्रह्मरूप व्यापक मैंही हूं. इस प्रकारसें "अहं ब्रह्मास्मि" या वाक्य करिके प्रत्यगभिन्न ब्रह्मका साक्षात्कार करनेवाला जो विद्वान् पुरुष तिसके प्राण इसी देहके विषैं विलीन होवे हैं; उत्क्रमण होवे नहीं ॥ १ ॥

(११) केनोपनिषद्का वाक्य भाष्य (याका समावेश केनके पद भाष्यनें जानना.)

(१२) उत्तरनृसिंहतापिनी. (याका समावेश मांडूक्यमें जानना.)

इति श्रीमदुदयशंकरात्मजगौरीशंकरविरचिते स्वरूपानुसंधाने पंचमप्रक्रिया समाप्ता ॥ ५ ॥

षष्ठी प्रक्रिया।

सूत्रप्रस्थान.

श्रीव्याससूत्र[1]के भाष्य[2]में श्रुतियोंके निर्णायक षड्विध लिंग कहिये (प्रस्ताविक श्लोक)

"उपक्रमोपसंहारा[1]वभ्यासो[2]ऽपूर्वता[3]फलम्। अर्थ[4]वादो[5]पपत्ती[6] च लिंगं तात्पर्यनिर्णये ॥ १ ॥"

यह तात्पर्यसे कर्म, उपासना, ज्ञान, त्रिकांडात्मक वेदके वाक्यनका अविरोधितासे निर्णय किया है तथा

---

१ अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ॥ अक्षोभ्यमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥ १ ॥ सूत्रस्थपदमादाय पदैः सूत्रानुसारिभिः ॥ स्वपदानि च वर्ण्यंते भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥ २ ॥" सू तथा भाष्यका श्लोक २.

कितनेक वादियनका द्वैतमत खंडन करिके अद्वैतमत प्रतिपादन किया है; याते पंच ब्रह्मसूत्रोंके अर्थ ऊपरसे अनुसंधान.

उत्तर मीमांसारूप सूत्रके अध्याय ४ तामें– (१) समन्वयाध्याय, (२) अविरोधाध्याय, (३) साधनाध्याय (४) फलाध्याय, और ता प्रत्येक अध्यायके चार चार पाद हैं.

प्रथम अध्यायके प्रथम पादका प्रथम सूत्र.

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥ १ ॥

अर्थ–इस जन्ममें अथवा जन्मांतरमें कृतपुण्य विशेषसे कहिये यज्ञ, दान, तप तथा हरितोषणप्रभृति सत्कर्मोंसे अंतःकरणकी शुद्धि होनेते विवेकादि चतुष्टय साधनः–

(१) विवेक कहिये आत्मा अनात्माकी विवेचना करनी; नीरक्षीरकी न्याई अर्थात् जड चेतनका तत्त्व यथार्थ समझना.

(२) वैराग्य कहिये, आत्मपुराणके प्रथम तथा छठा अध्यायमें यमदूतोंने लिंगशरीराभिमानी जीवकूं

यमयातना भोगावनेके लिये लेजाते समयमें अनेक प्रकारसें ताकूं धिक्कारिके गर्भवास, जन्ममरणादि अनेक दुःख दर्शायेहैं. ता प्रभृति दोषदृष्टिसे तथा विवेक करिके जाण्या जो दृश्यवर्ग देहादिकनका मिथ्यात्व, तासे तिनके विषे अनुरागका राहित्य सो वैराग्य.

(३) शमादि षट्कः– (१) शम कहिये मनका निग्रह; अर्थात् बहिर्मुख मनकूं अंतर्मुख करना. (२) दम कहिये बाह्य चक्षुरादि इंद्रियनका निग्रह; अर्थात् आप आपनें विषयनकूं विषतुल्य जानिके तिनके ऊपर प्रवृत्त होने न देना; तामें रसना और उपस्थ इंद्रियनका मुख्य निग्रह करना.(३) उपरति कहिये पराक्प्रवण वृत्तियनका त्यागपूर्वक प्रत्यक्प्रवण वृत्तियां राखणी; अर्थात जैसी बाह्य पदार्थमें आसक्ति होवेहै, तैसीही बाह्यमें न रखते प्रत्यक् आत्मस्वरूपके विषे रखणी. सारांशयह है, ताका अर्थ सर्वकर्मसंन्यास. (४) तितिक्षा कहिये प्रारब्ध

कर्मसे प्राप्त हुये शीतोष्णादि तज्जन्य सुखदुःखादिकनका सहन करना; अर्थात् तिनके विषे क्लेशराहित्यसे रहना. (५) श्रद्धा कहिये ब्रह्मनिष्ठ गुरु तथा वेदांतवाक्यनके ऊपर विश्वास.(६) समाधान कहिये प्रत्यगभिन्न ब्रह्मके विषे चित्तकी एकाग्रता.

(४) मुमुक्षुता कहिये जन्ममरणादिरूप संसारबंधनसे मेरी मुक्ति कब होगी ? इस प्रकारकी मोक्षके विषे दृढ इच्छा.

इस रीतिसे साधन चतुष्टय संपन्नतारूप अधिकार प्राप्त होनेते अनंतर ब्रह्मस्वरूपका विचार करना. और 'अतः' यह शब्द हेत्वर्थ है कहिये जा हेतुसे वेदही स्वयं श्रेयके साधन अग्निहोत्रादि कर्मनके स्वर्गादि फलकूं अनित्यता दर्शावेहै तामें श्रुतिः (छां. उ. ८।१।१)

"तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते"

इत्यादि (अर्थः—इसलोकमें जो कर्मसे संपादन किया धान्यादि राशिरूप लोक जैसा उपभोगसे नष्ट होवेहै तैसाही पुण्यसे संपादन किया स्वर्गलोकभी

नाशकूं प्राप्त होवे है.) तथा वेदही ब्रह्मविज्ञानसे परम-पुरुषार्थकूं कहिये मोक्षकूं दर्शावेहै. तामें श्रुतिः-(तै.उ. २ । १)

"ब्रह्मविदाप्नोति परम्"

इत्यादि. याते इस हेतुसे ब्रह्मस्वरूपका विचार करना.

तहां वादीकी शंकाः-संदेहयुक्त जो विषय होवे, तामें विचार करना संभव है; ब्रह्मरूप विषय तो जीवात्मारूप होनेते संदेहयुक्त नहीं; काहे ते अहं प्रत्यय कारिके जीवस्वरूपका निश्चयहै; तथा (तै. उ. २।१)

"सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म"

इस वाक्य कारिके ब्रह्मस्वरूपका निश्चय होवेहै और सिद्धांती जो कदा ऐसे कहेः-"तत्त्वमस्यादि वाक्य कारिके जीवब्रह्मकी एकता भासमान होवेहै, और अहं प्रत्यय कारिके तो जीवब्रह्मका भेद भासमान होवेहै, याते विषय संदेहयुक्त है" परंतु यह वार्ता बने नहीं; काहेते अबाधित प्रत्यक्षरूप अहं प्रत्ययके विरो-

धसे तत्त्वमस्यादि श्रुतिके विषे जो जीवब्रह्मैक्य कहाहै, सो तो औपचारिक भासेहै; और कदाचित् सिद्धांती कहे कि–"तत्त्वमस्यादि वाक्य तो अध्यासविशिष्ट आत्मविषयकहै" यह वार्ताभी बने नहीं काहेते स्वयं-प्रकाश आत्माके विषे अध्यास कहना संभवे नहीं और प्रयोजनभी जनाता नहीं काहेते ब्रह्मज्ञान होनेतेभी मुक्ति देखनेमें आवती नहीं कहिये कितनेक जीवन्मुक्ति पुरुषनके विषेभी रागद्वेषादि व्यवहार देखनेमें आवेहै याते विचार किसवास्ते करना चाहिये; ऐसी शंकाहुये समाधानः–विषयके विषे संदेह तथा प्रयोजन दोनंभी संभवेहै; किसरीतिसे अशुद्ध अहंप्रत्ययसे जीवब्रह्मकी भिन्नता तथा ऐक्य श्रुतिसे ताकी अभिन्नता संदेहयुक्त हीहै. ताविषे ऊपर वादीने कहा किः–"श्रुतिमें जीव, ब्रह्मकी एकता तो औपचारिकहै" यह वार्ता केवल अयुक्त है. काहेते उपक्रमादि षड्विध तात्पर्यलिंगसहित अनेक श्रुतिवाक्यनके विषे औपचारिक अर्थ कहना संभवे नहीं और "मैं मनुष्य हूं कर्ता हूं" इत्यादि स्थलके विषे सर्वसिद्धान्तियोंनेभी श्रुतिके बलसे

भ्रान्तिरूप अध्यास स्वीकार कियाहै. याते ताकी अनुपपत्ति नहीं. और विषय संदेहयुक्त है, इतनाही नहीं परंतु विपर्यासभीहै. कहिये जन्ममरणादि दुःखरूप संसारके विषे सुखरूप ताकी बुद्धि इत्यादि. और जीवन्मुक्तके विषे जो रागद्वेषादि देखनेमें आवे है, सो तो अहं ममताप्रयुक्त आसक्तिके राहित्यसे बाधितानुवृत्ति करिके आभासमात्र है; याते मुक्तिरूप प्रयोजनभी संभवे है. याते ब्रह्मविचार अवश्य करना चाहिये. अब अध्यास कहिये अन्यके विषैं अन्य धर्मोंका अवभास, जैसे शुक्तिमें रजतत्व भासे है. तैसेही आनन्दात्माके विषैं युष्मदर्थभूत अहंकारादिक, कहिये लिंग, तथा स्थूलशरीरादिक तिनका अहं ममत्व करिके अवभास सो अध्यास है.

शंकाः—अविषय ऐसे प्रत्यगात्माके विषैं विषयोंके धर्मनका अध्यास होना शक्य नहीं; काहेते सर्वजनभी आपने सन्मुखस्थित शुक्तिकादि विषयके विषैं रजतादि धर्मनका अध्यास करेहै, समाधानः—प्रत्यगात्मा अविषयभूत है ऐसा नियम नहीं, काहेते आत्माके विषै अस्म-

त्प्रत्ययकी कहिये शुद्ध अहं प्रत्ययकी विषयता है तथा अपरोक्षताभी है और सन्मुखस्थित विषयके विषैंही अध्यास होवे ऐसाभी नियम नहीं; काहेते अप्रत्यक्ष आकाशके विषैंभी अज्ञानी मालिन्यादिकनका अध्यास करे है. याते प्रत्यगात्माके विषैंभी अनात्म अहंकारादिकनका अध्यास संभवे है. इसीरीतिसें अध्यासकूं ज्ञानीलोग अविद्या कहे है, और ता अध्याससें विवेक करिके जो वास्तवस्वरूपका अवधारण ताकूं विद्या कहे है. इसी अविद्यानामक आत्मा अनात्माका जो अन्योन्याध्यास ताकूं प्रमुख करिकेही विधिनिषेधपर सर्वशास्त्र तथा लौकिक, वैदिक प्रमाण प्रमेयादिव्यवहार प्रवृत्त होवे हैं—इसरीतिसें अनादि अनंत ऐसा मिथ्याप्रत्ययरूप जो अध्यास सोही अकर्ता, अभोक्ता ऐसें आत्माके विषैं कर्तृत्वभोक्तृत्वका प्रवर्तक है याते जंन्ममरणादिक सर्व अनर्थोंका हेतुभूत अविद्यारूप अध्यासके नाशनअर्थ तथा प्रत्यग्भूत जीवब्रह्मकी एकतारूप विद्याके सिद्ध्यर्थ ब्रह्मविचार करना युक्त है, तहां ऊपरके सूत्रकी मूलभूत श्रुतिः—

(बृह. उ. ५ । ४ । ५)

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः"

अर्थः—हे मैत्रेयि ! 'द्रष्टव्यः' कहिये पराग्वृत्तिके तिरस्कारपूर्वक प्रत्यक्प्रवण वृत्ति करिके आत्माका साक्षात्कार करना. तिस साक्षात्कार करनेमें साधन— 'श्रोतव्यः' कहिये प्रथम आचार्यसें उपनिषद् वाक्य करिके अद्वैत आत्मस्वरूपका विचार करना सो श्रवण; तथा 'मंतव्यः' कहिये ता आत्मस्वरूपका श्रुत्यनुसारी तर्कसें मनन करना कहिये जो श्रवण किया अर्थ ताका युक्ति करिके आत्माके विषै घटावना; जैसे किः—

(स्वात्मनिरूपण आ. ९४)

"दंतिनि दारुविकारे दारु तिरोभवति सोऽपि तत्रैव । जगति तथा परमात्मा परमात्मन्यपि जगत्तिरोधत्ते ॥ १ ॥"

अर्थः—लकडेका बनाया हस्ती बहिर्मुख वृत्तिसें देखिये तो ताके विषैं काष्ठतिरोधान होवे है, और

हस्तीही भासे है. तथा आंतरदृष्टिसे देखें तो काष्ठमात्र भासे है. और ताके विषैं हस्ती तिरोहित होवे है, तैसें बहिर्मुख वृत्ति करिके देखनेसे जगन्मात्र भासें और ताके विषैं परमात्मा तिरोधान होवे है कहिये जनाता नहीं; तथा अंतर्मुखवृत्ति करिके देखनेतें एक परमात्मा हि प्रतीत होवे है और ताके विषैं जगत् तिरोधानकूं प्राप्त होते हैं.

तथा 'निदिध्यासितव्यः' कहिये श्रवण मननसें निश्चित किये आत्मतत्त्वके विषैं चित्तकी एकतानतारूप कहिये ब्रह्माकार वृत्त्यारूढतारूप ध्यान करनाः—

शंकाः—श्रवण मनन और निदिध्यासन इन तीनो-मेंसें श्रवणरूप साधन करिके आत्माका साक्षात्कार होवेगा; याते तीनोंके अनुष्ठानका क्या प्रयोजन ? समाधानः—केवल श्रवण मात्र करिकेही साक्षात्कार होवे नहीं. काहेसे मनन निदिध्यासन विना असंभाव-नादि प्रतिबंधन की निवृत्ति न होनेते फलसहित आत्माका अपरोक्षज्ञान होवे नहीं, याते साधनोंके

अनुष्ठानके अभ्यासते प्रत्यगभिन्न ब्रह्मका साक्षात्कार होवे. ताविषे श्रुतिका प्रमाणः– (बृ. उ. ६ । ५।१)

"तस्माद्ब्राह्मणः पांडित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत बाल्यं च पांडित्यं च निर्विद्याथ मुनिरमौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः केन स्याद्येन स्यात्तेनेदृश एवातोऽन्यदार्त्तम्"॥

अर्थः–याते अद्य कालकेविषेभी "ब्राह्मणः पांडित्यं निर्विद्य" कहिये श्रुति आचार्यसे वास्तव आत्मविज्ञानका श्रवणरूप पांडित्यकूं निःशेष संपादन करिके पीछे ता ज्ञानकूं युक्ति करिके दृढीकरणरूप मननात्मक बाल्यभावकूं कहिये ज्ञानबलकूं निःशेषसंपादन करिके पीछे निदिध्यासनरूप मौनकूं निःशेष संपादन करिके कृतकृत्य होवे. इस रीतिसे जो ज्ञान संपादन करे सोही" ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः" इस व्युत्पत्तिसे निरुपचरित ब्राह्मण्यवान् कहिये है;और अविनाशीभी कहिये है. इससे अतिरिक्त अविद्याका विषय सर्वभी विनाशी है; याते एक आत्माही नित्यमुक्त है.

इस रीतिसे मुमुक्षुनें ब्रह्मविचार करना. यह वार्ता सिद्ध हुई; याते ता ब्रह्मका स्वरूप तथा प्रमाण क्या है ? ताके प्रदर्शनार्थ सूत्रकार ताका प्रथम तटस्थ लक्षण और स्वरूपलक्षणभी कहेहैं.

(सूत्र १ । १ । २)

"जन्माद्यस्य यतः ॥ २ ॥"

अर्थः-'अस्य' कहिये नामरूप करिके भासमान होनेवाला तथा अनेक कर्ता भोक्तासे युक्त और देश, काल, निमित्त, क्रिया, फलोंका आश्रय भूत तथा मनकरिकेभी अचिंत्य रचनावाला यह कहिये प्रत्यक्ष सिद्ध ऐसे दृश्य जगतका, 'जन्मादि' कहिये जो उत्पत्ति, स्थिति और लय सो 'यतः' कहिये सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान् जाकारणसे होवेहै सो ब्रह्म ऊपरके सूत्रकी मूलभूत श्रुतिः (तै. उ. ३ । १ ।)

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशंतीति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति" इति ॥

अर्थः—'यतः' कहिये मायाविशिष्ट जा कारणतें 'इमानि भूतानि' कहिये ब्रह्मसें अर्थात् हिरण्यगर्भसें आरंभिके स्तंबपर्यंत सर्वभूत 'जायन्ते' कहिये उत्पन्न होवेहैं;तथा 'जातानि' कहिये उत्पन्न हुये'येन जीवन्ति' कहिये जाकी सत्ताकरिके जीवन अर्थात् वृद्धिकूं प्राप्त होवेहैं. तथा विनाश कालके विषे 'प्रलयन्ति' कहिये लय पामते हुवे जिस ब्रह्ममें 'अभिसंविशन्ति' कहिये तादात्म्यभावकूं प्राप्त होवें सो ब्रह्म, अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति, लय तीनों कालके विषे सर्वभूत देह जा अधिष्ठानस्वरूप ताकूं कहिये ब्रह्मतादात्म-भावकूं त्याग करे नहीं सो ब्रह्म इस रीतिसें ब्रह्मका तटस्थलक्षण कह्या तब ब्रह्मका स्वरूप लक्षण (जाका स्वरूपमें वास्तव सत्त्व है) कौनसा है ? ऐसी आकांक्षा होनेते ताविषे भाष्यकारने कह्या किः—'यतो वा' इस श्रुतिमें जो यतः पदहै, तिसकरिके इस श्रुति-निर्णायक (तै० उ० ३ । ६)

"आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।"

अर्थः—आनन्दस्वरूप ब्रह्मसेही सर्वभूत उत्पन्न होवेहैं, आनन्दसेही जीवेहैं, और लय पामिके आनन्दके विषेही एकताकूं प्राप्त होवेहैं. इस श्रुतिसे आनन्दही ब्रह्मका स्वरूपलक्षण तथा (तै० उ० २।१)

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"

इत्यादि स्वरूपलक्षणके वाक्यसभी जानना.

तृतीयसूत्रकी अवतरणिका ।

सूत्रकारने चैतन्यस्वरूप ब्रह्मके विषे पूर्वसूत्र कहिके सर्व जगत्का मायोपाधिसे कारणत्व कथन किया. तासे सर्वज्ञताभी अर्थात् प्रतिज्ञात किथी; काहेते चेतनमय सृष्टि ज्ञानपूर्वकही होवेहै; तथा च जो ब्रह्म सो सर्वज्ञ है, सर्व जगत्का कारण है याते जो जा कार्यका कर्ता होवे सो ताके ज्ञानवाला होवेहै जैसे कुलालादि इस रीतिसे अनुमान करिके सिद्ध हुयी सर्वज्ञताकूं प्रधानादिकनका निरास करिके वेदकर्तृत्वस्वरूप हेतुसे दृढ करते हुये सूत्रकार कहतेहैं (शा० सू० १. १. ३)

"शास्त्रयोनित्वात्" ॥ ३ ॥

अर्थः—अनेकविद्या स्थानों करिके अति महत् तथा दीपकी न्याई सर्वार्थकूं द्योतन करनेवाला तथा सर्वज्ञकी न्याई जो ऋग्वेदादि शास्त्र ताका कारण ब्रह्म है; ऐसे ऋग्वेदादि महत्शास्त्रका संभव सर्वज्ञ ब्रह्म विना अन्यसे होवे नहीं जो कोई पुरुषने एकविषय ग्रहण करिके शास्त्र रचा होवे; जैसे पाणिनिने व्याकरण रचाहै तैसे सो पुरुषभी या लोकमें विद्वत्तर कहावेहै; तव अनेक शाखाभेदविशिष्ट तथा देव, तिर्यक्, मनुष्य, वर्ण, आश्रम इत्यादि विभागमें हेतुभूत तथा सर्वज्ञानोंका आकर कहिये खानिरूप ऐसे ऋग्वेदादि महत् शास्त्रकी प्रयत्न विनाही लीलासे निश्वासकी न्याई जा जगत्कारण ब्रह्मसे उत्पत्ति हुईहै सो ब्रह्म सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होवे.तामें क्या आश्चर्य ? श्रुतिभी इस प्रकारसे कहे हैः—(बृ. उ. ५ । ४ । १०)

"अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः" इत्यादि.

अथवा ब्रह्मके वास्तव स्वरूप ज्ञानके विषे ऋग्वेदादि शास्त्रही 'योनि' कहिये प्रमाणभूतहै. याते शास्त्र-

योनि शास्त्ररूप प्रमाणसेही जगत्को जन्मादिकनका कारणीभूत ब्रह्म जाननेमें आवेहै; इसी अर्थमें अन्य श्रुतिः—(बृ. उ. ६ । ९ । २६)

"तन्त्वौपनिषदम्पुरुषम्पृच्छामि"

अर्थः—हे शाकल्य ! 'औपनिषद' कहिये केवल उपनिषद्प्रमाणकरिकेही गम्य, अन्य प्रमाणकरिके नहीं ऐसे पुरुषकूं विद्याभिमानवाले तेरेकूं पूछूंहूं.

चतुर्थसूत्रकी अवतरणिका.

शंकाः—ऊपरके सूत्रमें ब्रह्मके विषैं वेदशास्त्रकूं प्रमाणत्व कहा सो घटे नहीं काहेते (पूर्वमीमांसा १ । २ । १)

"आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्"

या जैमिनिसूत्रमें सर्ववेदकूं क्रियापरत्व कहिये कर्मके विषैं विनियोग दर्शाया है, याते वेदांतवाक्यपर कर्म न होनेते तिनकूं आनर्थक्य प्राप्त हुवा याते तिनकूं स्तावकत्व कहिये स्तुतिपरत्व करिके कर्मविधिवाक्यनका शेष कहिये अंगरूपत्व निश्चित किया है; और

वेदांतप्रकरण कर्मप्रकरणसें भिन्न होनेते ताकूं कर्मका अंगत्व बने नहीं, ऐसे कदाचित् सिद्धांती माने तो वेदांतमें स्थित उपासनावाक्य विषैं कथित उपासनात्म कर्मनकी स्तुतिपरता करिके तिनके अंगभूतहै, याते वेदांतवाक्य ब्रह्ममें प्रमाणभूत नहीं. और परिनिष्ठित (सिद्ध) ब्रह्म तो प्रत्यक्षादिप्रमाण करिकेही जाननेमें आवे है, यातेभी वेदांतवाक्य ब्रह्मके विषैं बने नहीं, ऐसी वादीकी शंका होनेते सूत्रकार कहे हैं:—

"तत्तु समन्वयात्" ॥ ४ ॥ (शा. सू. १ । १ । ४)

अर्थः—'तु' शब्द पूर्वपक्ष व्यावृत्तिके अर्थ है. सो ब्रह्म ,सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्वजगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लयका कारण है, इस प्रकारसे वेदांत शास्त्रसे जनाता है. शंकाः—किस रीतिसे ? उत्तर "समन्वयात्" कहिये (छां. उ. ६ । २ । १)

"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्"
"एकमेवाद्वितीयं" (ऐ. उ. १ । १)

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्"
(बृह. उ. ५ । ५ । १९)
"तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनंतरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः" (मुंड. उ. २ । २ । ११)
"ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्"

इत्यादि वेदांतवाक्य तात्पर्य करिकें सर्वज्ञत्व, सर्व शक्तिमत्त्वादि अर्थके प्रतिपादकरूपसे ब्रह्मके विषैं समन्वित (घटनेवाले) हैं; तिन वाक्य घटक पदोंका ब्रह्मके विषै समन्वय निश्चय करिके जाननेते कर्म उपासनादि परतारूप अर्थान्तरकी कल्पना करणी सो केवल अघटित है; काहेते श्रौत (श्रुतिप्रतिपादित) मुख्य अर्थकी हानि, और अश्रौत गौण अर्थकी कल्पनारूप दोपका प्रसंग आवे है, और वादीके कथनानुसार तिन वाक्यनके विषैं कर्ता देवतादिस्वरूपका प्रतिपादकत्व निश्चित होता नहीं, काहेते "तत्केन कं पश्येत्" इत्यादि श्रुतिने क्रियाकारक और फल का निराकरण किया है, और वादीके कथनानुसार परिनिष्ठित ब्रह्मस्वरूपको प्रत्यक्षादि प्रमाणका विषयत्व

असम्भावित है, काहेते "तत्त्वमसि" या वाक्यसें प्रतिपादित ब्रह्मात्मैक्यभावका साक्षात्कार महावाक्य विना प्रत्यक्षादिप्रमाण करिके होवे नहीं, जो वादी कहे 'हेयत्व' उपादेयत्व राहित्यसें ब्रह्म आत्माकी एकताका उपदेश निरर्थक है, यह दोषभी बटे नहीं. काहेते हेयोपादेयधर्मरहित ब्रह्म आत्माकी एकतासेंही सर्व क्लेशहानि और निरतिशयानंदकी प्राप्तिरूप परमपुरुषार्थसिद्ध होवे है, तहां श्वेताश्वतरश्रुतिः—(१।११)

"ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः"

अर्थः—द्योतनात्मक आत्मस्वरूपका साक्षात्कार करनेते अविद्यादि सर्वपाशोंकी 'अपहानिः' कहिये नाश होवे है, और अविद्यादि क्लेशनाश हुयेते तिनके कार्यभूत जन्ममरणकीभी 'प्रहाणिः' प्रकर्ष करिके नाश होवे है.

शंकाः—तब वेदांतवाक्य कर्मपर न हों परंतु उपासनापर कहिये उपासनामें अंगभूत हों. समाधानः—

प्रतिशाखामें स्थित देवताके प्रतिपादक प्राण पंचाग्नि आदिक वाक्योंकूं तो उपासनापरतामें कोईभी विरोध नहीं, परंतु "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि ब्रह्मस्वरूपके प्रतिपादक वाक्योंकूं तो उपासनापरत्व संभवे नहीं, काहेते ब्रह्मैकत्वविज्ञानके विषे हेय उपादेयके राहित्यसे क्रियाकारक इत्यादि द्वैतज्ञानका उपमर्द होवे है; याते ब्रह्म आत्माके एकत्व विज्ञान करिके उन्मथन (विनष्ट हुये द्वैत ज्ञानका पुनः उत्पन्न होनेका संभव नहीं. जिसकरिके ब्रह्मकूं उपासना विधिका शेषत्व कह्या जावे; यद्यपि कर्मोपासना कांडमें वेदवाक्योंके विधिकी शेषता विना प्रमाणत्व देखनेमें आवता नहीं; तथापि फलपर्यंत कहिये निःशेषानर्थकी निवृत्ति और निरतिशयानंदकी प्राप्तिपर्यंत जो आत्मविज्ञान तद्विषयक वाक्योंकूं स्वतः प्रामाण्य कोईसेभी खंडन करने शक्य नहीं. और वेदान्त शास्त्रका प्रामाण्य अनुमानगम्य नहीं कि तिस करिके अन्य स्थल दृष्टांतकी जरूर होवे ! (कहिये वेदांत वाक्योंका ब्रह्मके विषेही समन्वय है. याते

ब्रह्मकूं शास्त्रप्रमाणकत्व सिद्ध हुवा) इस प्रकारसें ब्रह्मआत्माकी एकतारूप ज्ञानहै प्रयोजन जिनका और ब्रह्म आत्माके एकत्व विषेहै तात्पर्य करिके समन्वय जिनका ऐसे वेदान्त वाक्यनकूं कर्मोपासनाके संस्पर्श विनाही ब्रह्मके विषे पर्यवसान कथन किया; और सो ब्रह्म सर्वज्ञ सर्वशक्ति जगत्के उत्पत्ति, स्थिति, लयका कारण यह वार्ताभी कथन करी.

पंचम सूत्रकी अवतरणिका.

तहां सांख्यशास्त्रवाले. ऐसा कहेहैं, यद्यपि सिद्ध ब्रह्मके विषै वेदान्त वाक्यनका समन्वय हो तथापि ब्रह्मके विषेही वाक्यपदोंकी शक्तिसे प्रवृत्ति अयुक्त है; काहेते अवाङ्मनस गोचरहै. और अनुमानादि प्रमाणकरिके अगम्यब्रह्मके विषे निर्विकारतासे कारणत्व (जगत्कर्तृत्वादि) कहना सोभी अयुक्त है; याते वेदान्तका ब्रह्मके विषे समन्वय नहीं किंतु स्वर्गादि जो कार्य सो जडप्रकृतिकं कहिये जड कारणवाला ऐसा कार्यत्वरूप हेतुसे है. जैसा घट; इस प्रकारके अनुमान

करिके गम्य ऐसा जो त्रिगुणात्मक प्रधान ताके विषेही वेदांतोंका समन्वय घटे है ऐसा मानेहैं. और काणाद मतानुसारी तो "यतो वा इमानि" इत्यादि वाक्यनसेही ईश्वरके विषे निमित्तकारणताका अनुमान करे हैं, और परमाणुके विषे समवायिकारणत्व (जिसके विषे समवाय संबंधसे कार्य पैदा होवे ताका धर्म) मानेहैं, इस प्रकारसें दुसरेभी बौद्धादि तर्कवादी (तै. उ. २ ।७)

"असद्वा इदमग्र आसीत्"

इत्यादि वाक्याभासनकूं तथा जो वस्तु सो शून्यावसान है, कहिये शून्यमेंही पर्यवसानकूं पावेहै जैसा दीप तैसे; इत्यादि युक्त्याभासनका अवलंबन करते हुये वादीरूपसे ब्रह्मकारणतामें दोषदेनेकूं खडे भये; तामें (१) निरीश्वर सांख्य कपिल (२) सेश्वर सांख्य पातंजल (३) वैशेषिकशास्त्र कणादमुनि प्रणीत (४) न्यायशास्त्र गौतममुनिप्रणीत (५) पाशुपतशास्त्र (६) वैष्णवशास्त्र,यह छः वादी वेदान्तोंके समन्वयमें श्रुतिके वाक्याभासवाले पूर्वपक्षी (द्वैतमतवाले)

तथा (१) बौद्ध (२) आर्हत (३) चार्वाक यह तीन वादी युक्त्याभासवाले (नास्तिकमतवाले).

तहां पदवाक्यप्रमाणके विषे कुशल ऐसे श्रीव्यास भगवान् वेदान्तवाक्योंका ब्रह्मपरत्वकूं दर्शावने अर्थ वाक्याभास और युक्त्याभासके प्रतिपादनोंकूं पूर्वपक्षरूप गणिके तिनका निराकरण करेहैं.तामैं सांख्य त्रिगुणात्मक अचेतन प्रधानकूं जगतका कारणत्व मानते हुये सिद्धांतकूं कहेहैं, तूं सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् ब्रह्मके विषे जगत्का कारणत्वप्रदर्शक जिन जिन वेदान्त वाक्यनकूं प्रमाणभूत कहेहैं. परंतु सो सर्व वाक्य प्रधानके विषे जगत्कारणत्वपक्षके विषेभी घटावनेकूं शक्य हैं; तिस रीतिसे प्रधानकूंही सर्वशक्तिमत्त्व आपने विकारनके विषे घटे है तथा सर्वज्ञत्वभी घटेहै. किस प्रकारसे कि हेवेदान्ति तूं जिस ज्ञानकूं मानेहै, सो तो ज्ञान सत्त्वगुणका धर्म है (गी. १४ । १७)

"सत्वात्संजायते ज्ञानं"

यह गीतास्मृतिके प्रमाणसे; और सत्त्वगुणका धर्मरूप ज्ञानकरिकेही कार्यकारण संघातवाले योगीपुरुष सर्वज्ञ

इस प्रकारसे प्रसिद्ध है सत्त्वगुणका जब निरतिशय उत्कर्ष होवे तबही सर्वज्ञत्व प्रसिद्धहै और कार्य कारण रहित केवल उपलब्धिमात्र पुरुषके विषे सर्वज्ञत्व अथवा किंचिज्ञत्व कल्पनाकरना संभवे नहीं; और प्रधान तो त्रिगुणात्मकहै याते सर्वज्ञानोंका कारणभूत सत्त्वगुणका साम्यरूप प्रधानावस्थाके विषेभी विद्यमानहै. याते जो अचेतन प्रधानताके विषेही सर्वज्ञत्व वेदान्तमें उपचारसे कहाहै. और जगत्की उत्पत्तिसे प्रथम सर्वकारकोंसे रहित ब्रह्म तैंने मानाहै. परंतु तिस कालके विषे ज्ञानके साधन शरीर इंद्रियादिकनके अभावसे ब्रह्मके विषे ज्ञानकी उत्पत्तिभी संभवे नहीं. और त्रिगुणात्मक प्रधानके विषे परिणामभी संभवेहै. याते मृदादिकनकी न्याईं कारणत्वभी ताकूंही संभवे संघातरहित एकब्रह्मके विषे कारणत्व संभवे नहीं इस रीतिसे वादीका पूर्वपक्ष होनेते सूत्रकार ताका निराकरण करेहै.

"ईक्षतेर्नाशब्दम्" ॥ ५ ॥ (शा. सू. १।१।५)

अर्थः—सांख्यमतवालेने कल्पित अचेतन प्रधान जगत्कारणत्वरूपसे वेदान्तोंमें आश्रयण करनेकूं शक्य नहीं; काहेते सो अशब्द कहिये श्रुतिकारिके अप्रतिपादित है, और ईक्षणकर्तृत्व जडकूं संभवेभी नहीं; तथा श्रुतिमें तो जगत्कारणके विषे ईक्षणकर्तृत्व कहाहै. कहिये विचारपूर्वक सृष्टिकर्तृत्व कहाहै. ताविषे श्रुतिः— (छा. उ. ६ । २ । १)

"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" "एकमेवाद्वितीयम्"

इस प्रकारसे उपक्रम करिके (छा.उ.६।२।२)

"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय" "तत्तेजोसृजत"

इत्यादि श्रुतियनमें इदं शब्दवाच्य नामरूपात्मक जगत्का उत्पत्तिसे पूर्व सद्रूपसे अवधारण करिके सोही सच्छब्द वाच्य कारणके विषे ईक्षणपूर्वक तेज आदि कार्यका स्रष्टृत्व दर्शाया है और (ऐ. उ. १।१)

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किञ्चन मिषत्" "सऽऐक्षत लोकान्नु सृजा इति" "सऽइमाँल्लोकानसृजत"

इत्यादि श्रुतियनमेंभी ईक्षणपूर्वक सृष्टि कथन करी है, तथा षोडश कलावान् पुरुषकूं ग्रहण कारिके अन्य श्रुति कही है (प्र. उ. ५ । ३)

"स ईक्षाञ्चक्रे" (प्र. उ. ५ । ४) "स प्राणम-सृजत"

इन् श्रुतियनमेंभी ईक्षणपूर्वक सृष्टिकर्तृत्व कहाहै. अब जो वादीने कहाथा कि 'सत्त्वगुणका धर्म जो ज्ञान तिसकरिके प्रधान सर्वज्ञ कहावेहै' सो घटे नहीं. काहेते प्रधान अवस्थामें गुणत्रयका साम्य होनेते सत्त्वका धर्म ज्ञान संभवेही नहीं. और वादीने कहाथा कि "सर्वज्ञान शक्तिमत्त्व कारिके प्रधान सर्वज्ञ कहावे" सोभी संभवे नहीं. काहेते हे वादी ! जब तूं गुणसाम्य अवस्थाके विषेभी सत्त्वाश्रित ज्ञानशक्तिकूं लेइके प्रधा-नकूं सर्वज्ञ मानेहै, तब रज तममें स्थित ज्ञानकी प्रति-बंधकताशक्तिकूं लेइके किञ्चिज्ञताभी क्यों कहता नहीं. और साक्षीरहित केवल सत्त्ववृत्ति किसीकूंभी जाननेकूं शक्त नहीं.काहेते अचेतन प्रधानकूं साक्षिता संभवे नहीं याते प्रधानकूं तूं जो सर्वज्ञ मानेहै,सो अत्यन्त अयुक्तहै.

शंकाः–साक्षीनिमित्त ईक्षणकर्तृत्व प्रधानमेंभी कल्पना करेंगे जैसे अग्निनिमित्त दाहकर्तृत्वलोह-पिंडमें कल्पना होवे तैसे.

उत्तरः–साक्षीनिमित्त ईक्षण कर्तृत्व गौण लेइके प्रधानकूं जगत्कारणत्व कहना उसकरते सर्वज्ञ मुख्य ब्रह्मकूं जगत्कारण कहनाही युक्त है. और वादीने जो कहाथा कि'मृदादिकनकी न्याई परिणामि प्रधानकूं कारणत्व घटे' सोभी'अशब्दं' कहिये. श्रुतिप्रतिपादित न होनेतेही अयुक्त जाणना.इस रीतिसे सांख्यमतके खंडन न्यायकरिकेही ऊपरउक्त वाक्याभास तथा युक्त्याभास लेइके द्वैतप्रतिपादन करनेवाले सर्व वादियोंके मतका श्रुति–युक्तिप्रभृतिसें खंडन करिके एक अद्वैत ब्रह्म श्रीव्यासभगवानजीने प्रतिपादन कियाहै. उपर्युक्त प्रकारका पंचसूत्रका अभिप्राय है.

तहां स्वाराज्यसिद्धिका श्लोकः–

(अवतरणिका.)

चौदमें श्लोकमें "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" या सूत्रकरिके चित्तशुद्धिके अनंतर साधनचतुष्टयसंपन्न

मुमुक्षु अधिकारीनें ब्रह्मविचारका उपक्षेप किया; तहां वादीने ब्रह्मविचारका आक्षेप (निषेधरूप विप्रतिपत्ति) दर्शानेतें सिद्धांती सर्ववादियनका पराजय करिके स्वमत स्थापनाके अर्थ जिज्ञासासूत्रमें संनिहित तत्पदार्थोंके व्यवस्थापनद्वारा उपक्रम करते हुये सर्वजगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानरूप-कारणत्व करिके उपलक्षित सच्चिदानंदस्वरूप अद्वय प्रत्यगभिन्न श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्मके विषैं सर्ववेदांतनका समन्वय प्रदर्शन करिके समस्त शास्त्रार्थसंग्राहक उत्तर त्रिसूत्रीका अर्थसें कथन करते हुये प्रतिज्ञा करतेहैं.

श्लोक. (स्वारा. १ । १५)

"यस्मादुत्पत्तिगुप्तिक्षतिरपि जगतां यच्च शास्त्रैकयोनिः। सर्वज्ञं मायया यत्सहजसुख-सदद्वैतसंवित्स्वरूपम् ॥ तद्ब्रह्म स्वप्रकाशं श्रुतिशिखरगिरां सैव तात्पर्यभूमिः । स्वात्माऽसौ यं विदित्वा जनिमृतिजलधिंनिस्तरंतीह संतः ॥ १ ॥"

अर्थः—अभिन्न निमित्तोपादानरूप जासें 'जगत्' कहिये हिरण्यगर्भसें आरंभिके चतुर्विध भूतग्रामपर्यंतकी अथवा आकाशादिस्थूलशरीरपर्यंत कार्यवर्गकी उत्पत्ति (तादात्म्य करिके आविर्भाव) तथा गुप्ति (पालन) तथा 'क्षति' (कारणमात्र परिशेषरूप तिरोभाव) होवेहै; सो ब्रह्म इसरीति "जन्माद्यस्य यतः" या सूत्रमें प्रदर्शित लक्षण कथन किया; और उभयविध कारण ब्रह्महीहै,प्रधानादिक नहीं.इस रीतिसे प्रतिज्ञाभी प्रदर्शित करी. और ब्रह्मसूत्रः–(१ । ४ । २३)

"प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टांतानुपरोधात्"

(अर्थः—ब्रह्म केवल निमित्तकारणही नहीं किंतु उपादानभी अवश्य मानना चाहिये,काहेते तैसा मानने. तेही श्रुतिप्रसिद्ध प्रतिज्ञा और दृष्टान्तके साथ विरोध होवेनहीं.) तामें (छां. उं. ६ । १ । १)

"उततमा देशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतममतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति"

इस श्रुतिमें एक विज्ञानकरिके सर्वविज्ञानकी प्रतिज्ञा प्रतीत होवेहै. सो ब्रह्मकूं उपादान माननेसेंही घटेहै अन्यथा नहीं; तथा (छां. उ. ६ । १ । १)

"यथा सौम्येकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्"

या श्रुतिमें मृत्तिकाका दृष्टांत कहाहै सोभी ब्रह्मकूं उपादान माननेसेही घटेहै अन्यथा नहीं. तथा ब्रह्मकूंही निमित्तकारणभी अवश्य मानना चाहिये काहेते जैसे लोकमें उपादानभूत मृत्तिकादिकनका अधिष्ठाता अन्य कुलालादिक है तैसे उपादानभूत ब्रह्मका अधिष्ठाता अन्य कोई है नहीं काहेते (छां० उ. ६ । २ । १) "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" इस श्रुतिमें जगत्के उत्पत्तिसे पूर्व अद्वितीय ब्रह्मकाही अवधारण किया है याते ब्रह्मके विषेही अभिन्न निमित्तोपादानत्व अंगीकार करना युक्त है. मूलसूत्रमें जो आदिपद है ताकरिके स्थिति और लय इन दोनूंका ग्रहण करना. काहेते सूत्रस्थ 'यतः' या पद करिके (तै० उ० २ । १)

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन
जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति"

इस श्रुतिमें दर्शित मूलकारणके अधीन ऐसे जन्मादित्रयकीही प्रत्यभिज्ञा है परंतु यास्कमुनिने प्रदर्शित और अवांतर कारणके अधीन ऐसे "जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यति" कहिये षट्भाव विकारोंका ग्रहण नहीं ऐसे जाननेके अर्थ श्लोकमें 'उत्पत्ति गुप्ति क्षतिः' इन तीनोंका ग्रहण किया है, मूलकारणके लाभ अर्थ सूत्रमें जो 'यतः' यह तसिल्प्रत्ययांत पद है, तासेही "जनिकर्तुःप्रकृतिः" इस पाणिनिसूत्रके बलसे उपादानत्वका लाभ होनेते जा स्थिति लयका ग्रहण किया सो लक्षणत्रयके संग्रह अर्थ है, ऐसा कितनेक कहे हैं; दूसरे तो निमित्तमात्र के विषेभी पंचमी विभक्तिका अनुशासन है, याते जो लयका आधारत्व कहा सो उपादानत्व लाभके अर्थ है, और जो स्थितिका कारणत्व कहा सो तो चेतनत्व लाभके अर्थ है, याते जन्मादित्रयका ग्रहण करिके लब्ध हुवा जो अभिन्न निमित्तोपादान कारण-

त्व सोही लक्षण ऐसा करै है; वस्तुतः तो जो लक्षण सो लक्ष्यके परिचयअर्थ है और जो अद्वितीय ऐसा जो लक्ष्य सो तो अध्यारोप अपवाद करिके कार्यवर्गके विषे मिथ्यात्व निर्णय विना परिचय करनेकूं शक्य नहीं; याते मिथ्यात्व निर्णय करिके लक्ष्यके परिचयमें उपयोगी होनेते जन्मादित्रयका ग्रहण किया है. अचिंत्य रचनावाले सर्वजगत्का रचन अचेतन प्रधान से होना शक्य नहीं. याते सर्वज्ञ, सर्वशक्तिसम्पन्न ऐसा श्रुत्युक्त ब्रह्मही जगत्का कारण सिद्ध होवे है, यह तात्पर्यार्थ है.

जगत्की रचनासे कारणके विषे सर्वज्ञत्वादिक सिद्ध होवे है इतनाही नहीं; किंतु सृज्यका एक देश-भूत और सर्वपदार्थ प्रकाशन करनेमें समर्थ और समस्त विद्यास्थानों करिके उपबृंहित ऐसे ऋग्वेदादि रूप शास्त्रका जो पुरुष निश्वासकी न्याई अनायास करिके प्रकाशन, सोभी कारणके विषे सर्वज्ञत्वादिक धर्मकूं साधनेमें समर्थ है. इस अभिप्रायसे गर्भित ऐसे "शास्त्रयोनित्वात्" इस सूत्रका अर्थसे पठन करे

है 'यच्च शास्त्रैकयोनिः' कहिये जो ब्रह्म ऋग्वेदादिक शास्त्रका एकजनक होनेतेभी सर्वज्ञ है; अथवा "जन्माद्यस्य यतः" या सूत्र करिके तथा ताकी मूलभूत "यतो वा इमानि" इस श्रुतिने कारणके विषे कार्यलिंगक अनुमानरूप प्रमाण प्रदर्शन किया; ता अनुमानसे प्रधानादिकनके विषेभी कारणत्व प्राप्त होगा ऐसी वादीकी आशंका होनेते "शास्त्रयोनित्वात्" या सूत्रके अर्थान्तरकूं कहे है जो ब्रह्म एक शास्त्रही है योनि (प्रमाण) जाका ऐसा है 'शास्त्रैकयोनिः' कहिये ब्रह्म वेदैकप्रमाण है; काहेते "नावेदविन्मनुते तं बृहंतम्" (वेदकं नहीं जाननेवाला पुरुष ता व्यापक परमात्माकूं जाननेकं समर्थ नहीं) (बृ. उ. ५ । ९ २६) "तन्त्वौपनिषदम्पुरुषम्पृच्छामि" (केवल उपनिषद्सेही गम्य ऐसे पुरुषकूं कहिये आत्माकूं तेरेकूं मैं पुछू हूं) इत्यादि श्रुतियनसे ब्रह्मकूं शब्दसे इतर प्रमाणका अविषयत्व सिद्ध होवेहै ।

शंकाः—अनुमानके द्वाराही श्रुतिब्रह्मका प्रतिपादन करेहै. ऐसी कल्पनासें ब्रह्मकूं अनुमानका गोचरत्व संभवे.

समाधानः—साक्षात् ब्रह्मबोधन विषे समर्थ ऐसी श्रुतिकूं अनुमानद्वारा बोधकत्व कल्पना करनेमें कोईभी प्रयोजन नहीं; तथा ऐसी कल्पनामें श्रुतिकूं अनुमानका अनुवादकत्व होनेते अप्रामाण्य प्राप्त होवेगा, याते सो कल्पना अनुचित है. और जो कार्य सो कारणके अस्तित्वमात्र विषै लिंग (हेतु) है, परंतु प्रधान अथवा ब्रह्महीकारण इस रीतिसे विशेष निर्णयमें लिंग नहीं; काहेते अनेक तार्किकोंने अन्यथा अन्यथा कल्पना करीहै. और विशेष निर्णयमें हेतुका अभावभी है. ब्रह्म जगतका कारण कहने योग्य नहीं; काहेते (बृ. उ. ६ । ९ । ९)

"अस्थूलमनण्वह्रस्वदीर्घम्"(श्वे. उ. ६।९)

"न तस्य कार्यं करणं च विद्यते" (बृ. उ.५। ५ । १९) "तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम्"

इत्यादि श्रुतिने ब्रह्मके विषे सर्वधर्मशून्यत्वका प्रतिपादन कियाहै. यद्यपि ब्रह्म निर्धर्मक है, तथापि "यतो वा" इत्यादि सृष्टिवाक्यनके प्रामाण्यसे जैसें

दुग्धादि दध्यादिभावकरिके परिणामकूं प्राप्त होवेहै; तैसे जगदाकार परिणाम[1]कूं प्राप्त होवे ऐसा मानो तो, कृत्स्न परिणाम माननेमें जगत्से अतिरिक्तता करिके ब्रह्मके अभावका प्रसंग होवेगा; जो कदाचित् एकदेश-करिके परिणाम मानो तो निरवयवत्व प्रदिपादक श्रुति-का व्याकोप होवेगा; और कृत्स्न (संपूर्ण) और एकदेश दोनों पक्षमें ब्रह्मके विषे अनित्यत्वका प्रसंगभी आवेगा ऐसी वादीकी शंका होनेते कहे है 'मायया' कहिये (श्वे. उ. ४। १०)

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्"

इत्यादि श्रुतिप्रामाण्यसे अघटित अर्थ घटनसमर्थ ऐसी माया करिके ब्रह्मके विषै कारणत्वादि धर्म संभवे है. अभिप्राय यह है, जो कदाचित परिणामवादका आश्रयण करिके सर्वभी कार्यवृंद कारणका साथ सम-सत्तावाला अंगीकार करया होवे तो कृत्स्न परिणाम अथवा एकदेशपरिणाम दोनों पक्षविषे पूर्वोक्त दोष

---

१ "कारणेन समसत्ताकोऽन्यथाभावः परिणामः"

अर्थः—कारणके साथ समसत्तावाला जो अन्यथाभाव सो परिणाम. जैसे सुवर्णका कुंडल,

प्रसक्त होवेगा; परंतु हम पारिणामपक्ष अंगीकार करते नहीं; किंतु विवर्तवादका आश्रयण करतेहैं याते रज्जु-आदिकके विषे सर्पादिकनकी न्याईं अविकृत ऐसे वस्तुके विषे अज्ञानसे अध्यस्त ऐसा कार्यवृन्द वस्तुतः अधिष्ठानकूं स्पर्श करे नहीं, याते ताकूं दूषित करने समर्थ नहीं अद्वितीय वस्तुके विषेही जगत्कारणत्व निर्वाह अर्थ कल्पी ऐसी माया धर्मि ग्राहक मानस(सृष्टि श्रुतिके प्रामाण्यसे) और अधिष्ठानसत्तासे मिथ्याभूतही सिद्ध होवेहै,याते मिथ्याभूत मायासे हुवा जो जगत्का-रणत्व ताकरिके ब्रह्मकूं विकारित्व प्रसक्त होवे नहीं तहां भाष्यः—शारीरक अध्यासभाष्य—

"यत्र हि यदध्यासस्तद्गतेन दोषेण गुणेन वा अणुमात्रेणापि स न संबध्यते"

अर्थः—जाके विषे जिसका अध्यास किया होवे सो अधिष्ठान तिस अध्यस्तके अणुमात्रभी गुण या दोष-करिके संबंधवाला होवे नहीं. तब वास्तवसे ब्रह्मका स्वरूप कैसाहै?ऐसी आकांक्षा होनेते "यतो वा" यावाक्यकरिके

उपक्रम किये जगत्कारणत्वका निगमन (उपसंहार) करनेवाला (तै. उ. ३ । ६) "आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्" या वाक्यसे तथा ब्रह्मवल्लीके (तै.उ.२। १) "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" या वाक्यसे सत, चित, आनंद ब्रह्मका स्वरूप है ता स्वरूप लक्षणकूं कहेहैं. जो सहज (स्वाभाविक) ऐसा सुख (परमानंद) सोही मिथ्याभूत सर्वप्रपंचके बाधका अवधिभूत है याते सत्य और इसी हेतुसे अद्वैत तथा निराकरण स्फर्ति-स्वभावसे संवित्स्वरूप जो वस्तु सो ब्रह्म.तव ता ब्रह्मका ग्राहक कौन ? या शंकाके निराकरण अर्थ कहेहैं, सो ब्रह्म स्वप्रकाश कहिये भारूप होनेते जैसा एक दीप अन्यदीपकी अपेक्षा करे नहीं तैसे ब्रह्म स्वप्रकाश विषे ज्ञानांतरकी अपेक्षासे रहितहै. उक्तस्वरूप ब्रह्मके विषे सर्ववेदांतोंके तात्पर्यका पर्यवसान दर्शक "तत्तु समन्व-यात्" या सूत्र अर्थसे पठन कहेहैं "श्रुतिशिखर गिराम्" कहिये (तै.ब्रा.) "तं ह त्रीन् गिरिरूपा-नविज्ञातानिव दर्शयांचकार" या श्रुत्यंतरके विषे वेदनकूं पर्वतके आकारसे प्रदर्शनकी प्रसिद्धिहै याते

पर्वतरूप वेदके शिखररूप जो वाक्य अर्थात् सर्व वेदांत वाक्यनकी तात्पर्यभूमि कहिये परम विश्रांतिस्थान 'सैव' कहिये सो ब्रह्महै. पूर्वोक्त प्रकारका ब्रह्म हो ता करिके हमकूं क्या प्रयोजन ? ऐसी शंका होनेते परमपुरुषार्थ-विषे पर्यवसायि वाक्यार्थकूं दर्शावैहै. यह पूर्वोक्त ब्रह्म 'स्वात्मैव' कहिये स्वकीय प्रत्यगात्म स्वरूपही है, तटस्थ नहीं जा स्वतःसिद्ध ब्रह्मसे अभिन्न प्रत्यगात्म स्वरूपकूं 'विदित्वा' श्रवणादि उपायकरिके साक्षात्कार करिके 'संतः' कहिये शांत्यादि संपन्न अधिकारी 'जनि मृतिजलधिं' कहिये जन्म मरणसे उपलक्षित ऐसे अनंत दुःखरूप समुद्रकूं इसी जन्मविषे कहिये ज्ञानोदय सम-काल "निस्तरंति" कहिये निःशेष करिके तरैहै. अर्थात् जीवन्मुक्त होइके पुनःसंसारकूं प्राप्त होते नहीं.

सूत्रके चारों अध्यायोंका निष्कृष्ट अर्थः—कहिये फलितार्थः—श्रीव्यासभगवान् सूत्रकार—

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥१॥"

या सूत्रकरिके मुमुक्षु पुरुषने त्रिविधपरिच्छेद-रहित प्रत्यगभिन्न ब्रह्मका विचारकरना ऐसी प्रतिज्ञा-

करिके, पीछे विचारनेयोग्य ब्रह्मका लक्षण क्या और तामें प्रमाण क्या है ? ऐसी आकांक्षा होनेते "जन्माद्यस्य यतः २" या सूत्रसें लक्षणका तथा "शास्त्रयोनित्वात् ३" या सूत्रसें प्रमाणका उपन्यास करिके, शास्त्र तो कार्यपर है,याते सिद्धब्रह्मपरता कैसी संभव ? ऐसी वादीकी आशंकाहोनेते "तत्तु समन्वयात् ४" या सूत्रकरिके शास्त्रको कार्यपरत्वका निरासपूर्वक सिद्धब्रह्मपरताका बहुप्रकारसें अनेकयुक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया अनंतर "ईक्षतेर्नाशब्दम् ५" या अधिकरण करिके प्रधानके विषें जगत्कारणताका खंडन और ब्रह्मके विषैही सर्व वेदांतोंकी गतिसामान्यकी प्रतिज्ञा करिके ताही गतिसामान्यकूं "आनंदमयोऽभ्यासात्" (शा. सू. १ । १ । १२) यहांसे आरंभिके प्रथम, द्वितीय और तृतीयपादोंकरिके अन्यार्थित्वशंकाके निरासपूर्वक उपपादन करनेतें अनंतर चतुर्थपादमें कितनेक अधिकरणोंसे प्रधानके विषैं अशब्दना कहिये वेदप्रतिपादितपनाके अभावका विस्तार करिके प्रमाणका उपन्यास कहिये कथन

करनेसें अनंतर (शा. सू. १ । ४ । २३) "प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्" या अधिकरण से ब्रह्मके विषे जगत्का उपादानत्व तथा निमित्तत्व अर्थात् अभिन्ननिमित्तोपादानत्वका व्याख्यान करिके प्रथम समन्वयाध्यायकी समाप्ति करते भये.

तिसते अनंतर द्वितीय अध्यायमें प्रथमपादकरिके स्वसिद्धांतपक्षमें सांख्य, योग, वैशेषादिकनकी स्मृति के विरोधका परिहार करिके सांख्यादिकोंने अद्वैत समन्वय विषे उद्भावित सर्व तर्कविरोधकूंभी सम्यक् प्रकार सें निरस्त करते भये. तिसते पीछे द्वितीयपाद करिके सांख्य, वैशेषिक, नैयायिक, बौद्ध, क्षणिक, पांचरात्रादिकनके पक्षोंमें अत्यंत निःसार युक्त्याभासकरिके कल्पितत्व स्फुट कितनेक अधिकरणोंसे दर्शायके तिनकूं अभिमत तटस्थ ईश्वरकाभी प्रमाण युक्तिके राहित्यसे निरास करते भये. तिसते अनंतर तृतीयपाद करिके भूत भोक्ताकी प्रतिपादक श्रुतिके तथा चतुर्थपाद करिके लिंगदेहकी अद्वैतविषे समन्वयके विरो-

करनेसें अनंतर (शा. सू. १ । ४ । २३) "प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्" या अधिकरणसे ब्रह्मके विषे जगत्का उपादानत्व तथा निमित्तत्व अर्थात् अभिन्ननिमित्तोपादानत्वका व्याख्यान करिके प्रथम समन्वयाध्यायकी समाप्ति करते भये.

तिसते अनंतर द्वितीय अध्यायमें प्रथमपादकरिके स्वसिद्धांतपक्षमें सांख्य, योग, वैशेषादिकनकी स्मृतिके विरोधका परिहार करिके सांख्यादिकोंने अद्वैत समन्वय विषै उद्भावित सर्व तर्कविरोधकूंभी सम्यक् प्रकारसे निरस्त करते भये. तिसते पीछे द्वितीयपाद करिके सांख्य, वैशेषिक, नैयायिक, बौद्ध, क्षणिक, पांचरात्रादिकनके पक्षोंमें अत्यंत निःसार युक्त्याभासकरिके कल्पितत्व स्फुट कितनेक अधिकरणोंसे दर्शायके तिनकूं अभिमत तटस्थ ईश्वरकाभी प्रमाण युक्तिके राहित्यसे निरास करते भये. तिसते अनंतर तृतीयपाद करिके भूत भोक्ताकी प्रतिपादक श्रुतिके तथा चतुर्थपाद करिके लिंगदेहकी अद्वैतविषे समन्वयके विरो-

अनुष्ठाता अधिकारी पुरुषकूं "असति प्रतिबंध इहैव फलं सति च तस्मिन्नमुत्र च" या अंतिम अधिकरणसे फलप्रदर्शन करिके तृतीय साधनाध्यायकी समाप्ति करते भये.

तिसते अनंतर चतुर्थ फलाध्यायके प्रथमपादके (४ । १ । १) "आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" या अधिकरणकरिके ब्रह्मसाक्षात्कारपर्यन्त श्रवणादिकनके आवृत्तिकं कर्तव्यता प्रदर्शन करिके (४ । १ । ३) "आत्मेति तूपगच्छंति ग्राहयंति च" या अधिकरण करिके जीवब्रह्मकी ऐक्यतारूप अखंड वाक्यार्थकं सम्यक्प्रकारसे दर्शन किये अनंतर सगुण निर्गुणोपासक जीवत् पुरुषके विषे पापपुण्यका विनाशरूप मुक्ति दर्शायके, अनंतर सगुणब्रह्मके उपासक पुरुषकं क्रममुक्तिका कथन करिके द्वितीयपाद करिके ताही सगुणउपासकके उत्क्रांतिप्रकारका वर्णन करनेते अनंतर तृतीयपाद करिके ताही सगुणोपासककूं उत्तर मार्गके विचारपूर्वक कार्य ब्रह्मकी प्राप्ति दर्शायके तथा निर्गुण ब्रह्मवेत्ता पुरुषकं गति उत्क्रांतिका प्रतिषेध

कारिके अनंतर चतुर्थपादसे ब्रह्मात्माकी ...
अवस्थानरूप निर्गुण विद्याका फल वर्णन कारिके ...
सगुणविद्याका फलभूत ब्रह्मलोकके विषे ऐश्वर्य ...
पादन कारिके अंतमें ता सगुणवेत्ताकूं (४ । ४ । २२
"अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात्" ...
सूत्रकी मूलभूत श्रुतिः–(छां. उ. ८ । १५ । १) "...
स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते" या प्रकारसे
ब्रह्मोपदेश कारिके मुक्तिप्रदर्शन करते हुये उपरामकूं
प्राप्त होते भये.

इति श्रीमदुदयशंकरात्मजगौरीशंकरविरचिते
स्वरूपानुसंधाने षष्ठी प्रक्रिया समाप्ता ॥६॥

सप्तमप्रक्रियारंभः ।

स्मृतिप्रस्थान ।

जिसमें (१) श्रीमद्भगवद्गीता, (२) श्रीविष्णु-सहस्रनाम, (३) श्रीसनत्सुजातीय यह तीनों भाष्यहैं ! तामें प्रथम–

श्रीमद्भगवद्गीताभाष्यके अनुसार विचार.

मंगलाचरण. गी. भा. प्र.

"ॐ नारायणः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम् ।
अंडस्यांतास्त्विमे लोका सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥ १ ॥"

कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा इन दोनोंमें कर्मनिष्ठा उपाय (साधन) भूतहै, और ज्ञाननिष्ठा उपेय (फल) भूत है, इन दोनों निष्ठाकूं अधिकारकारिके प्रवृत्त हुये गीताशास्त्रकूं व्याख्यान करनेकी इच्छाते भगवान् श्री-भाष्यकार विघ्नोंकी शांति आदि प्रयोजनकी सिद्धि तथा शिष्टाचार प्रतिपालन अर्थ इष्टदेवतातत्त्वका अनुस्मरणरूप मंगलाचरणकूं संपादन करते हुये नारायण पदसे अन्यपदोंकारिके यह गीताशास्त्र उपनिषद्रूपही है ताके साथ इतिहास पुराणोंकीभी एकवाक्यता करनेके अभिप्रायसें अंतर्यामी विषयक एक पौराणिक श्लोकका उदाहरण देवेहैं.

---

१ इति, ह, आस ऐसे तीनपद तिनका मिलितार्थ पुर्नवृत्तका कथन जिसमें यथावत् हेविदें सो.

'ॐ नमो नारायण' इति नर कहिये जो ईश्वर पुरुष तासे उत्पन्न होनेवाली आप[१] नारा कहियेहै, सो नारा कहिये जल है अयन (शयनस्थान) जाका सो भगवान् नारायण कहावेहै. इस रीतिसे नारायण शब्दका अर्थ स्थूलदृष्टि पुरुष कहेहै.

सूक्ष्मदृष्टि पुरुष तो नारायण शब्दका ऐसा व्याख्यान करेहैं. 'नर'शब्द करिके स्थावर जंगमरूप सर्व शरीर कहियेहै. और ता 'नर'कहिये शरीरोंके विषें नित्य सन्निहित जो चिदाभास सो 'नार' कहियेहै, सो नार कहिये चिदाभास तिनका जो 'अयन' (आश्रय) अर्थात् नियामक ऐसा अंतर्यामी सो नारायण कहावेहै. जा नारायणकूं उद्देशिके नारायणाख्य अंतर्यामी ब्राह्मण वेदांतोंमें पठन कियाहै, ता नारायणपद करिके गीताशास्त्रमें प्रतिपादन करनेयोग्य जो उत्कृष्टतत्त्व

---

१ "अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमथाक्षिपत् ॥ तदंडमभवद्धैमं. सहस्रांशुसमप्रभम् ॥ १ ॥ अर्थः—प्रथम जल उत्पन्न करिके तामें वीर्यप्रक्षेप करता भया सो सूर्यसदृश कांति सुवर्णाण्ड होता भया.

ताका श्रीभाष्यकारजीने उपदेश किया है. तहां–

शंकाः–परमात्माकूं मायासंबंधसें अंतर्यामित्व और शास्त्रप्रतिपाद्यत्व कहना चाहिये; अन्यथा (ऐसा न मानो तो) निर्विकार, असंग, अविषय, अद्वितीय ऐसे परमात्माके विषे अंतर्यामित्व और शास्त्रप्रतिपाद्यत्व संभवे नहीं है याते मायाका संबंध अंगीकार करे तो शुद्धताकी असिद्धि प्राप्त भई; या दोषते गीताशास्त्रके व्याख्यानारंभविषे परदेवता (शुद्धस्वरूप)का स्मरण कैसा संभवे ? शुद्धतत्त्वका जो स्मरण सोही अभीष्ट फलकी न्याई इष्ट होना चाहिये.

समाधानः–'परोऽव्यक्तात्' कहिये जो नारायण, अव्यक्त (माया) से परहै कहिये माया

---

१ "आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः। इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ १ ॥" अर्थः–सर्वशास्त्र पढिके वारंवार विचारिके नारायणध्यानकर्तव्यताही एक निष्पन्न होवैहै.

२ "पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना ॥ आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणं ॥"

अर्थः–पद पृथक्करना ताका अर्थ करना, समास करना, वाक्यकी योजना करना, और शंकाका समाधान ये पंचलक्षण व्याख्यानके समझने,

संस्पर्शरहित है तहां श्रुतिः–(मुं. १ । ३ । २) "अक्षरात्परतः परः" हिरण्यगर्भादिकनकी अपेक्षामें पर ऐसा अक्षर कहिये अव्याकृत तासेभी परमात्मा पर है. यद्यपि वास्तव स्वरूपसे मायासंबंधका अभाव है तोभी कल्पित मायासबंधका अंगीकार करिके अंतर्यामित्व और शास्त्रप्रतिपाद्यत्व कहाहै, ऐसे समझना.जा अव्याकृतसे ईश्वरका व्यतिरेक कहिये पृथक्त्व विवक्षित है सो अव्यक्त यद्यपि साक्षीसिद्धहै तोभी कार्यलिंगक अनुमानकूं कहेहै 'अंडमव्यक्तसंभवम्' इन पदोंकरिके इस रीतिसें अपंचीकृत ऐसें जो पंचभूत तदात्मक जो हिरण्यगर्भ तत्त्व सो अंडकहियेहै, और सो अंड पूर्वोक्त अव्यक्तसे उत्पन्न होवेहै. श्रुतिस्मृतियोंमें भी मूलकारण अव्यक्तसे हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है. तैसा होनेते हिरण्यगर्भरूप कार्यलिंग करिके कारणभूत अव्यक्तकी सिद्धि होवे, यद्यपि श्रुतिस्मृतियोंसें हिरण्यगर्भ ज्ञेयहै; तथापि ताक विषे कार्यलिंग अनुमानभी ऐसा मानतेहुये उत्तरार्ध करिके विराटकी उत्पत्तिदर्शावेहै. पूर्वोक्त हिरण्य-

गर्भाख्य अंडके विराडात्मक ऐसे भूरादिकलोक स्थित हैं जो कार्य सो कारणके अन्दरही रहेहै यातें हिरण्यगर्भके अंतःस्थित विराडात्मक भूरादिलोक (१ भर्लोक २ भुवर्लोक ३ स्वर्लोक ४ महार्लोक ५ जनलोक ६ तपोलोक ७ सत्यलोक) हिरण्यगर्भने सृजेहैं. या रीतिसे विराट्रूप कार्यसिद्धकरिके हिरण्यगर्भरूप कारणकी सिद्धि भई भरादिलोकनकूंही पंचीकृत पंचभत तदात्मक जो विराट् तद्रूपकरिके 'सत्यद्वीप' या चतुर्थ पाद करिके व्युत्पादन करेहै, (बृहदा० उ० ४।२।२)

"सा पृथिवी अभवत्"

या श्रतिमें पृथिवी शब्द करिके विराट्का कथन किया है याते सप्तद्वीपवाली (जंबु, कुश, प्लक्ष, शाल्मली, क्रौंच, शाक, पुष्कर ये सप्तद्वीप हैं) मेदिनी करिके सर्वलोकात्मक ऐसा विराट् जानना, चशब्द करिके पूर्व हिरण्यगर्भाख्य अंडके अन्दर विराट्की स्थिति कथन करीथी, तिसके साथ इसके उत्पत्तिका

समुच्चय सूचन कियाहै हि कहिये निश्चयसे परमात्माही मायाद्वारा सर्व जगत्का उत्पादन करिके पीछे स्वस्वरूपभूत ज्ञान करिके स्वस्वरूपमेंही अंतर्भाव करिके अखण्ड, एकरस, चिदात्मस्वरूपसे स्वमहिमाके विषे रहेहै यह तात्पर्य है.

या श्लोकमें नारायणपद: करिके ब्रह्मात्मैक्यरूप विषय सूचन किया. किस रीतिसे जो नार कहिये चिदाभास कहिये जीव त्वंपदका वाच्यार्थहै, ताका अयन कहिये आश्रयभूत जो नारायण सो तत्पदका वाच्यार्थहै; ऐसा होनेते कल्पितकूं अधिष्ठानसे अनतिरिक्तत्व होनेते शुद्ध लक्ष्यांशमात्रकूं लेइके जीवब्रह्मकी एकतारूप विषय सूचन किया ताकरिके अर्थात् विषयविषयीभावसंबंधभी ध्वानित किया 'परोऽव्यक्तात्' यापद करिकेभी माया संस्पर्शके अभावके कथनते सर्वअनर्थकी निवृत्ति और निरतिशयानन्दकी प्राप्तिरूप मोक्षाख्य प्रयोजनभी सूचित किया; और ताकरिके मोक्षकामनावाला साधनसंपन्न जो पुरुष सो अधिकारीभी द्योतन किया. अवशिष्ट 'तु' पदकरिके

परमार्थवस्तुके विषें वास्तव अद्वितीय सूचन किया; और ताकरिके परमार्थवस्तु द्वारा ज्ञाननिष्ठाकूं परमविषयत्व और ताकी उपायभूत कर्मनिष्ठाकूं अवांतर विषयत्वभी अर्थात् कथन किया. ऐसा अवधारण करना, सो नारायणभगवान् या जगत्कूं सृजिके ताकी स्थितिकरनेकूं इच्छाते हुये प्रथम मरीच्यादि प्रजापतिकं उत्पन्न करिके तिनोंसे वेदोक्त कर्मनिष्ठारूप प्रवृत्तिलक्षण धर्मकं ग्रहण करावते भये ता धर्मका दीर्घकालते क्षय होनेते और अधर्मवृद्धि होनेते वर्णाश्रमधर्मकूं असांकर्यसे पालन करनेकूं इच्छाते श्रीनारायण भगवान् वसुदेवसे देवकीके विषे कृष्णरूपसे प्रगट होते भये सो श्रीकृष्ण शोकमोहरूप महोदधिके विषे निमग्न ऐसे अर्जुनकूं अधिकारी करिके सर्वलोकानुग्रहार्थ कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठारूप द्विविध[१]

---

१ "लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ । ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ १ ॥"

(अर्थः—या लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मैंने प्रतिपादन करी है, विवेकीको ज्ञानकी और देहाभिमानीको कर्मकी)

धर्मकूं उपदेश करते भये. ता निष्ठाद्वयकूं व्यासभगवान गीताख्य सप्तशतश्लोकरूप करिके निबन्धन करते भये.

भाष्यकार कहते हैं. सर्ववेदनका सारसंग्रहरूप या गीताशास्त्रका यद्यपि अन्य अनेक पंडितोंने व्याख्यान किया है, तोभी अतिगूढार्थ होनेते मुमुक्षुजनकूं यथार्थ रूपसे ग्रहण होवे नहीं किन्तु विरुद्ध अर्थका ग्रहण होवे है, याते सुख करिके वास्तवअर्थ ग्रहण करावनेके अर्थ मैं संक्षपसे व्याख्यान करूंहूं.

गीताशास्त्रके तीन षट्क हैं तामें प्रथम षट्कमें अंतःकरणशुद्धिके अर्थ यज्ञ, दान, तप आदि निष्कामकर्म प्रतिपादन करे है. और द्वितीय षट्कमें चित्तकी एकाग्रताके अर्थ भगवद्भक्तिरूप अंतरंग वहिरंग उपासना प्रतिपादन करी है, तथा तृतीय षट्कमें आत्मज्ञान प्रतिपादन किया है. और सूक्ष्मदृष्टिसे ऐसा कहे हैं, प्रथमषट्क त्वंपदार्थशोधनअर्थ है. और द्वितीयषट्क तत्पदार्थशोधनअर्थ है, तथा तृतीयषट्क तत्त्वंपदार्थ की एकतारूप अखंड वाक्यार्थके प्रतिपादनअर्थ है ।

या गीताशास्त्रमें प्रथम अध्यायकरिके उपोद्घात[१] (कथाकी संगति) का प्रतिपादन किया है. और सूत्ररूप द्वितीय अध्यायमें प्रथम देहादिकनके विषे अहंताके तथा द्रोण भीष्मादिकनके विषे ममताके अध्याससें अर्जुनके विषे स्वधर्मत्यागकी बुद्धि और सर्व अनर्थोंका बीजभूत शोक मोहमें निमग्नत्व निरूपण किया है पीछे अर्जुनने (भ. गी. अ. २ । ७) "कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः" या श्लोक करिके कहा कि आत्मा अनात्माके विवेकविषे मूढचित्तवाला और दैन्यदोष करिके उपहतस्वभाववाला ऐसा मैं तुम कूं शरण होइके प्रश्न करूंहूं कि जो निश्चित श्रेय होवे सो कृपाकरिके कहो. तिसते श्रीकृष्णभगवानजीने ताका शोकमोहके उत्पन्नकरनेअर्थ (भ.गी.अ. २।११।१२) "अशोच्यान्" तथा "न त्वेवाहं" इत्यादि श्लोककरिके स्थूल सूक्ष्म देहसे आत्माकूं पृथक् करिके ताके विषे

---

१ "चिंतां प्रकृतसिद्ध्यर्थमुपोद्घातं विदुर्बुधाः" (अर्थः—प्रकृत सिद्धि के अर्थ जो चिंता ताकूं उपोद्घात कहिये है)

नित्यता और देहादिकके विषे अनित्यताका कथन करिके अनंतर और वस्ति व आत्मतत्त्वके दृष्टिसे शोकमोहके अकर्तव्यतामें उपसंहार करिके परमार्थद-र्शनरूप ज्ञाननिष्ठा करिके ताके प्राप्तिविषे उपायभूत निष्काम कर्मनिष्ठाका उपक्रम करिके ताकी प्रशंसापू-र्वक आवश्यकता कथन करी, और ता निष्कामकर्मके अनुष्ठान करिके जब बुद्धि निश्चल होवे तब तूं परमार्थ दर्शनरूप योगकूं पावेगा इस रीतिसे अर्जुनकूं उपदेश करनेमें या द्वितीयाध्यायके समाप्तिपर्यंत स्थितिप्रज्ञके स्वसंवेद्य तथा परसंवेद्य लक्षण कथन करिके मोक्षका कारण कहेहै. जो पुरुष रागद्वेषसे रहित और स्वाधीन इंद्रियों करि अवर्ज्यविषयों ग्रहण करे, और जाका अंतःकरण स्वाधीन न होवे सो प्रसाद कहिये स्वस्थ-ताकूं प्राप्तहोवेहै; और प्रसाद होनेते अध्यात्मिकादि सर्वदुःखोंकी हानि होवेहै. और प्रसन्न चित्तवालेकी बुद्धि शीघ्र आत्माकार होइके निश्चल होवेहै यह आत्माकार बुद्धि अयुक्त कहिये असमाहित अंतःकर-णवाले पुरुषकूं प्राप्त होवे नहीं; याते हे अर्जुन ! जिस

यतिने सर्व प्रकारसे विषयनतें इंद्रियनकूं निग्रह किया होवे ताकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित जाननी. सर्व प्राणियनकी निशा तुल्य जो आत्मनिष्ठा ताके विषे ज्ञानीपुरुष जाग्रत् रहेहै; और जा प्राणी अहंमम अभिमानविषे जाग्रत् रहे ताकूं ज्ञानी लोक निशारूप मानेहैं, जैसे इतर प्राणियोंकी जो निशा सो उलूकादिकनकूं दिवसरूप है, और उलूकादिकनका जो रात्रिरूप दिवस सो इतरप्राणीकूं निशारूप है तैसे याते सर्व कामनका त्यागकरिके जो संन्यासी अहंममता रहित होवे, सोही शांति (मोक्ष) कूं प्राप्त होवेहै; पूर्वोक्त ब्राह्मी स्थिति प्राप्त होनेते विमोह होवे नहीं; और उत्तर अवस्थामेंभी या स्थितिमें रहिके मुक्त होवेहै. तो जो पुरुष ब्रह्मचर्यसे संन्यास करिके यावज्जीव इस स्थितिमें रहनेते मुक्त होवे, यामें कहनाही क्या ? पूर्वोक्त अध्यायमें कथन करी जो कर्मनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा तिनकाही विशेष व्याख्यानरूप तृतीय अध्यायसे आरंभिके सप्तदश अध्याय पर्यंत है. ताका विस्तार स्वामी श्रीचिद्घनानन्दकृत गीताकी भाषाटीकाके तृतीय अध्यायके प्रारंभमें

निरूपण कियाहै; तथा अठारहमें अध्यायमें कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका उपसंहार कियाहै. तहां कर्मनिष्ठाके उपसंहारका श्लोक (भ० गीता. अध्याय १८।६५)

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे १॥"

अर्थः—"ततो वक्ष्यामि ते हितम्" या पूर्वोक्तवाक्य करिके प्रतिज्ञात 'हिततम' अर्थकूं श्रीभगवान् कहेहैं. हे अर्जुन तू मेरे विषेही मनवाला ऐसा और मेराही भजन करनेवाला तथा मेराही यजन करनेवाला ऐसा हो तथा मेरेकूंही नमस्कार कर इस रीतिसे वासुदेवरूप मेरे विषेही समर्पण कियेहैं सर्वसाध्यसाधन और फल जिसने ऐसा हुवा मेरेकूं प्राप्त होवेगा या रीतिसें सत्य प्रतिज्ञा करिके मैं कहूंहूं; काहेते तू मेरेकूं प्रिय है या श्लोकका तात्पर्यार्थ यह है कि भगवान्की प्रतिज्ञा सत्यही है ऐसा जाणिके भगवद्भक्तिसे मोक्षफल अवश्य प्राप्त होवेगा ऐसा धारिके भगवान्के विषे शरणतासे एकतत्परता रखनी ।

कर्मनिष्ठाकी परमरहस्यरूप जो ईश्वरशरणता ताका उपसंहार करिके अब कर्मत्याग, त्याग निष्ठाका फलरूप और सर्व वेदांतोंमें प्रतिपादित जो सम्यग्दर्शन ताकूं कहेहै

(भ. गी. अ. १८।५५)

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः १"

अर्थः-हेअर्जुन ! सर्वधर्म कहिये पापपुण्यरूप धर्मनका परित्याग[1] करिके अर्थात् कर्मसंन्यास करिके सर्वका आत्मारूप और सर्वात्मक तथा ईश्वर अप्रच्युतस्वरूप और सर्वका गुरु तथा जन्ममरण रहित ऐसे एक मेरेकूंही शरणहो कहिये सर्वात्मक ईश्वरसे मैं अभिन्न हूं ऐसा निश्चय कर इस रीतिसे निश्चयवाले तेरेकूं सर्वबन्धनरूप पुण्य पापोंसे आत्मसाक्षात्कार कर-

---

१ या स्थलमें धर्मपदकरिके अधर्मका ग्रहण करना काहेते "नाविरतो दुश्चरितात्" "त्यज धर्ममधर्मं च" इत्यादिश्रुतियोंमें पापकर्मोंकाभी त्याग विधान कर्याहै.

वायके मुक्त करूंगा याते शोक न कर. ताके विषे प्रमाणभूत दशमाध्यायका ११वां श्लोकः—

"तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता १"

अर्थः—पूर्वोक्त ऐसे "मच्चित्ता मद्गतप्राणाः" इत्यादि वाक्योंमें उक्तप्रकारसे प्रीतिपूर्वक मेरेकूं भजने वाले भक्तोंकूं श्रेयप्राप्ति किस रीतिसे होवे इस प्रकारकी दयासे मैं तिनके अन्तःकरणमें स्थित होया हुवा आत्मा अनात्माके अविवेकजन्य जो मिथ्याप्रत्यय कहिये देहादिकनके विषे अहंममत्वाभिमानरूप जो मोह तद्रूप अंधकारकूं मेरी अनन्यभक्ति तथा प्रसादरूप तैलसे सिंचित और मेरी भावनाका संततप्रवाहरूप संतत वायुसे प्रेरित तथा ब्रह्मचर्यादिक साधनोंके संस्कारयुक्त प्रज्ञारूप वर्तिवाला विरक्त ऐसा अंतःकरणरूप है आधारपात्र जिसका ऐसा और सर्व विषयोंसे व्यावृत्त और राग द्वेषादिकनसे अकलुषित चित्तरूपी निवातप्रदेशस्थित और नित्य प्रवृत्त एकाग्र्यरूप ध्यानसे

जन्य सम्यग्दर्शनरूप प्रकाशवाला जो ज्ञानरूपदीप ताकरिके पूर्वोक्त मोहांधकारकूं नाशित करूंहूं. इस रीतिसे ब्रह्मविद्याकी उपदेशभूत श्रीमद्भगवद्गीतामें श्री भगवान्‌जीने समाप्त करी है. ताका निकृष्ट अर्थ तृतीय प्रक्रियामें "किं कर्म किमकर्मेति" तथा "यस्य नाहंकृतो भावो" या स्मृतिके व्याख्यानमें स्पष्ट सूचन किया है.

भाष्यका अंतिम मंगलाचरण श्लोकः—

"शोकपंकनिमग्नं यः सांख्ययोगोपदेशतः ॥
उज्जहारार्जुनं भक्तं स कृष्णः शरणं मम ॥१॥"

अर्थः—जो श्रीकृष्ण शोकपंकमें निमग्न हुवा और स्वभक्त जो अर्जुन ताकूं ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठाका उपदेश करके उद्धार करते भये सो श्रीकृष्ण मेरा शरण (रक्षक) हो.

महावाक्य रत्नावलीका वाक्यः—

"शास्त्रेण नश्येत्परमार्थदृष्टिः कार्यक्षमं नश्यति चापरोक्षात्॥ प्रारब्धनाशात्प्रतिभासनाश एवं त्रिधा नश्यति चात्ममाया ॥ १ ॥"

अर्थः—शास्त्रेण कहिये स्वस्वरूपविषे अप्रवणशील-वाले अज्ञानी (स्वस्वरूपानभिज्ञकूं स्वस्वरूपप्रवणताका उपदेश करनेवाले उपनिषद् व्याससूत्रादि अद्वैतशास्त्र कहिये हैं ता अद्वैत शास्त्रके श्रवणमें जन्य परोक्षज्ञानकारिके पूर्व जो द्वैत प्रपंचविषे पारमार्थिक सत्यत्व माननसे ताका नाश होवे और तदनंतर प्रपंचके विषे जो "कार्यक्षमत्व" कहिये व्यावहारिकसत्यत्व सोही मननजन्य ब्रह्मात्मै-कत्वके अपरोक्षज्ञानसें नष्ट होवे है, तदनन्तर जगत्के विषे प्रातिभासिक सत्यत्वमात्र स्फुरै है; सो प्रातिभा-सिकसत्यत्वभी निदिध्यासजन्य सम्यग्ज्ञान कहिये दृढबोध करिके प्रारब्धादि त्रिविध कर्मनका नाश होनेते नष्ट होवेहै. इस रीतिसे तीन प्रकारसें आत्माके विषे अध्यस्त माया नष्ट होवेहै. अर्थात् जिस कालमें दृढ तत्त्वज्ञान होवे उसी कालमें विद्वान् पुरुष विदेह मुक्त होवेहै ?

(२) श्री विष्णुसहस्रनाम भाष्यके अनुसार विचार.

भाष्यका मंगलाचरण श्लोकः—

"सच्चिदानंदरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
नमो वेदांतवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ १ ॥"

अर्थः—सत्, चित्, आनंद है स्वरूप जाका और सदुपदेश करिके क्लेशकी निवृत्ति करनेवाला तथा उपनिषद् वाक्यकरिके वेद्य कहिये जाननेयोग्य और सर्वका गुरुरूप तथा बुद्धिका साक्षीरूप ऐसे श्रीकृष्णकूं नमस्कार. १

"यस्य स्मरणमात्रेण जन्म संसारबंधनात् ॥
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ २ ॥"

अर्थः—जाका स्मरण मात्र करिके जन्ममरणोपलक्षित संसारबंधनसे प्राणी मुक्त होवे है ता सर्वेश्वर विष्णुकूं नमस्कार २.

---

१ कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ १ ॥

(अर्थः कृषि सत्तावाचक और ण आनंद वाचक शब्द है तिनदोनोंसे उपलक्षित एक परब्रह्म कृष्ण कहियेहै)

अभ्युदय तथा अपेक्षित अमृतभावना हेतुभूत वेदोक्तधर्मनकूं निःशेपतासे श्रवण करिके युधिष्टिरने भीष्मपितामहके प्रति प्रश्न किया कि "हेभगवन,(१) समस्त वियास्थानोंके विषे एक देव कौन (२) लोकमें परम प्राप्यवस्तु क्या है कि जिसकी प्राप्तिसे 'भियते हृदयग्रंथिः' इत्यादि श्रुत्युक्त फल प्राप्त होवे(३) किस देवकी स्तुति कहिये गुणकीर्तन करते हुये तथा (४) किस देवका बाह्याभ्यंतर अर्चन करते हुये मनुष्य स्वर्ग अपवर्गादिरूप फलकूं प्राप्त होवे.

पूर्वोक्त सर्व धर्मोंके मध्यसे आपकूं परमसंमत उत्तम धर्म कौनहै, (६) किस जाप्यका जप करनेते प्राणी संसारबंधनसे मुक्त होवे. ताके उत्तरमें भीष्म पितामह कहेहैं:—

(१) जगत्के प्रभु नारायण देवकी सहस्रनाम करिके स्तुति तथा ताकाही अर्चन, ध्यान, यजन, और नमस्कार करनेते अध्यात्मिकादि सर्व दुःखनका अतिक्रमण करेहै; इस करिके ऐसा जनायाकि,जो श्रीनारा-

यण सोही परमदैवतरूप है.(२) जो नारायणप्रकृष्टव्यापक और सर्वका अवभासक "न तत्र सूर्यो भाति" इत्यादि श्रुतिप्रसिद्ध परम चैतन्यरूप है तथा परमतपोरूप "तपत्याज्ञापयतीति तपः" कहिये इहलोक परलोक तथा सर्वभूतनके अन्दर रहिके नियतमें राखे सो ऐसा नारायण देव है अथवा "तपति ईष्ट इति तपः" कहिये अनवच्छिन्न ऐश्वर्यवाला सो तप अर्थात् सर्वेश्वरहै; तथा परमव्यापक ब्रह्म स्वरूप सोहीहै;तथा परमपरायण (पुनरावृत्तिशंकासे रहित) निरतिशय आनन्दस्वरूप प्राप्यस्थान यहीहै, तथा (३) ताकी स्तुति और (४) ताकेही अर्चनसे शुभप्राप्ति होवेहै; (५) हृदयकमलमें स्थित प्रत्यगात्मस्वरूप नारायणके गुणसंकीर्तनादि करिके सदा सत्कारपूर्वक अर्चनकरना यही परमधर्म मैं मानूंहूं काहेते यामें पशु हिंसादि नहींहै, तथा पुरुषसंपत्ति और द्रव्यसंपत्तिकी जरूर नहीं और देशकालादिकनकाभी नियम नहीं तथा (६) इस नारायणदेवके नामजपसेही संसारबन्धनसे मुक्त होवेहै. या नारायणदेवके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्विध

पुरुषार्थकूं देनेवाले और शक्तिवृत्तिसे[1] सगुण और लक्ष-णावृत्तिसे[2] निर्गुणस्वरूपके प्रतिपादक सहस्रनामकूं वक्ष्यमाण प्रकारसे कथन करूंहूं ता सर्वपाप और सर्वभयकूं हनन करनेवाले सहस्रनामकूं तूं एकाग्रचित्तसे श्रवणकर

"ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥१॥"

अर्थः—पूर्व "यतः सर्वाणि भूतानि" यहांसे आरंभिके जगतके उत्पत्ति स्थिति लयके कारणभूतब्रह्मकूं एक परमदैवतत्व कथन किया याते प्रथम 'विश्व' शब्द करिके सगुण निर्गुण ब्रह्म निर्दिष्ट कियाहै. कार्य-रूप विश्वशब्द करिके कारणभूत ब्रह्मका जो ग्रहण सो कार्यभूत विरंच्यादिकनके नाम करिके विष्णुकीही कहिये व्यापक ब्रह्मकीही स्तुति होवेहै. या सूचनाके अर्थ है; अथवा विश्वं, वास्तवरूपसे परमपुरुषसे भिन्न

१ (शक्तिनाम अर्थज्ञानका जनक जो पदमें रहेनेवाला सामर्थ्य सो)
२ (शक्य कहिये वाच्यार्थका जो संबंध सो लक्षणा)

नहीं, याते विश्व कहनेते 'ब्रह्म' जानना, तामें प्रमाण-भूत श्रुतिः—ऋग्वेद. पु. सू. २
"पुरुष एवेदं सर्वं" "ब्रह्मैवेदं सर्वं" "ब्रह्मैवेदं विश्व-मिदं वरिष्ठं" (मुं. २।२।११) कहिये जो यह विश्वसे श्रेष्ठ ऐसा ब्रह्मही है; तथा यह जो सर्व जगत् सो परमपुरुषरूपही है अथवा "विशतीति विश्वं ब्रह्म" कहिये कार्यसृजिके ताके विषे प्रवेश करे, सो ब्रह्म विश्व कहावे है. तहां श्रुति (तै० २ । ६) "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" कहिये सो ब्रह्म भूतभौतिक देहादिकार्यकूं सृजिके तामें स्वस्वरूप करिके प्रवेश करता भया. और "विशति सर्वाणि भूतान्यस्मिन्निति विश्वम्" कहिये प्रलयकालके विषें सर्वभूत जाकें विषें प्रवेश करे है सो ब्रह्म विश्व कहावे तहां श्रुतिः— (तै. ३ । १) "यत्प्रयन्त्यभिविशन्ति" कहिये सर्वभूत लयप्राप्त होते जा विषे प्रवेश करे है; अथवा श्रुतिः—(कठ. १ । २ । १६) "एतदेवाक्षरं ब्रह्म" कहिये जो ॐकार सोही अक्षर ब्रह्मरूप है तहां श्रुति "वाङ्मयं प्रणवं ब्रह्म" कहिये जो प्रणव सो वाङ्मय (शब्दमय) ब्रह्मरूप है; और

स्मृति (भ. गी. ८ । १३) "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" कहिये जो ॐकाररूप अक्षर सो ब्रह्मरूप; इत्यादि श्रुतिस्मृति प्रमाणोंसे "विश्वं" शब्द करिके ॐकार जाणना, और वाचक वाच्यका जो भेद सो कल्पित है वस्तुतः अभेदही है. याते 'विश्वं' कहनेमें ॐकारही ब्रह्म यही तात्पर्य है. अथवा

"एतद्विजानता सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ।
द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णुर्यतोयं विश्वरूपधृक्॥१॥
ये च मूढा दुरात्मानो भिन्नं पश्यंति मां हरेः ।
ब्रह्माणं च तथा तेषां भ्रूणहत्यासमं त्वघम्॥२॥"

अर्थः—शिवजी कहे हैं कि ज्ञानीपुरुषने स्थावर जंगमरूप आत्मरूप देखना; काहेते विश्वरूप धारण करिके विष्णुही रहा है १.

तथा मेरेकूं, ब्रह्माकूं, विष्णुकूं जो दुर्बुद्धि मूढपुरुष भिन्नभावसे देखें तिनकूं ब्रह्महत्यासमान पाप है. २ इत्यादि वचन प्रमाणसे हिंसादिरहित होनेते अभेदभाव करिके स्तुति नमस्कारादि करना ऐसा जनावने अर्थ 'विश्व' शब्द करिके ब्रह्म कथन किया है.

'विष्णु' "वेवेष्टि व्यामोतीति विष्णुः" कहिये जो सर्वत्र व्यापिके रहेहै सो ब्रह्म विष्णु कहावे; अर्थात् देश, काळ और वस्तुकृत परिच्छेद रहितहै तहां श्रुतिः— (नारा. उ. १३ । १)

"यच्च किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणःस्थितः॥"

अर्थः—यत्किंचित् जो कहिये नामरूप, क्रियात्मक जगत् देखिये सुनियेहै ता सर्वके अंतर्बाह्य व्यापिके नारायण रहाहै. १ अथवा "विशतीति विष्णुः" कहिये जो प्रवेश करे सो विष्णुः तहां विष्णुपुराणका वचन,

"यस्माद्विष्टमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ॥
तस्मादेवोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात्१"

अर्थः—जाकारणते महात्मा ता नारायणकी चिच्छक्तिनें सर्वजगत्में प्रवेश कियाहै याते प्रवेशार्थक 'विश' धातुकूं 'नु' प्रत्यय लगानेसे नारायणदेव विष्णु कहिये है १.

'वषट्कारः' जाके उद्देशतें वषट्कार कहिये, अथवा जा यज्ञके विषे वषट्क्रिया होवे सो यज्ञरूप विष्णु वषट्कार कहावे. तहां श्रुतिः—'यज्ञो वै विष्णुः' जो विष्णु सोही यज्ञ है.

महाभारतः—

"चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंचभिरेव च ॥
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः॥ १॥"

अर्थः—(कर्मकांडके अनुसार)४ "औंर श्रावय" ४ "अस्तु श्रौषट्". २ "यज" ५ "ये यजामहे" "वौषट्" या रीतिसे ४, ४, २, ५. २ मिलके सप्तदश १७ करिके जाके विषे होवे ता यज्ञात्मा विष्णुकं नमस्कार.

अथवा अन्य अर्थः—(ज्ञानकांडके अनुसार) ४, ४, २, कहिये १० इंद्रिय, और ५ प्राणपंचक, तथा २ मन, बुद्धि या सप्तदश तत्त्वोंका चिदाभासयुक्त लिंगशरीर जा साक्षीरूप विष्णुकूं नमस्कार. ३ अथवा वषट्कारादि मंत्ररूप करिके देवताकूं

जो तृप्त करे सो यज्ञरूप विष्णु वषट्कार कहिये है. 'भूतभव्यभवत्प्रभुः' कहिये भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालविषे ऐश्वर्यवान् अर्थात् अविच्छिन्न वैभव-वाला जो विष्णु सो भूतभव्यभवत्प्रभु कहावे.

'भूतकृत्' भूतानि करोतीति भूतकृत् कहिये रजो-गुणका आश्रयण करिके हिरण्यगर्भरूपसें भूतोंका उत्पादन करे सो ब्रह्म भूतकृत् कहिये. अथवा भूतानि कृंतति कृणोति इति वा भूतकृत कहिये; तमोगुणका आश्रयण करिके रुद्ररूपसें सर्वभूतोंका नाश अर्थात् आपने विषे लयकरे सो विष्णु भूतकृत कहिये है.

'भूतभृत्' "भूतानि बिभर्तीति भूतभृत्" कहिये सत्त्वगुणका आश्रय करिके विष्णुरूपसे भूतोंका पालन पोषण करे सो ब्रह्मभूतभृत् कहिये.

'भावः' "भवतीति भावः" कहिये प्रपंचरूप करिके जो होवे सो ब्रह्म भाव कहिये; अथवा केवलरूपसे स्थित जो ब्रह्म सो भाव कहिये है. अथवा 'भवनं भावः' कहिये केवल सत्तारूपसे जो होवे सो ब्रह्म भाव कहिये है.

'भूतात्मा' 'भूतानाम् आत्मा भूतात्मा' कहिये सर्व प्राणियोंका जो अंतर्यामी सो ब्रह्म भूतात्मा कहिये है. तहा श्रुतिः—"एष त आत्मान्तर्यामी" (बृ. अ. ५।७।३) 'भूतभावनः' "भूतानि भावयति जनयति वर्द्धयति वा भूतभावनः" कहिये भूतोंकी जो उत्पत्ति अथवा वृद्धि करे सो भूतभावन ब्रह्मादि कहिये तब 'भूतकृत्' 'भूतभृत्' इत्यादि नामों करिके सत्त्वादि गुणाधीनत्व प्राप्त होवेगा ऐसी शंका होनेते ताका निराकरण करे है.

"पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः॥
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च॥२॥"

अर्थः—पूतात्मा 'पूतः आत्मा यस्येति पूतात्मा' कहिये गुण, जन्म, कर्म आदि दोषोंसे असंपृष्टस्वरूप ऐसा जो विष्णु सो पूतात्मा कहिये है. 'निर्गुणो निष्क्रियश्च' या श्रुतिप्रमाणसे अथवा 'पूतश्चासौ आत्मा च पूतात्मा' पूतः कहिये शुद्ध ऐसा आत्मा प्रत्ययरूप जो विष्णु सो पूतात्मा कहिये तहां श्रुतिः—(श्वे. ६। ११) "केवलो निर्गुणश्च"

'परमात्मा' "परमश्चासौ आत्मा च परमात्मा' कहिये कार्य कारणसे विलक्षण कहिये नित्य, बुद्ध, मुक्त स्वभाव.

'मुक्तानां परमा गतिः' कहिये मुक्तोंका परमगतिरूप, अर्थात् अपुनरावृत्तिसे प्राप्यस्थान तहां (भ. गी. अ. ८ श्लोक १६) गीताका वचनः—

"मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते"

अर्थः—हे अर्जुन प्रत्यक्से अभिन्न जो मैं हूं ताकूं प्राप्त कहिये अभेदरूपसे साक्षात्कार करिके फिरसे जन्म होवे नहीं.

'अव्ययः' "नास्ति व्ययो यस्येत्यव्ययः" कहिये नहीं व्यय (नाश) जन्मादि षड्विकार जाकूं सो विष्णु अव्यय कहियेहै—तहां श्रुतिः—

"अजरोऽमरोऽव्ययः"

'पुरुषः' पुरि शेते इति 'पुरुषः' कहिये शरीररूप ब्रह्मपुरके विषे शयन करे सो विष्णु पुरुष कहिये हैं, तहां महाभारतका वचनः—

"नवद्वारपुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम् ।
व्याप्य शेते महात्मा यत्तस्मात्पुरुष उच्यते॥१॥"

अर्थः—नवद्वार (कर्ण २ नासिका २ नेत्र २ मुख १ गुदा १ शिश्न १) वाले इंद्रियादिपदार्थसहित शरीररूप पुरकूं व्यापिके जिसते शयन करेहै ताते पुरुष कहिये है; अथवा "आसीत् पुरैवेति पुरुषः" कहिये पूर्व जो था सो विष्णु पुरुष कहियेहै. तहां श्रुतिः—

"पूर्वमेवाहमासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वं"

कहिये सृष्टिसे पूर्वमेंही था ताते सोही पुरुषका पुरुषत्व है; अथवा "पुरूणि सुनोतीति पुरुषः" कहिये मनोभिलषित बहुफलनकूं ग्रहण करे अथवा देवे सो पुरुष कहियेहै. अथवा "पुरूणि स्यतीति पुरुषः" कहिये संहारकाल विषे अनेक भुवनोंका नाश अर्थात् आपनेमें लयकरे सो पुरुष कहावे.

'साक्षी' "साक्षात् ईक्षते सर्वमिति साक्षी" कहिये अव्यवधानकरिके और स्वस्वरूप बोधकरिके अभेदसे सर्व बुद्धिनिष्ठ प्रत्ययोंकूं देखे सो विष्णु साक्षी कहियेहै

'क्षेत्रज्ञ' "क्षेत्रं जानातीति क्षेत्रज्ञः" कहिये शरीरकूं जो जाने सो क्षेत्रज्ञ कहिये. तहां (भ. गी. १३। २ का वचन)

"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि"

"अक्षरः" "न क्षरतीत्यक्षरः" कहिये जो विनाश पावे नहीं सो अक्षर कहिये'एव' शब्दकरिके तत्त्वमस्यादि वाक्यप्रमाणसे क्षेत्रज्ञ और अक्षरब्रह्मका अभेद जानना. २

इत्यादि सहस्रादि नामों करिके व्याकरणसे तथा श्रुत्यनुसार युक्तिसे प्रत्यगभिन्न ब्रह्मकाही प्रतिपादन कियाहै.

श्रीभगवानुवाच ॥

"यो मां नामसहस्रेण स्तोतुमिच्छति पांडव ॥
सोहमेकेन श्लोकेन स्तुत एव न संशयः ॥ १॥
नमोऽस्त्वनंताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशि-

रोरुबाहवे॥सहस्रनाम्ने पुरुपाय शाश्वते सहस्र-
कोटीयुगधारिणे नमः ॥ १ ॥"

अर्थः—अनंताय कहिये 'अपरिच्छिन्न' ऐसे और 'सहस्रमूर्तये' कहिये अपरिमितमूर्तिवाले ऐसे और 'सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे' कहिये अपरिमित है पाद, अक्षि,शिरस, ऊरू, बाहु जाके ऐसे और 'सहस्रनाम्ने' अपरिमित हैं नाम जाके ऐसे और 'सहस्रकोटीयुग-धारिणे' कहिये अपरिमित कोटीयुग धारणकरनेवाले, और 'शाश्वते' कहिये नित्यरूप ऐसे पुरुप (प्रत्यगभिन्न ईश्वर)कूं नमस्कार,अर्थात् अभेद करिके अनुसंधान. १

महावाक्य रत्नावलीका वाक्य.

"निमिषार्धं न तिष्ठंति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना ॥
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः १"

अर्थः—शुकदेवआदिलेके ब्रह्मर्षि तथा सनकादि नित्यमुक्त तथा ब्रह्मादिक देव एक निमिषार्धभी ब्रह्माकार वृत्तिहीन रहते नहीं. तैसेही ब्रह्मवेत्तामें वरिष्ठ ऐसे जीवन्मुक्तभी रहेहैं.

(३) श्रीसनत्सुजातीयभाष्यके अनुस
विचारः—

भाष्यका मंगलाचरण—

"नमः पुंसे पुराणाय पूर्णानंदाय विष्णवे।
निरस्तनिखिलध्वांततेजसे विश्वहेतवे॥१॥

अर्थः—जगत्के हेतुभूत और निरस्त किये हैं समग्र अविद्या और तत्कार्य जिसने ऐसा नित्यतेजो (प्रकाश) रूप, तथा पूर्ण आनंदरूप और पुराण (अनादि) पुरुष ऐसे व्यापकस्वरूप विष्णुकूं नमस्कार १. शोकमोह करिके अभितप्त ऐसे धृतराष्ट्रने (छां. उ. ७। १। ३) "तरति शोकमात्मवित्" (जो आत्मवेत्ता सो शोककूं तरे है) या प्रकारके वेदांतवादकं श्रवण करिके ब्रह्मविद्याविना शोककी निवृत्ति अशक्य मानिके विदुरजीके प्रति कहा कि हे विदुर! तुमने अपरविद्याविषयक अंतःकरण शुद्धिके अर्थ अष्टाध्याय विदुरनीतिका कथन किया है; अब परविद्या (ब्रह्मविद्या) का उपदेश करो, तिसते अनं-

तर विदुरजीने 'मैं शूद्रयोनिके विषैं उत्पन्न हुवाहूं याते ब्रह्मविद्याके उपदेशका मेरेकूं अधिकार नहीं, ऐसा कहिके योगबलसें सनत्सुजातजीका स्मरण करतेहीं सो आये, पीछे विदुरजीने कहा कि हे भगवन् ! धृत-राष्ट्रके अन्तःकरणविषैं संशय है ताकूं सदुपदेश करिके निवारण करो, जिसते सर्वदुःखका अतिक्रमण करिके मुक्त होवेगा. तिसते अनंतर धृतराष्ट्र बोले (सनत्सु० १ । १)

"ततो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी संपूज्यवाक्यं विदुरेरितं तत् । सनत्सुजातं रहिते महात्मा पप्रच्छ बुद्धिं परमां बुभूषन् ॥ १ ॥"

अर्थः—महात्मा (अधिकारी) ऐसा धृतराष्ट्र राजा विदुरने सनत्सुजातके प्रति कथित पूर्वोक्त वाक्यकी प्रशंसा करिके प्राकृतजनवर्जित ऐसे एकांतस्थल विषैं सनत्सुजातके प्रति पूर्ण आनन्द अद्वितीय ब्रह्मविषयक उत्तमबुद्धिकूं ब्रह्मविद्या करिके आत्मस्वरूपप्राप्तिकूं इच्छता हुवा पूछता भया. तहां श्लोकः—(सन. १।२)

१ सनत् (सनातन) जो हिरण्यगर्भ ताके मनसे सुष्टु प्रकारसे कहिये ज्ञानवैराग्य युक्त जो उत्पन्न भया सो सनत्सुजात कहावे, अर्थात् सनत्कुमार.

"सनत्सुजात यदिदं शृणोमि मृत्युर्हि नास्तीति तवोपदिष्टम्। देवा सुरा आचरन्ब्रह्मचर्यममृत्यवे तत्कतरन्नु सत्यम् ॥ १ ॥"

अर्थः—हे सनत्सुजात ! मृत्यु नहीं है इसप्रकारका शिष्योंके प्रति तुमारा उपदेश है. ऐसा विदुरजीने मेरेकूं कहा है; तथा देव और असुर तो मृत्युनाशके अर्थ कहिये मृत्युके अभावके अर्थ अर्थात् अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यकूं आचरतेहुये गुरुगृहं के विषैं निवास करतेभये, या रीतिसे छांदोग्य उपनिषद्में (छां. ८ । ७ । २) "तद्धो भये देवासुराः" यहांसे आरंभिके "तौ द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः" इतने पर्यंत ग्रन्थ करिके इंद्र और विरोचनने प्रजापतिजीके समीप बत्तीस संवत्सरपर्यंत ब्रह्मचर्यका आचरण किया, ऐसा कथन किया है तथा (छां उ. ८ । ११ । ३) "एकशतं ह वै वर्षाणि

२ या श्रुतिका अर्थ छांदोग्योपनिषद्भाष्यमें स्पष्ट लिखा है, तात्पर्यार्थ इंद्र सौ वर्षतक प्रजापतिगुरुके समीप निश्चय करिके ब्रह्मचर्य धारण करता भया.

मघवान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवासेति" जो कदाचित् मृत्यु है नहीं ऐसा तुमारा पक्ष है तो देव और असुरोंने मृत्युनिवारण अर्थ ब्रह्मचर्यके आचरण किस कारणतें किया और ता ब्रह्मचर्य आचरणसें मृत्यु ज्ञात होवेहै याते मृत्यु है या नहीं सो निश्चय करिके कहो.

श्रीसनत्सुजात उवाचः–(सनत्सु. १ । ३)
"अमृत्युः कर्मणा केचिन्मृत्युर्नास्तीति चापरे।
शृणु मे ब्रुवतो राजन्यथैतन्मा विशंकिथाः १॥"

अर्थः–हेराजन्, अविद्याके विषैं अधिरूढ कितनेक पुरुष वस्तुतः मृत्युका सद्भाव मानते हुये वेदोक्तकर्म करिके 'अमृत्युः' कहिये अमृतत्त्व किंप्राप्ति मानिके अमृत्युके अर्थ वेदोक्तकर्माचरण करेहैं, तथा अन्यविषयी पुरुष विषयते अतिरिक्त मोक्षकूं न मानते हुवे कर्मसेंही अमृत्युकूं कहिये मोक्षकूं अर्थात् देवादिभावकूं वर्णन करेहै. (इस अर्थके विषैं रागीके श्लोक उदाहरणार्थ देवे है.)

"अपि वृन्दावने शून्ये शृगालत्वं स इच्छति ।
न तु निर्विषयं मोक्षं कदाचिदपि गौतम॥१॥"

अर्थः—हे गौतम ! रागीपुरुष शून्य ऐसे वृंदावनके विषैं शृगालत्वभी इच्छतेहैं, परंतु निर्विषय मोक्षकूं इच्छते नहीं.

तथा परमात्मासे अतिरिक्त कारिके द्वितीयकूं न देखतेहुये कितनेक पुरुष ज्ञानकर्मके समुच्चयते अमृतत्त्व वर्णन करे हैं; तथा अद्वितीय आत्मदर्शी ज्ञानीपुरुष आत्मासें अतिरिक्त द्वैतकूं न देखते हुये मृत्युहै नहीं ऐसा वर्णन करेहैं;याते मृत्युका सद्भाव तथा असद्भाव यां दोनूं पक्षविषैं विरोध न होवे तैसें कहूंहूं सो तूं श्रवणकर; और मेरे उपदेशविषैं शंका नहीं रखनी.

(सनत्सु. १ । ४)

"उभे सत्ये क्षत्रियाद्य प्रवृते मोहो मृत्युः संम तो यः कवीनाम् । प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि सदाऽप्रमादादमृतत्वं ब्रवीमि ॥ १ ॥"

अर्थः—हे क्षत्रिय ! पूर्वोक्त'मृत्युरस्तिमत्युर्नास्ति'ये दोनूं पक्ष सर्गारंभसें प्रवृत्त हुयेहैं,याते सत्य हैं.जब मृत्यु

सत्य होवे तब ताका स्वरूप क्या ऐसी शंकाहोनेते मुनि कहेहै, जो मोह कहिये अनात्मदेहादिकके विषे आत्मताका अभिमानरूप मिथ्याज्ञान सो मृत्यु ऐसा कितनेक कवि कहतेहैं; और मैं तो ऐसा कहूंहूं जो प्रमाद कहिये स्वाभाविक ब्रह्मभावते प्रच्युति ताकूं कहिये देहाद्यात्मभावरूप मिथ्याज्ञानकाभी कारणभूत आत्माके अज्ञानकूं मृत्यु कहूंहूं, अर्थात् जन्ममरणादि सर्व अनर्थोंका बीज कहूंहूं, तथा सदा (निरंतर) जो अप्रमाद कहिये स्वाभाविकस्वरूप करिके अवस्थान ताकूं अमृतत्व कहूंहूं; श्रुतिभी स्वस्वरूप करिके अवस्थानकूं मोक्षाख्य अमृतत्व कहेहै, (छां.उ.८।१२।३)

"परं ज्योतिरूपं संपद्यते स्वेन रूपे णाभिनिष्पद्यते" इति—

अर्थः— जो ज्ञानीपरमज्योतिषरूप संपन्न कहिये स्वस्वरूप करिके अवस्थित होवे अर्थात् अमृतस्वरूप होवेहै, तथा अनुगीतामेंभी स्पष्ट कहाहै—

"एकः प्रज्ञो नास्ति ततो द्वितीयो यो हृच्छय-स्तमहममृतं ब्रवीमि" इति—

अर्थः—एकप्रज्ञानस्वरूप ब्रह्मही सद्रूप है "प्रज्ञान-मानन्दं ब्रह्म" तासे अन्य द्वितीय कोईभी नहीं है, जो प्रज्ञस्वरूप हृदयाकाशमें रहाहै, ताके प्रति मैं अमृत कहूंहूं.

जाहेतुते स्वरूपावस्थानरूप मोक्ष है; ता मोक्षको उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य, विकार्य इन चतुर्विध क्रिया-फलोंसें विलक्षणत्व होनेतें कर्मसाध्यअमृतत्त्व नहीं; तथा ज्ञानकर्मसमुच्चयसाध्यभी अमृतत्त्व नहीं किंतु स्वभाविक अमृतत्व है, (ऐसा कहनेते "अमृत्युः कर्मणा केचित्" इस श्लोकमें उक्तवादियनके पक्ष अघटित है ऐसी सूचना करी) ॥ १ ॥

हे भगवन् ! जो प्रमाद सो मृत्यु और अप्रमादसे अमृत्यु इस रीतिसें आपने किसते जाना ? ऐसी धृतराष्ट्रकी शंकाते मुनि उत्तर कहेहैं. (स. १ । ५)

"प्रमादाद्वा असुराः पराभवन्न प्रमादाद्वा ब्रह्म-
भूताः सुराश्च । नैव मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तू-
न्ह्याप्यस्य रूपमुपलभ्यतेह ॥ ६ ॥"

अर्थः—प्रमादसे कहिये स्वाभाविक ब्रह्मभावसे प्रच्यवनतें अनात्म देहादिकनविषें आत्मभाव होनेतें विरोचनआदिअसुर पराजित होतेभये. तहां श्रुतिः—(छां.८। ८।४)

"अनुपलभ्यात्मानमसुरा वा पराभूताः"इति ।

अर्थः—आत्मस्वरूपकी उपलब्धि न होनेते असुर पराजित हुये; तथा अप्रमादसे कहिये स्वाभाविक सत्, चित्,आनंद अद्वितीय ब्रह्मात्मरूप करिके अवस्थानते इंद्रादि देव ब्रह्मभूत होते भये; अर्थात् अमृत हुये. तहां श्रुतिः—(छां. उ. ८ । १२ । ६)

"ते देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषांꣳसर्वे च लोका आत्मा सर्वे च कामाः" इति ॥

अर्थः— सो देव आत्माकी उपासना कहिये ब्रह्मा-त्मका अभेदते साक्षात्कार करेहैं यातें सो देव सर्वलोक

और सर्व कामकूं प्राप्त होते भये. तहां बह्वृच ब्राह्मण की श्रुति इत्यादि प्रमाण हैं. अथवा 'असुराः' "असुष्वेव रमंते इति असुराः" कहिये इंद्रियोंके विषें रमण हुये अनात्मवेत्ता विषयी पुरुष असुर कहिये है. अर्थात् आसुरी संपत्तिवाले, सो असुर स्वाभाविक ब्रह्मभावकूं अतिक्रमणकरिके अनात्म देहादिकनके विषे आत्मभावका स्वीकार करनेते पराजय कहिये तिर्यगादियोनिकूं प्राप्त होतेभये. तहां बह्वृच ब्राह्मणकी श्रुतिः— "तस्मान्न प्रमाद्येत" इति कहिये जा कारणते प्रमादी पुरुष तिर्यगादियोनिकूं पावे; ताते प्रमाद करना नहीं. तथा 'स्वस्मिन्नात्मन्येव रमंते इति सुराः' कहिये आत्माके विषेही रमण करे सो आत्मवेत्ता पुरुष सुर अर्थात् दैवीसंपत्तिवाले कहियेहै. सो सुर अप्रमादसे कहिये स्वाभाविक ब्रह्मात्मभावके विषें अवस्थानसे ब्रह्मीभूत कहिये निवृत्त हुये हैं अज्ञान तत्कार्य जिनोंके ऐसे हुये ब्रह्मरूपही होते भये.

शंकाः—सर्व जंतुका संहार करनेवाला यमराजा

मृत्युरूप लोकमें अन्यही प्रसिद्ध है यातें प्रमादकूं मृत्यु कैसे कहते हो.

समाधानः—ऐसी शंका करना नहीं काहेते मृत्यु प्राणीकूं भक्षण करे नहीं जो कहीं भक्षण करता होवे तो ताकी व्याघ्रकी न्याई उपलब्धि होनी चाहिये सो होवे नहीं यातें मृत्यु होवे नहीं.

हे राजन् ! याते प्रमादही सर्व अनर्थका बीज है याते तिसकूं मैं मृत्यु कहूंहूं. यमकूं नहीं. विषयरूप विषते अन्ध ऐसे कितनेक अज्ञानीपुरुष आत्मासे अतिरिक्त द्वितीयकूं देखते हुये पितृलोक विषे राज्य करनेवाला और पुण्यशाली प्राणीकूं सुखप्रद तथा पापियनकूं दुःखप्रद और बुद्धिके विषे स्थित और ब्रह्मके विषे रमनेवाला जो यम ताकूं मैंने कहे प्रमादरूप मृत्युसे अन्य मृत्युरूप कहें हैं यमको बुद्धिस्थत्व कहा, तहां मनुस्मृतिका प्रमाणः—

"यमो वैवस्वतो राजा यस्तवैष हृदि स्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून्व्रज॥१॥"

अर्थः-हे प्राणि! विवस्वान्‌का पुत्र जो यमराजा सो तेरे बुद्धिके विषैंही स्थित है या प्रकारका जो तेरेकूं दृढनिश्चय होवे तो गंगा, अथवा कुरुक्षेत्रके प्रति गमन ना कर ॥ १ ॥

तथा यमकूं ब्रह्मनिष्ठता है तामें श्रुतिः-(कठ. उ. १।२।२०)

"कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति"

अर्थः-सहर्ष हुया अहर्ष कहिये विरुद्धधर्मवाला यातेही अज्ञेय ऐसे आत्मदेवकूं मेरेसे अन्य कोईभी जाननेकूं समर्थ नहीं. (इस प्रकारसे जो प्रमाद सो मृत्यु ऐसा निर्धारण किया.)

अब याही प्रमादकी कार्यरूपसे अवस्थितिकं दर्शावे है. (सनत्सु० १।७)

"आस्यादेष निःसरते नराणां क्रोधः प्रमादो मोहरूपश्च मृत्युः। अहं गतेनैव चरन्वि-मार्गान्न चात्मनो योगमुपैति कश्चित् ॥ १ ॥

अर्थः-जो प्रमादाख्यमृत्यु प्रथम अहंकाररूप करिके परिणत होवे है पीछे अहंकाररूपसे स्थित होइके

अनंतर कामरूपसे परिणत होवे है, सो काम स्वविषयमें प्रवृत्तहुये किसीने प्रतिघातकियातो क्रोधरूप होवेहै; तिस-ते अनंतर मोहरूप होवेहै; याते अहंकार रूपसें परिणत जो अज्ञान तासें अनात्म देहादिकनके विषैं आत्मभावकूं प्राप्त हुवा मैं ब्राह्मण हूं क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हूं; मैं कृश- हूं, स्थूल हूं, मैं उसका पुत्र हूं, या प्रकारसें रागद्वेषा- दियुक्त हुयां उन्मार्गमें प्रवृत्त हुवा कोईभी आत्मस्व- रूपकूं जनावनेवाले समाधियोगकूं पाता नहीं. १ (सन. १ । ८)

"ते मोहितास्तद्वशे वर्तमाना अतः प्रेतास्तत्र पुनः पतंति ॥ ततस्तं देवा अनुपरिप्लवंते ततो मृत्युं मरणादभ्युपैति ॥ ८ ॥"

अर्थः—अहंकारादिरूपसें स्थित प्रमादाख्य अज्ञान करिके मोहित कहिये देहादिकनके विषैं आत्मभावकूं अर्थात् अहं ममताकूं प्राप्त हुये जीव या लोकसें मृत हुये धूमादिमार्गसें परलोकमें हुवां जहांतक पुण्य होवे तहांतक रहिके पीछे फिरसें आकाशादिक्रम करिके देहग्रहणके अर्थ मत्युलोकमें गिरतेहैं. पीछे देहग्रहण अवस्थाके

विषें इंद्रियनकूं अनुसरिके चारोंतरफसें कर्माचरणं करेहैं; तासे मरण पावेहैं तदनंतर फेरि जन्म पावेहैं या रीतिसें जन्ममरणकी परंपरा विषें आरूढ हुये चक्रवत् भ्रमण करते हुये संसारतें मुक्त होते नहीं. अब कर्मोंके विषें बंधका हेतुत्त्व कहेहैंः—(सन. १ । ९)

"कर्मोदये कर्मफलानुरागस्तत्रानुयांति न तरंति मृत्युम् । सदर्थयोगानवगमात्ससंतात्प्रवर्तते भोगयोगेन देही ॥ १ ॥"

अर्थः—कितनेक कर्मकरिके अमृतभावकूं कहेहैं; तिनके मतका निराकरण करेहैं; केवल कर्मकरिके अमृतत्त्व होवे नहीं; किंतु कर्मोत्पत्तिते तिनके विषैं अनुराग होनेतें फलप्राप्त होवेहै, यातें मृत्युकूं तरते नहीं, किंतु जन्ममरणात्मक संसारके विषैं वारंवार भ्रमण करेहै.

कर्मफलके विषैं अनुरागका हेतु कहेहै, सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्मात्मैकत्वके अबोधसे विषयके विषैं रसबुद्धिकरिके प्राणी उर्ध्वाधोलोकविषैं भ्रमण करेहै १ (सनत्सु. १ । १०)

"तद्वै महामोहनमिंद्रियाणां मिथ्यार्थयोगे-स्य गतिर्हि नित्या मिथ्यार्थयोगाभिहतांतरा-त्मास्मरन्नुपास्ते विषयान्समंतात् ॥ १ ॥"

अर्थः—रागकारिके अभिभूत ऐसा जो प्राणी तिसके इंद्रियोंका विषयोंके विषैं प्रवर्तन, सोही महामोह कहावेहै,इंद्रियोंकी विषयोंके ऊपर प्रवृति होनेते अविद्याकल्पितमिथ्याविषयोंका योगकहिये संबंध होवेहै; और ताते संसारगतिभी नित्य (नियत) होवेहै;काहेते मिथ्याविषयके संबंधतें हत हुवाहै स्वाभाविक ब्रह्मभाव जाका ऐसा प्राणी स्त्रीआदि विषयनका स्मरण करताहुवा तिनकी उपासना करेहैं परंतु आत्माकी नहीं. १

पूर्वोक्त प्रमादरूप मृत्युकूं तथा तिनका कार्य कामक्रोधादिसंसारकूं कहिके अब ता प्रमादरूप मृत्युके विनाशका उपाय कहेहैं; हे राजन् जो पुरुष सर्व अनर्थोंका बीजभूत प्रमादरूप मृत्युकूं जानिके वैराग्यादिसाधनसंपत्तिसें सच्चिदानंदाद्वितीयब्रह्मात्मस्वरूपस्थितिका संपादन करे सो पुरुष मृत्युसें भयकूं प्राप्त

होवेनहीं; अर्थात् मृत्युका नाश करेहै, तहां श्रुतिः—
(तै० उ० २।९)

"आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन"

या प्रकारसें मृत्युके विनाशका ज्ञानरूप उपाय कहिके पीछे विस्तारसें अनात्मदर्शीयोकीं निंदा और आत्मदर्शीकी प्रशंसा करिके मान और मौन दोनोंके विषय भिन्न भिन्न दर्शायके, जा पुरुषकूं मान होवे ता पुरुषकूं मोक्षके अभाव कथनते अनंतर महादुःखसें आचरणीय ऐसे (१) सत्य (यथार्थ भाषण) (२) आर्जव, (अकौटिल्य) (३) ह्री (अकार्य की लज्जा) (४) दम, (अन्तःकरणका तथा बाह्य इंद्रियका निग्रह) (५) शौच (पापप्रक्षालन) (६) विद्या (ब्रह्मज्ञान) यह षट् मान और मोहके तोडनेवाले ब्रह्मलक्ष्मी (ब्रह्मविद्या) के विषे प्रवेश होनेके द्वार कथन किये।

प्रथमाध्याय समाप्त.

पूर्वोक्त मौनका माहात्म्य श्रवण करिके धृतराष्ट्रनें प्रश्न कियाकि हेमुने! पूर्वोक्त वागादिकनके उपरामरूप

मौन किसकूं प्राप्त होवे ? तथा जो असंभाषणरूप मौन और आत्मस्वरूपका निदिध्यासनरूप मौन या दोनोमें यथार्थ मौन कोनसा ? तथा पुरुष मौनभाव (ब्रह्मभाव) कूं वाणीके उपरामरूप मौन करिके पावे या अन्य (निदिध्यासनरूप) उपाय करिके तथा मौनका किस रीतिसे आचरण करे सो कहो ?

मुनिने उत्तर दियाकि हेराजन् ! जिसकारणते सर्ववेद मनके साथ जाकूं प्राप्त होनेकूं समर्थ नही; सो परमात्माही वाणीका अगोचर होनेते मौन कहियेहै, तहां श्रुतिः—(तै० २ । ९)

"यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह"

ता परमात्माके लक्षणकी आकांक्षा होनेते कहा जो वेद शब्द करिके तात्पर्य वृत्तिसे प्रतिपाद्य सो सत्, चित् आनन्दस्वरूप परमात्मा या रीतिसे मैं श्रुति और स्वानुभवप्रमाणोंसे कहूंहूं.

वेदस्वभावकी जिज्ञासाते धृताराष्ट्रने प्रश्न किया कि हे मुने ! जो पुरुष पापाचरणकरता हुवा ऋगादिवेदका पठन करे सो वेदाध्ययनते शुद्ध होवे या नहीं ? सो कहो.

उत्तरः—हेराजन् ! ऋगादिवेद पठन कियेभी पापाचारी पुरुषकूं शुद्ध कहिये रक्षण करनेके लियें समर्थ नहीं इस रीतिसें मैं सत्य कहूंहूं जैसे पक्ष उत्पन्न होनेंते पक्षी उडीजाते हैं तैसे पापी धर्मध्वजी पुरुषकूं मरणकालके विषें वेद तजिके जावेंहैं.

तहां राजाकूं ऐसी शंका उत्पन्न हुइ के नित्यनैमित्तिक कर्म किये मनके शुद्धिके हेतुहै और न किये तो प्रत्यवाय हेतु है; तथा काम्यकर्म और उपासना ब्रह्मलोकादि और पितृलोकादिनके हेतु है, तथा निषिद्धकर्म नरकके हेतु है. याते अवश्यक वेदाध्ययन, तिनके अर्थका ज्ञान और तदुक्त कर्मोंका अनुष्ठान संपादन करना चाहिये; याते वेद पापीकी रक्षा करने शक्त नहीं ऐसा काहेते कहते हो ?

उत्तरः—हेराजन् ! जो कदाचित् तैंने जो कहा सो वेदार्थ होवे तो तेरी शंका सत्य होवे. परंतु मोक्षाख्य परम पुरुषार्थ रूप वेद तात्पर्यार्थ तो स्वर्गादिकसें अन्यही है वेदोंमें जो कर्मोपासनका प्रतिपादन सो तो

(१) पुत्रदान; (२) वित्तदान, (३) इष्ट कहिये श्रौतकर्मका दान (४) पूर्त कहिये स्मार्तकर्मका दान (५) दोषदृष्टिसे वैराग्यपूर्वक धनादिकनका त्याग (६) कामत्याग या रीतिसे षट्प्रकारके त्याग कहिये वैराग्य पूर्वक धनादित्याग और कामत्यागका दुष्करत्व कहिके पीछे कामादि दोष त्याग पूर्वक ज्ञानादि गुण करिके अप्रमादकी सिद्धि कथन करीहै.

पीछे राजाने प्रश्न कियाकि चारवेद और पंचम इतिहास पुराणादि तिन करिके कोई पंचमवेदी, कोई चतुर्वेदी त्रिवेदी द्विवेदी एकवेदी कहावेहैं तिनके मध्यमें श्रेष्ठ ब्राह्मण कौनेहै ?

मुनिका उत्तरः—

जो ब्राह्मण स्वाभाविक सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्मात्मस्वरूपसे स्थित होवे; सो एकवेदी ब्राह्मण सर्वोत्तम है. और ऋगादि वह विभाग सो तो सत्य ब्रह्मात्म स्वरूपके अनवबोधसेही है याते सत्यसें जो प्रच्युत न होवे सोहि श्रेष्ठ ब्राह्मण है, याते सत्यपरही रहना. अनृतविषयपर रहना नहीं. ता सत्यपरत्वसें आत्मसा-

क्षात्कार होवे है याते आत्मासें अतिरिक्त सर्वका परित्याग करिके केवल तूष्णीं भावसे आत्माकाही उपासन करना, तासे आत्मा स्वतःही अपरोक्ष होवे है, और जो आत्मवेत्ता सोही मुनि कहावे है, अरण्यवासी नहीं. तथा जो आत्मज्ञानी सोही सर्व अर्थनके व्याकरणते कहिये आत्मभाव जाननेतें वैयाकरण कहिये है, केवलशब्दात्मक व्याकरणशास्त्रका पठन करनेवाळा वैयाकरण नहीं. तथा जो सर्वात्मदर्शी सोही सर्वज्ञ है इतर नहीं.

द्वितीयाध्याय समाप्त.

अब ब्रह्मचर्यादि साधनांतरकूं तथा तिनकरिके प्राप्य जो ब्रह्म ताके प्रतिपाद अर्थ तृतीय चतुर्थ अध्याय हैं राजाने प्रश्न किया कि हे मुने ! श्रवण करने अशक्य ऐसी और उत्कृष्ट तथा प्रपंचके विषे दुर्लभ ऐसी ब्रह्मसम्बन्धी कथा कहो.

उत्तरः—हे राजन् ! यह ब्रह्म वस्तु त्वरासे प्राप्य नहीं, किंतु निश्चयात्मक बुद्धिके विषें संकल्प विक-

रूपात्मक मन लीन हुये कहिये विषयोंसे परावृत्त होयके आत्माके विषैंही निश्चल हुये वक्ष्यमाण ब्रह्मचर्य करिके ब्रह्मविद्या प्राप्त होवे है जो पुरुष आचार्यकूं शरण होयके ब्रह्मचर्य कहिये गुरुशुश्रूषणादिकनका आचरण करे सो पुरुष या लोक विषैं पंडित होवे है. पीछे श्रवण, मनन, निदिध्यासन करिके ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञ) होयके प्रारब्धकर्म क्षीण होनेते देहका त्याग करिके परमपदकूं प्राप्त होवे है.

ब्रह्मचर्यके चारपाद हैं,तामें गुरुशुश्रूषादिकमसें जो विद्याप्राप्ति सो प्रथमपाद तथा जैसी गुरूके विषैं वृत्ति तैसेही गुरुपत्नीके विषैं और गुरुपुत्रके विषैं जो वृत्ति सो द्वितीयपाद, आचार्यकृत उपकारकूं और परम-पुरुषार्थकूं जानिके गुरूने मेरेकूं सच्चिदानंदादि द्वितीय स्वरूपसें उत्पादन किया, इस रीतिसे चिंतवन करता हुवा और आचार्यके प्रति हर्षयुक्त बुद्धिवाला हुवा आपनी कृतकृत्यता माने सो तृतीयपाद; तथा प्राण करिके धनकरिके कर्म, वाणी इनों करिके आचार्यके अर्थ प्रिय सो करना यह चतुर्थपाद.

पूर्वोक्त ज्ञानादि द्वादश गुणोंसे तथा षट्प्रकारके त्यागसें तथा चतुष्पाद ब्रह्मचर्यसेंही ब्रह्मात्मस्वरूपसें ही स्थिति होवे अन्यथा नहीं, हे राजन् ! कर्मोंकरिके तो अन्तवालाही लोक जीत्या जावे है और ज्ञानकरिके तो त्रिकालाबाध्य नित्यस्वरूपका जय होवे है, याते नित्यस्वरूपके विषैं ज्ञानविना कोई अन्य मार्ग नहीं,

राजाने प्रश्न किया कि हेमुने ! सो प्राप्य नित्य-ब्रह्म शुक्ल, पीत, कृष्ण, रक्त है या और किसी रीतका है ?

उत्तर—हेराजन् ! यह ब्रह्म शुक्लादिरूपवाला नहीं. तथा पृथिवी आकाशादिकनके विषैं इस ब्रह्मका रूप जनाता नहीं; किंतु, पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यादि साधनसंपन्न जो उत्तमाधिकारी तिसकोही स्वमहिमाके विषैं प्रतिष्ठित ऐसा अपरोक्ष होवे है. परन्तु घटादिककी न्याईं इदंता करिके नहीं; या ब्रह्मके विषेही सर्वजगत् प्रतिष्ठित है, और आत्मज्ञानीकूंही ब्रह्मरूप जनाता है.

तृतीयाध्यायसमाप्त.

जिसतें सूर्यादिक पातेहैं प्रकाश, जाकी देवता नित्य उपासना करेहैं. या शुद्ध ब्रह्मकूं जो योगी सोही प्राप्त होवेहै. इतर नहीं, इस रीतिसे उपदेश करिके पीछे इसी ब्रह्मसें हिरण्यगर्भादिकनकी उत्पत्ति कहिके अनन्तर (मुं. ३ । १ । १) "द्वा सुपर्णा"

या मन्त्रका अर्थकथन करिके, पीछे ता ब्रह्मस्वरूप सें ज्ञानीका अवस्थान कथन किया. अनन्तर ब्रह्मके सदृश कोई नहीं, तथा चक्षुरादिकनकाभी अगोचर ऐसे ब्रह्मकूं योगयुक्त बुद्धिकरिके जो जाने सोही अमृत होवेहै. या रीतिसें कथन करिके, पीछे इंद्रियनकी विषयोंविषें जो प्रवृत्ति सो अनर्थकी हेतु है ऐसा कहिये, पीछे ब्रह्मका अपरिच्छिन्नत्व प्रतिपादनकरिके ताकूं जाने सोही अमृत होवेहै या रीतिसें उपसंहार किया; पीछे कहाकि सर्वप्राणियोंके विषैं आंतररूपसें अर्थात ओतप्रोत अंतर्बाह्यव्यापक रूपकरिके एकही आत्मा स्थित है, ऐसा जो जाने कहिये साक्षात्कार करे सो शोक करे नहीं. तहां श्रुतिः—(ईशा. उ.मं. ७)

"तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः"

और याही वार्ताकूं कहेहै, जैसें चारोंतरफसें भरपूर ऐसें सरोवरके विषैं यद्यपि जल बहुत है तोभी आपनेकूं अपेक्षित अंजलि मात्रसे अधिकका कोईभी प्रयोजन नहीं; तैसें वेदमें अनेकप्रकारकी विद्याहैं; तोभी ज्ञानीपुरुषकूं ब्रह्मस्वरूपके साक्षात्कार रूपही प्रयोजन है विशेषकी अपेक्षा नही, तहां गीतावचनः—(गी. ३ । १८)

"नचास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः"

अब सनत्सुजातजी पूर्वकथित विद्याके दृढीकरणअर्थ वामदेवादिकनकी न्याई स्वानुभवकूं प्रदर्शन करेंहै, हेधृतराष्ट्र ! तुम सर्वनके मातारूप मैं हूं, तथा पितारूप मैं हूं, तथा पुत्ररूप मैं हूं। किं बहुना (अधिक क्या कहनां) चराचर सर्वप्राणियनका आत्मा रूपभी मैं हूं, और इंद्रादिदेवनका वृद्ध पितामह कहिये परमेश्वर अर्थात् अव्याकृतभी मैं हूं, तथा पिता कहिये

हिरण्यगर्भ मैंहीं हूं, तथा हेराजन् तुम सर्व अध्यारोप दृष्टिसें मेरें विषैंही स्थित हो, जैसें रज्जुके विषैंही सर्प, धारा, मालादि स्थित हैं तैसें; और परमार्थदृष्टिसें तो मेरें विषैं तुम कोईभी स्थित नहीं, तैसें मैंभी तुमारे विषैं स्थित नहींहूं; तथा नामरूपक्रियात्मक जगत्का आश्रयभूत आत्मा मैंहींहूं; तथा सर्वके उत्पत्तिका कारणभी मैंही हूं, तहां श्रुतिः- (छां. उ. ७। २६ । १) "आत्मन एवेदं सर्वम्" इति, तथा ओतप्रोतरूप करिके मैंही रहाहूं; और जन्म मरणवर्जित ऐसें स्वमहिमाके विषैं प्रतिष्ठित मैंही हूं, तथा सूक्ष्मआकाशादिकनतेभी सूक्ष्मतर मैंहीहूं,तथा राग, द्वेष, लोभ, मोह, मात्सर्य, शोकादिधर्मते रहित केवल सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्माकार मन जाका ऐसा मैंही हूं; तथा सर्वप्राणियनके हृदयकमल विषैं एक प्रत्यगात्मस्वरूपसें मैंही रहाहूं. या प्रकारते सनत्सुजात मुनि स्वानुभव करिके सर्व जीवोंके कल्याणार्थ धृतराष्ट्रकूं अधिकारी करिके ताके प्रति ब्रह्मविद्याका दृढसाक्षात्कार धरायके पीछे उपराम होते भये.

इस आख्यानका सविस्तर वर्णन स्वामी श्रीसच्चिदानन्द ब्रह्म तीर्थने गुर्जरभापामें कियाहै तासे विशेप जानना.

महावाक्य रत्नावलीका वाक्य.

"त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज ॥
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत्त्यज॥१॥"

अर्थः—हेशिष्य ! श्रुतिस्मृतिने जा अर्थका विधान किया सो धर्म, तथा श्रुतिस्मृतिने निषिद्ध किया सो अधर्म; तथा चक्षुरादि इंद्रियोंका विपय सो सत्य और मनकरिके विपय किया सो अर्थ अनृत इन सर्वनकूं आत्मस्वरूपसे अनतिरिक्त ऐसा जानिके त्यागकर और आत्माकार वृत्ति करिके तूं सत्य अनृतका त्याग करेगा, ता वृत्तिकाभी त्यागकर कहिये सर्वोपाधिरहित शुद्ध ब्रह्ममात्र हो.

ऊपर कथित प्रक्रियाके विचार तें जो ब्रह्मात्मैकत्वका अवधारण हुवा ताके दृढअनुभवमें श्रीआचार्यकृत उपदेशसहस्रीके वाक्यः—

"चितिस्वरूपे स्वत एव मे मते रसादियो-
योगस्तव मोहकारितः ॥

अतो न किञ्चित्तव चेष्टितेन मे फलं भवेत्सर्व
विशेषहानतः ॥ १ ॥

विमुच्य मायामयकार्यतामिह प्रशांतिमाया
ह्यसदीहितात्सदा ॥

अहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तवत्तथाजमेकं द्वय-
वर्जितं यतः ॥ २ ॥

सदा च भूतेषु समोस्मि केवलो यथा च खं
सर्वगमक्षरं शिवम् ॥

निरंतरं निष्फलमक्रियं परं ततो न मेस्तीह
फलं तवेहितैः ॥ ३ ॥

अहं ममैको न तदन्यदिष्यते तथा न कस्या-
प्यहमस्म्यसंगतः ॥

असंगरूपोहमतो न मे त्वया कृतेन कार्यं तव
चाद्वयत्वतः ॥ ४ ॥

दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वज
मेकमक्षरम् ॥
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं तदेव चाहं सततं
विमुक्त ओम् ॥ ५ ॥
दृशिस्तु शुद्धोहमविक्रियात्मको न मेस्ति
कश्चिद्विषयः स्वभावतः ॥
पुरस्तिरश्चोर्ध्वमधश्च सर्वतः संपूर्णभूमात्वज
आत्मनि स्थित ओम् ॥ ६ ॥
अजोऽमरश्चैव तथाजरोमृतः स्वयंप्रभः सर्व-
गतोहमद्वयः ॥
न कारणं कार्यमतीव निर्मलः सदैकतृतश्च
ततो विमुक्त ओम् ॥ ७ ॥"

ऊपरके सप्तश्लोकरूप वाक्योंका नीचे उक्त प्रकार-
से अनुक्रमते अर्थः—

सप्तम प्रकरणोक्त रीतिसें विद्या और अविद्या
जब बुद्धिगत है तब सांख्य सिद्धांतका प्रसंग
होवेगा, काहेते सांख्य माने है कि "बुद्धिही

पुरुषके मोक्षार्थ और भोगार्थ ज्ञान और अज्ञानरूपताका आचरण करेहै" या वादीकी शंकाका निराकरण करते हुये श्रीआचार्य स्वअनुभवके अनुसार साधित ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानकूं आत्मबुद्धिसंवादरूप अष्टम प्रकरण करिके दृढ करेहैं.

विवेकी आत्मा बुद्धिकूं कहेहै हे मते ! मेरे स्वतः शुद्ध चित्स्वरूपविषे जो रसादि योग कहिये रागादि हेतुक ऐसे भोक्तृत्वादि संबंध सो तेरा जो मोह (अविवेक) तिसने करायाहै अर्थात् मिथ्याहै, याते सर्व विशेष राहित्यसें मेरे विषें तेरी चेष्टा करिके कोईभी प्रकारका फल कहिये अतिशय प्राप्त होवे ऐसा नहीं ॥ १ ॥

जा कारणते सर्व विशेषोंके साहित्यसे मेरे विषें तेरी चेष्टा करिके अतिशयरूप फल प्राप्त होवे ऐसा नहीं, याते तैने शांत होनाही युक्त है या अर्थकूं कहेहैं कि, हे मते ! तूं मायामय कार्यता (मिथ्याचेष्टित) कूं त्याग करिके असत् ईहितसें कहिये निरर्थक प्रयाससे प्रत्यगात्मरूप मेरे विषे प्रकृष्ट शांतिकूं प्राप्त हो

कहिये मेरे विषें लीनहो या स्थलमें 'मायामय कार्यता' और 'असदीहित' इन दोनों शब्द करिके बुद्धिके चेष्टित विषे अविद्यकत्व कहिये मिथ्यात्व सूचन किया, तिसतेही सांख्यमत शंकाका निराकरण जानना काहेते सांख्य तो बुद्धिचेष्टितकूं सत्य माने है.

प्रत्यगात्माके विषे मनका लय किस कारणते कहा, सत्य, ज्ञान, आनंदस्वरूप ब्रह्मके विषेंही क्योंन कहा? ऐसी आशंका होनेते कहेहैं कि, सदैव प्रत्यगात्मरूपमेंही ब्रह्महूं, यातेही विमुक्त जैसा हूं (या स्थलमें 'जैसा' या इवशब्दार्थसें ऐसा जनाया कि, बंधके अभावसें मेरेविषे मुक्तिभी वास्तव नहीं.) और मैं अज जन्मादि षट्विकार रहित हूं तथा द्वैतवर्जित एक स्वरूप कहिये सजातीय, विजातीय, स्वगतभेद रहित हूं (आत्माकूं ब्रह्मसे अभिन्न होनेते (मुं० उ० ३।२।७) "परेऽव्यये सर्वमेकीभवति"

अर्थः—अविनाशी परब्रह्मके विषें सर्वही एकीभावकूं प्राप्त होवेहै. या श्रुतिका विरोध नहीं ऐसा जानना.

अन्यव्याख्या.

हे मते! असत् कहिये स्वतःही स्वरूपशून्य ऐसे देह, इंद्रिय, विषयनके विषे जोई हित कहिये दृष्टादृष्ट फल, तिसतें सदा कहिये जाग्रदादि· तीनों अवस्था विषें प्रशांतिकूं प्राप्त हो; अर्थात् फलार्थ व्यापारका त्याग कर, व्यापारसें शांत होनेतेभी तेरे बुद्धिस्वरूपका अनुसंधान करना नहीं या वार्ताकूं कहेहै कि 'कार्यता' कहिये बुद्धिरूपका कार्य स्वरूपताका त्याग करिके 'मायाप्र अय' कहिये कारणभूत प्रकृतिस्वरूपकूं प्राप्त अर्थात् तदात्मक हो.

'तब प्रकृतिस्वरूप होइके फिरसे उत्पत्ति होगी' ऐसी बुद्धिकूं आशंका होनेते कहेहैं कि, इह कारणरूपताभी त्याग करिके मेरे स्वरूपके विषेंही 'अय' कहिये प्रवेश कर; अर्थात् तप्त अयःपिंडके विषें जलबिंदुकी न्याई मेरी स्वरूपसे ग्रस्त ऐसी हो. मुखके अंदर कवलरूप किये हैं कोटि ब्रह्मांड जिसने ऐसी मेरेकूं मैनेही इतस्ततः चलायमान किया ऐसा तूं किस रीतिसें ग्रास करेगा?'

ऐसी मतिकी शंका होनेते कहेहै कि, जाकूं आत्मवि-
द्याका विवेक न होवे ताकं तूं चलायमान करेगी;
परंतु मैं तो जन्मादि षट्विकार और सर्व द्वैततें रहित
यातेही सदा विमुक्त हूं, ताते तूं मेरेकूं चलायमान करने
समर्थ नहीं मैं आत्माकूं चलायमान करूंहूं ऐसी तो
तेरेकूं भ्रांतिमात्र है. ॥ २ ॥

अजत्वादि प्रतिपादक श्रुतिवाक्यनके प्रमाण्यसे
यद्यपि निर्विशेषता करिके ब्रह्मके विषे नित्यमुक्तत्व सिद्ध
होवेहै तोभी देहादिकनके विषे अन्वित ऐसे आत्माकं
निर्विशेषतासें ब्रह्मस्वरूपका संभव कैसा घटे ? ऐसी
शंका होनेते कहेहै कि मैं केवल कहिये अविद्या
तत्कार्यरूप सर्वविशेषनते रहित हूं; तथा सर्व भूतोंके
विषें समही हूं; काहेते उपाधिके संबंधविना मेरेविषे
कोईभी विशेषका उल्लेख होवे नहीं.

सर्वमें अनुस्यूत रहे आत्माके असंगस्वभावतासे
निर्विशेपत्वमें दृष्टांतः—जैसे आकाश सर्वत्रव्यापक
तथा अक्षर (अविनाशी) शिव (निरुपद्रव) निरंतर

(निर्भेद) निष्कल (कलारहित) तथा अक्रिय (क्रिया रहित) है तैसेही मैंभी उक्तविशेषणविशिष्ट हूं, याते हे मते ! तेरी चेष्टा करिके मेरे विषे कोईभी अतिशयका आधान होवे नहीं. ॥ ३ ॥

ब्रह्मभूत ऐसे तेरेकूं मेरी चेष्टा करिके तेरे विषें यद्यपि अतिशय होवे नहीं, तो भी मेरी चेष्टासे तेरा संबंधी गौण पदार्थ अथवा मुख्य पदार्थका उपयोग तेरेकूं होगा ऐसी मतिकूं आशंका हुये सो गौण, मुख्य पदार्थभी मेरे विषे संपादन होने शक्य नहीं या वार्ताकूं कहेहै, मैं एकही हूं, याते चित्स्वरूप ऐसे मेरे विषे पर मार्थसें सजातीय, विजातीय स्वगतभेदमें प्रमाणके अभावसे मेरी अपेक्षासे गौण ऐसी कोईभी वस्तु इच्छा करनेयोग्य नहीं, तथा कोईभी वस्तुकूं प्रधान करिके मैं गौणभूत हूं ऐसा नहीं. काहेते असंग हूं याते तेरी चेष्टासें मेरेकूं कोईभी प्रयोजन नहीं.

और तूंही नहीं तो तेरी चेष्टा तथा तिनका फल कहांसे होवेगा ? इस अभिप्रायसे कहेहैं कि, वस्तुतः

तूंही अद्वैत ब्रह्मरूपही है काहेते मेरे स्वरूपके अज्ञानसे कल्पित (अध्यस्त) तूं तेरे अधिष्ठानभूत मेरे स्वरूपसे व्यतिरेक कहिये पृथक् स्वरूपसिद्धिका अभाव है याते तूं मद्रूप हो इस रीतिते अभेद सिद्ध होनेते उपकार्यउपकारकभाव संबंधकाही असंभव है, याते विकल्प छोडिके मेरेविषें प्रशांत हो ॥ ४ ॥

आत्माके विषे निर्विषयज्ञानस्वभावत्व पूर्व प्रतिपादन किया, ताकूंही स्वानुभवसे प्रकट करते हुये श्रीआचार्य कहतेहैं 'सकृद्विभात कहिये सदैव स्पष्ट प्रकाशमान तथा 'अज' कहिये जन्मादिरहित तथा 'एक' और 'अक्षर' कहिये अविनाशी सो मैं हूं तथा आकाशकी उपमावाला और अलेपक सर्वत्रव्यापक तथा अद्वैत जो ब्रह्म सोही दृक्स्वरूप मैं हूं; याते सदैव विमुक्त हूं.'

उक्त ऐसा ब्रह्माभिन्न आत्मस्वरूप ॐकारद्वाराही मुमुक्षुके बुद्धिके विषें अभिव्यक्त होवे ऐसी सूचनाके

अर्थ ॐकारका निर्देश कियाहै,अथवा उक्त ब्रह्माभिन्न आत्मस्वरूपके बोधका अंगीकार[1] शिष्यसे कराया ऐसे जानना ॥ ५ ॥

आकाशकी न्याई अलेपकता दृक्स्वरूप आत्माके विषें संभवे नहीं काहेतें दृश्यके संबंधते अशुद्धि विक्रिया इत्यादि दोषका संभव होवेहै ऐसी शंका होनेते दृक्स्वरूप आत्माके विषें नित्यशुद्धत्त्वादि श्रुतिनेंही निर्धारण किया है. याते शंकाअवकाश नहीं, ये अभिप्रायते श्रुतिसिद्ध अर्थकूं प्रगट करेहैं. मैंतो ज्ञानस्वरूप हूं यातेही शुद्ध हूं काहेते अज्ञानहेतुक अशुद्धत्वादिक तो आभासमात्र होनेते मिथ्या है; तहां श्रुतिः-(ई. उ. ९)

"शुद्धमपापविद्धम्"

और विक्रियात्मक ऐसे प्राणादिकनते अन्य याते अविक्रिय है तहां श्रुति (मुं० उ० २ । १।२)

---

१ ॐशब्दका अंगीकाररूप अर्थ कोशमें प्रसिद्ध है.

"अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः" (बृ. उं. ५ । ८ । ९)

"अस्थूलमनण्वन्हस्वमंदीर्घम्" इति और (बृ. उ. ६ । ९ । ९)

"न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन"

अर्थः—आत्मस्वरूपकूं कोईभी व्यापकंता नहीं, तथा आत्मा कोईकूं व्यापता नहीं.

इन श्रुतियोंके प्रामाण्यसें आत्माको विषयसंबंध नहीं या वार्ताकूं कहे है, वास्तव तासें मेरा कोईभी विषय नहीं, (इस कारिके विक्रियाके हेतुभूत विशेषके अभावते अविक्रिया कथन करी) तथा विषयके अभाव कारिके अद्वैतात्मस्वरूपके प्रतिपादक भूमवाक्यकूं अर्थसे पठन करे है कि, मैं आगे पीछे पासेके विषे तथा चारोंतरफ ऊंच नीचमें तथा सर्वत्रव्यापक इदमनिदमात्मक जो संपूर्ण भूमानन्दस्वरूप स्वमहिमाके विषैं प्रतिष्ठित है, सोही मैं हूं ॥ ६ ॥

आत्माके विषे जन्म जरादि विक्रियाका अभाव होनेते कूटस्थ, अद्वय स्वभावत्वकी प्रतिपादक श्रुतियांका स्वरूपसे और अर्थसें पठन करे हैं, मैं अज कहिये अजन्मा हूं, तहां श्रुतिप्रमाणः—(कठउ. १। २। १८) "अजो नित्यः शाश्वतः" तथा 'अमर' और 'अजर' ऐसा मैं हूं, तहां श्रुतिः (बृह. उ. ४। ४। २५) "स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽभयो ब्रह्म" इति.

तथा'स्वयंप्रभः' कहिये स्वप्रकाश मैं हूं,तहां श्रुतिः-(बृह० उ० ४। ३। ९) "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः" (४। ४। १६) "तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः"

तथा सर्वत्रव्यापकभी मैंहूं, तहां श्रुतिः—(मुं०उ० १। १। ६) "नित्यं विभुं सर्वगतं"

तथा अद्वयरूप मैं हूं, तहां श्रुतिः—(श्वेता. उ. ६। ११) 'एको देवः' (छां. उ. ६। २। १) "एकमेवाद्वितीयम्"

तथा कारणरूप मैं नहीं और कार्यरूपभी मैं नहीं तहां श्रुतिः–(बृ. २ । ५ । १९) "तदेतद्ब्रह्मा-पूर्वमपरमनंतरमबाह्यम् ॥"

तथा निर्मल मैं हूं, तहां श्रुतिः–(मुं. उ. ३ । १ । ३) "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति"

तथा एकतृप्त कहिये निजानंद करिके तृप्त मैं हूं. तहां श्रुतिः–(तै. उ. २ । ९) "आनंदं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन" (मुं. उ. २ । २ । ७) "आनन्दरूपममृतं यद्विभाति" (कठ.उ. २ । २ । १) "विमुक्तश्च विमुच्यते" या श्रुतिका आश्रयण करिके कहे हैं मैं मुक्त हूं. ॥ ७ ॥

श्रुतिवाक्यः–(मांडुक्यका २ । ३२)

"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ १ ॥"

अर्थः—आत्माके विषे सर्व उपाधिका निषेध करिके सिद्ध हुआ जो निष्प्रतियोगिकत्वता[1] करिके परमत्व, घटे है. तोभी जीवस्वरूप करि संसारबद्धत्व तथा बंधके निरासअर्थ साधकत्व तथा स्वस्वरूपके बंधनसे मुमुक्षुत्व कहिये मोक्षकी इच्छा तथा ज्ञानकरिके मुक्तत्व इतने सर्व वास्तव काहेते न होवे ? ऐसी वादीकी शंका होनेते उत्तर कहे हैं कि, परमात्मा कदापि बद्ध, साधक, मुमुक्षु और मुक्त नहीं; काहेते निष्प्रतियोगिक परमात्माका निरोध कहिये लय नहीं,अविनाशी होनेते; तथा उत्पत्तिभी नहीं; काहेते अजन्मा है; तथा बद्धत्व कहिये बंधविशिष्टत्वभी नहीं; तथा साधकत्व कहिये बंध निवृत्तिके अर्थ उपाय कर्तृत्वभी नहीं; तथा मुमुक्षुत्व कहियेते बंधनसे मोक्षकी इच्छा नहीं. तथा बंधके अभाव कहियेते मुक्तत्वभी नहीं, अर्थात् आत्माके विषे निष्प्रतियोगिक (निरपेक्ष) जो शुद्धस्वरूपमात्र

---

१ निरपेक्षत्व ।

सोही परमार्थ है१ अहंकारादिकनके निराकरण करनेसे ब्रह्मसे अभेद करिके आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होनेमें श्री वसिष्ठजीका वचनः—(यो.नि.उ.स. ६९ श्लो. १)

"ज्ञानस्य ज्ञेयतापत्तिर्बंध इत्यभिधीयते ।
तस्यैव ज्ञेयताशांतिर्मोक्ष इत्यभिधीयते॥ १॥"

अर्थः—हे राम ! ज्ञानस्वरूप आत्माके विषें जो ज्ञेयताकी आपत्ति कहिये दृश्यताकी प्राप्ति सो बंध कहावेहै;तथा याही आत्माके विषें जो ज्ञेयता(दृश्यता) की शांति कहिये निवृत्ति सो मोक्ष कहावेहै. या रीतिसे उपक्रम करिके ताके उपसंहारका श्लोकः— (यो० नि० उ० स० ८९ श्लो० ८९)

"या व्यापारवती रसाद्रसविदां काचित्कवीनां नवा दृष्टिर्या परिनिष्ठितार्थविषयोन्मेषा च वैपश्चिती। ते द्वे अप्यवलंब्य विश्वमखिलं निर्वर्णितं निर्वृत्तं यावद्दृष्टि दृशो न सन्ति कलिता नो शून्यता नो भ्रमः ॥ १ ॥"

अर्थः—हेराम! तीन प्रकारकी दृष्टि शास्त्रमें प्रसिद्ध है.जो कि (१) पामरदृष्टि,(२)यौक्तिकदृष्टि, और(३) तत्त्वदृष्टि, तामें प्रथम पामर (मूढ) दृष्टिका उत्तर दो दृष्टिसे निराकरण करना और द्वितीय यौक्तिक दृष्टिका तृतीय तत्त्वदृष्टिकारिके निराकरण करना या अभिप्रायसें मैंने यौक्तिक और तत्त्व या दोनों दृष्टिका आश्रय कारिके यह सर्व जगत् तत्त्वरूपसे (चिन्मात्ररूपते) वर्णित किया.

ता उभय दृष्टिका स्वरूप कहेहैं सारमेंसे सारका मथन करिके जानने समर्थ तथा प्रमाणतत्त्व और प्रमेयतत्त्वके परीक्षाविषें कुशल ऐसे पुरुपनकी सम्यक् प्रकारते विचाररूप व्यापारवाली और अतिनिष्कर्षरूप जो दृष्टि सो यौक्तिक दृष्टि; तथा विचार, शास्त्रश्रवण, मनन,निदिध्यासनोंके परिपाकसें परिनिष्ठित और परमार्थतत्त्वके अपरोक्ष ज्ञानवालोंके विषें स्फुरणमाण ऐसी जीवन्मुक्तोंके विषें प्रसिद्ध जो चरम साक्षात्काररूप ब्रह्माकार वृत्ति सो तत्त्वदृष्टि.

या दोनूं दृष्टिका अवलंब करिके जगद्वर्णन कहांतक किया ऐसी आकांक्षा होनेसे कहेहैं कि, जहांतक सर्व संसारदृष्टि तथा तिनके देखनेवाले जीव त्रिकालके विषें हैं नहीं,और शून्यताकाभी संदेह रहे नहीं, तथा भ्रांतिमयभी जाने नहीं तहांपर्यंत अर्थात् नित्य, अपरोक्ष, परमानंदस्वरूप ब्रह्मात्मैक-स्वरूपसें स्थितिपर्यंत वर्णन कियाहै. २

समाप्तिमें मंगलाचरण.

"खानिलाग्न्यब्धरित्र्यंतं स्रक्फणीवोद्भूतं यतः॥ ध्वान्तच्छिदे नमस्तस्मै हरये बुद्धि-साक्षिणे ॥ ३ ॥"

अर्थः—आकाश, वायु,तेज, जल, पृथिवी इत्यादि भूतभौतिकरूप त्रिगुणात्मक सर्व जगत् रज्जुके विषें भुजंगकी न्याईं जाके विषे उद्भूत कहिये भासमान जा करिके हुवा सो ध्वांत (अज्ञान) ताकूं छेदन करने-वाले और बुद्धिके साक्षीरूप हरिकूं मेरा नमस्कार.

या श्लोकमें रज्जुसर्पका दृष्टांत आरंभ और परिणामवाद इन दोनों पारिणामवाद इन दोनोंवादके निराकरणअर्थ है, तथा हरिका बुद्धिसाक्षीके साथ जो सामानाधिकरण्य (अभेद) कथन किया सो प्रत्यगात्मा और परमात्मा इन दोनोंके अखंडक्यै बोधनअर्थ है; तथा 'ध्वांतच्छिदे' यह पद अज्ञान निवृत्तिरूप प्रयोजनके अर्थहै. १

"नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च ॥ व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥ १ ॥ श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्म-पादं च हस्तामलकं च शिष्यम् । तं त्रोटकं वार्तिककारमन्या-नस्मद्गुरून्सन्ततमानतोऽस्मि ॥ २ ॥"

---

१ भिन्नकारण तें (कारणतें अतिरिक्त) कार्यकी उत्पत्ति सो आरंभवाद है याकूं न्याय वैशेषिक मानेहैं.

२ कारणकूंही रूपांतरतापत्तिवादि सांख्यादि परिणामवाद मानेहैं. याका लक्षण पूर्व टिपणीमें लिखाहै.
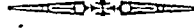
ग्रन्थान्तरमें प्रार्थना ।

भाषांतरमिदं सम्यग्वेदांतार्थप्रकाशकम्
मूलानुबंधि पूर्णत्वमेतु विद्वन्निरीक्षणात्

इति श्रीमदुदयशंकरात्मज गौरीशंकरविरचिते
स्वरूपानुसन्धाने सप्तम प्रक्रिया
समाप्ता. ॥ ७ ॥